भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में आधुनिकता बोध

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
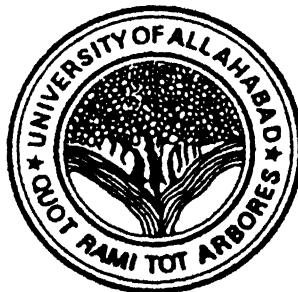
निर्देशक
डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
प्रोफिसिएसी– तामिल, तेलगु
पूर्व रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्ता :
इन्द्र बहादुर सिंह
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

प्रमाण-पत्र

मै सहर्ष प्रमाणित करता हूँ कि **श्री इन्द्रबहादुर सिंह** ने डी0फिल्0 *उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, जिसका विषय* **''भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में आधुनिकता बोध''** *है, मे मेरे निर्देशों का निष्ठा से पालन किया है। इनकी उपस्थिति भी निर्धारित नियमो के अनुकूल है।*

शोधार्थी द्वारा जिन निष्कर्षो और मान्यताओं को प्रस्तुत किया गया है, वे अधिकाशतः मौलिक हैं। मुझे श्री सिह के इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में डी०फिल्० उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध, प्रस्तुत करने मे कोई आपत्ति नहीं है।

दिनांक 30-12-2002

शोध निर्देशक

अनुक्रमणिका

भूमिका

आधुनिक हिन्दी साहित्य की विधाओं मे उपन्यास एक अत्यधिक व्यापक एव लोकप्रिय साहित्य विधा है। उपन्यास एक ओर तो समाज के विविध जीवन चित्रो को स्थापित करता है, दूसरी ओर अपनी रसज्ञता एव मनोरजकता मे पाठक को आत्मविभोर भी कर लेता है। उसमे इतिहास रस तथा काव्य रस दोनो की सहति होने के कारण एक ओर तो वह रस बोध का आनन्द देता है दूसरी ओर समाज की जीवन्तता, सरलता-कुटिलता, आह्लाद-टीस, चिन्तन और परिमार्जन का साधन भी बनता है। हिन्दी का उपन्यास-साहित्य उत्तरोत्तर समृद्ध होता चला जा रहा है। जिसमे समाज में प्रचलित विविध चिन्तन-धाराओं, वादो और विवादों के स्वरूप भी मिलते हैं। हिन्दी उपन्यास के शैशवकाल की सुधारवादी रचनाए अपने आधुनिकतम विकास में अत्यधिक सूक्ष्म मनोविश्लेषणवादी तथा प्रतीकात्मक शैली मे अपनी बाते पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने मे समर्थ है।

हिन्दी उपन्यासकारों की विशेषताओं में भगवतीचरण वर्मा की तथा उनके उपन्यासों की भी अपनी विशिष्टताएं हैं। भगवतीचरण वर्मा के साहित्यिक दृष्टिकोण, जीवनदर्शन एवं मान्यताओं के संश्लिष्ट परिचय से उनके व्यक्तित्व एवं साहित्यकार का समग्र चित्र स्पष्ट होता है। ये समाज अथवा साहित्य में प्रचलित किसी भी 'वाद' के घेरे में न पड़कर समाज की ईकाई, उसके अनवरत प्रवाह और समाज की लीला के प्रति अधिक आत्म सजग रहे हैं। उनका नियतिवादी दर्शन जिस सरल सुबोध शैली के माध्यम से अभिव्यक्त होता है उसमें पाठक को किसी प्रकार का बल नहीं लगाना पड़ता। उनके उपन्यासों का अत्यधिक प्रभावशाली होना उनके दीर्घकालीन जीवन में स्वय काग्रेस के इतिहास के उतार-चढ़ाव को देखा है। व्यक्तिगत रूप से संघर्षमय जीवन को झेला है, इसीलिए व्यक्ति, परिवार, समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ और फिल्मी जीवन के जितने रूप उनके उपन्यासों में मिलते हैं उतने अन्यत्र कहीं नहीं। जिस प्रकार से अपने उपन्यासों में भारतीय कृषक जीवन के सच्चे प्रतिनिधि प्रेमचन्द ठहरते हैं

उसी प्रकार मध्यम वर्गीय, शहरी जीवन और समाज के वास्तविक प्रतिनिधि भगवतीचरण वर्मा जी कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों मे मध्यवर्ग और शहरी जीवन, शिक्षित अभिजात्य वर्ग, विश्वविद्यालयी जीवन के वातावरण में घटित स्वच्छन्दजीवन तथा उन्मुक्त वातावरण एव व्यक्ति स्वातन्त्रय का जो स्वरूप मिलता है वह इनके उपन्यासो मे ही सम्भव है। लेखक की रचनाए आधुनिक नारी-जीवन के विकास उसकी उपलब्धि और गौरवमय स्थापना के जितने यथार्थ किन्तु मार्मिक एव हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत करती है, उतने अन्य किसी स्थल पर नहीं मिलते। इन्हीं आधुनिक दृष्टिकोणो एव निष्कर्षो के आधार पर महत्व एव प्रतिपादन तथा शोध सस्थापन की दृष्टि से ''भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों मे आधुनिकता बोध'' विषय लिया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध-''भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासो मे आधुनिकता बोध'' के अध्ययन, विवेचन एवं मूल्याकन की दृष्टि से छ अध्यायो एव उपसहार के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय हिन्दी उपन्यास साहित्य-भगवतीचरण वर्मा का स्थान एवं महत्व के अन्तर्गत हिन्दी उपन्यास के विकास एवं महत्वपूर्ण उपन्यासकारों के कृतित्व का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इस प्रसंग में प्रेमचन्द पूर्व तथा भगवतीचरण वर्मा के समकालीन उपन्यासकारों का भी विवेचन किया गया है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय 'भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास साहित्य का परिचय' के अन्तर्गत उनके लगभग सभी उपन्यासों का कालक्रमानुसार विवेचनात्मक परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। अध्याय तीन के अन्तर्गत आधुनिकता बोध क्या है? तथा उपन्यास साहित्य में आधुनिकता बोध क्या है? का स्पष्टीकरण किया गया है।

अध्याच चार के अन्तर्गत भगवती बाबू के उपन्यासों में समाज, धर्म, राजनीति तथा दर्शन का उनके दृष्टिकोण के आधार पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय पाँच के अन्तर्गत उनके उपन्यासों के शिल्प में कथावस्तु, कथोपकथन तथा चरित्रांकन आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय छ में 'आधुनिकता बोध और भगवती बाबू के उपन्यास' के अन्तर्गत उनके उपन्यासों मे आधुनिकता बोध के दृष्टिकोण का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध का परिशिष्ट उपन्यासकार के उपन्यास साहित्य, तत्सम्बन्धी आलोचना साहित्य, एवं पत्रिकाए ये सभी शोध प्रबन्ध के पूरक तत्व हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय में निष्कर्ष निकालते हुए मेरा यह विनम्र आग्रह है कि भगवतीबाबू के उपन्यासो मे आधुनिकता बोध को ढूढना एक कठिन प्रयास रहा है। जिसमें कमोवेश लेखक के समस्त उपन्यासो से आधुनिकता बोध की सजगता आहरण करके विवेचना की गयी है। जिसमें सन्दर्भानुकूल व्याख्या दिखाते हुए स्थान-स्थान पर उचित एवं सप्रमाण उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं।

इस विषय पर शोध कार्य करने की प्रेरणा मुझे स्नातक स्तर पर भगवतीबाबू के 'तीन वर्ष' उपन्यास पढकर प्रभावित होना, तथा श्रद्धेय गुरूवर्य डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के परामर्श पर मुझे भगवती बाबू के समस्त उपन्यासों पर शोध कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अब जबकि शोध प्रबन्ध पूर्णता प्राप्त कर चुका है यह मेरे लिए सपनों के पूरा होने जैसा है। शोध कार्य की पूर्णता में श्रद्धेय गुरूवर्य डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने हर दृष्टि से महती भूमिका निभायी। बिना उनके इस शोध-सिंधु का संतरण मेरे लिए संभव नहीं था। स्नातक छात्र के रूप में तथा शोध छात्र होने से पूर्व के साक्षात्कार ने उनका व्यक्तित्व मुझे प्रेरणा देता रहा। शोध अवधि के अन्तर्गत उन्होंने विषय के सन्दर्भ में मेरी अन्तर्दृष्टि विकसित की तथा बराबर उत्साहवर्द्धन करते रहे। श्रद्धेय गुरू जी के प्रति आभार ज्ञापित करना धृष्टता होगी। मैं अपने विभागाध्यक्ष प्रो0 राजेन्द्र कुमार तथा प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र के प्रति आभारी हूँ क्योकि शोध अवधि के दौरान मुझे उनसे बार-बार कार्य करते रहने की प्रेरणा मिली। पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो0 मीरा श्रीवास्तव का आभारी हूँ जिन्होने मुझे कर्म करते रहने की प्रेरणा दी।

ममतामयी माँ एव परम पूज्य पिता श्री अमेरिका सिह के आशीर्वाद से ही शोध कार्य पूर्ण कर सका, उन्होने मुझे सदैव कर्तव्यपथ पर चलने की प्रेरणा एव आशावाद के मूलमन्त्र को धारण करने की प्रेरणा दी। मैं इस प्रेरणा से अपने पथ, पाथेय और पथ की दिशा निश्चित कर सका। मुझे अपने ताऊ श्री कैलाश सिह के व्यक्तित्व से सहनशीलता एव कर्म करने की प्रेरणा मिली। पितृत्व श्री त्रिलोकी सिह एव पितृत्य श्री मुसाफिर सिह की बार-बार की पूछ-ताछ मेरे लिए नयी उर्जा का सचार करता रहा। यह इन्हीं लोगों के आशीर्वाद का सुफल है कि शोध-प्रबन्ध वर्तमान कलेवर की पूर्णता प्राप्त कर सका।

इलाहाबाद के अध्ययन प्रवास के समय अग्रज श्री अरूण कुमार सिह का सरक्षण तथा डा० अनिल कुमार सिह, श्री संजय कुमार सिह से इस कार्य क्षेत्र में जाने की प्रेरणा मिली। अनुज आनन्द बहादुर सिंह, शेषनाथ सिंह, बलवन्त सिंह, सत्य प्रकाश सिह ने शोध कार्य के दौरान घरेलू उत्तरदायित्वों से मुक्त रखा। अनुज दिनेश प्रताप सिंह, यशवन्त सिह मेरे ही सनिध्य मे रहते हुए किसी न किसी रूप मे मेरे इस कार्य मे सहायक रहे।

मैं अपने अतिनिकटस्थ सम्बन्धियों विजय कुमार सिह, सत्येन्द्र सिह, प्रदीप कुमार सिह, संजय यादव, घनश्याम राय, तीर्थ राज राय का हृदय से आभारी हूँ क्योंकि शोध कार्य के समय बार-बार पूछ-ताछ करके मुझे प्रोत्साहित करते रहे।

मैं अपने शुभचिन्तकों डा० प्रदीप टण्डन, रमेन्द्र रत्नाकर, आनन्द सिंह, विनोद कुमार पाण्डे, अनिरुद्ध प्रताप, अजय कुमार सिह, अनूप कुमार, जयराम त्रिपाठी का आभारी हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में मेरे शोध कार्य से जुड़े रहे। मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूँ आनन्द कुमार सिह, राजेश गर्ग, शिवकुमार राय, प्रतीक सिंह, बलवन्त सिंह मेरे हर आदेश और अनुग्रह को स्वीकार किया। इन सभी के प्रति आभार प्रकट कर मैं इनके सहयोग को न्यून नहीं करना चाहता। इस शारस्वत साधना का कुछ कार्य घर पर रह कर भी पूरा हुआ। अतः यह स्वाभाविक भी है कि पूरा परिवार किसी न किसी रूप में मेरे

इस कार्य से जुड़ा रहा। उन सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर मैं उनका मूल्याकन नहीं कर सकता।

गुरु-गृह मे हमेशा मुझे पारिवारिक वातावरण प्राप्त हुआ, मैं इसके लिए आभारी हूँ। अत में मैं परिणीता हेमलता सिह को धन्यवाद देना चाहूगा जिन्होंने अपने दायित्वो का निर्वहन किया तथा जिम्मेदारियो से मुक्त रखा, इससे अधिक क्या अपेक्षा की जा सकती है।

शोध सम्बन्धी अध्ययन सामग्री के संचयन मे मैंने विभिन्न पुस्तकालयो का उपयोग किया। इनमे इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद केन्द्रीय पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद सग्रहालय, इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी एकेडमी का मैंने उपयोग किया। इनके अधिकारियों एव कर्मचारियो के सहयोग के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। अन्तत मैं उन विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके विचारों एव पुस्तकों से मैंने लाभ उठाया है।

मैं अपने टककों नलनी कम्प्यूटर के श्री चरन सिह, अनिल कटियार एव उनके सहायकों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होने अल्पसमय में एव तन्मयता के साथ शोध प्रबन्ध को टंकित किया।

इन्द्रबहादुर सिंह

इन्द्रबहादुर सिंह

दिनाक 30-12-2002

इलाहाबाद

अध्याय–1

हिन्दी उपन्यास साहित्य में–भगवतीचरण वर्मा का स्थान एवं महत्व

आधुनिक हिन्दी साहित्य की समस्त विधाओं में उपन्यास विधा का विशेष महत्व एव स्थान है। उपन्यास शब्द उप=समीप तथा न्यास=थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढकर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमे हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमे हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है। आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने में यह शब्द सर्वथा समर्थ है।[1]

हिन्दी उपन्यास साहित्य का विकास :

हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव भारतेन्दु काल से होता है। उसके पूर्व हिन्दी उपन्यास को जन्म देने वाले तीन प्रमुख सूत्र हैं–1. संस्कृत से अनुदित धार्मिक तथा पौराणिक कथाएं 2 उर्दू फारसी के अनुदित किस्से, सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूत्र 3 बंगला के मौलिक उपन्यासों का अनुकरण और अनुसरण था। क्यों कि बग्ला में वंकिम चटर्जी जैसे सशक्त और लोकप्रिय लेखक के आनन्दमठ, देवी चौधरानी जैसे दर्जनों उपन्यास तथा अन्य बंग्ला, तथा पाश्चात्य लेखकों का उपन्यास भी हिन्दी पाठ्कों को प्रभावित कर चुके थे। अपने मूल रूप में भी और हिन्दी अनुवाद रूप मे भी।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास :

हिन्दी के मौलिक उपन्यास की दृष्टि से देखा जाय तो बंग्ला और अंग्रेजी की तरह हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवास का 'परीक्षागुरू'

---

1 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, सपादक, धीरेन्द्र वर्मा, वाराणसी ज्ञान मण्डल लिमिटेड, तृतीय सस्करण, 1985, पेज 121

(1882 ई0) माना जाता है। इससे पूर्व श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'भाग्यवत। (1877 ई0) लघु सामाजिक उपन्यास लिखा था। हिन्दी के भारतेन्दुयुगीन मौलिक उपन्यासो पर सस्कृत के कथा साहित्य एव परवर्ती नाटक साहित्य के प्रभाव के साथ ही बंग्ला उपन्यासों की छाप भी लक्षित होती है। इसके बाद राधाकृष्ण गोस्वामी ने 'निस्सहायहिन्दू' (1890 ई0), बालकृष्ण भट्ट कृत 'रहस्यकथा' (1879 ई0) 'नूतन ब्रहमचारी' (1886 ई0), 'सौ अजान एक सुजान' (1892ई0), लज्जाराम शर्मा 'धूर्त रसिक लाल' (1890 ई0) इन सारे उपन्यासों की दृष्टि यही रही है कि समाज की कुरीतियों का विरोध करना और आदर्श परिवार समाज की रचना का सन्देश देना। ये सारे उपन्यास सोद्देश्य लिखे गये हैं। आलोच्य युग में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये हैं सामाजिक उपन्यासो की तुलना में। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'लवंगलता' (1890 ई0) को ऐतिहासिक उपन्यास कहना उचित नहीं। इस युग के एतिहासिक उपन्यासों की आकाक्षां पूर्ति बंकिम चन्द्र के अनुवादित उपन्यासों से हुई।

तिलस्मी से ऐयारी उपन्यासों में देवकीनन्दन खत्री कृत 'चन्द्रकान्ता' (1882ई0), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (चौबीस भाग, 1896 ई0), 'नरेन्द्र मोहिनी' (1893 ई0), 'वीरेन्द्रबीर' (1895 ई0) और 'कुसुम कुमारी' (1899 ई0) तथा 'हरे कृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' (1899 ई0) प्रमुख हैं। तिलस्मी–ऐयारी उपन्यास सामान्य जनता में खूब लोक प्रिय हुए। इनसे रहस्य रोमांच सस्ती कल्पना की पुष्टि निकली थी। इसी युग में गोपाल दास गहमरी कृत 'अदभुत लास' (1896 ई0), 'गुप्तचर' (1899 ई0), प्रमुख हैं। गहमरी जी ने भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण में लिखना आरम्भ किया और लगभग 200 जासूसी उपन्यास लिखे। उनके बहुतायत उपन्यास द्विवेदी युग में लिखे गये। जासूसी उपन्यासों में भी घटनाएं रहस्य रंजित होती थी। किन्तु उन्हें अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने की चेष्टा की जाती थी। रोमानी उपन्यासों में ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' (1888 ई0) प्रमुख है। इसमें श्यामा (ब्राहमण कुमारी)

और श्यामसुन्दर (क्षत्रिय कुमार) की प्रेम कथा का स्वच्छन्द शैली में चित्रण हुआ है।[1]

उपन्यासो मे सबसे महत्वपूर्ण एवं शसक्तधारा उन सामाजिक उपन्यासों का है जिनका श्री गणेश 'परीक्षा गुरू' से हुआ। इस युग के सर्व प्रधान उपन्यास लेखक किशोरी लाल गोस्वामी माने गये हैं, गोस्वामी जी ने मानवीय प्रेम के विविध पक्षों के उद्‌घाटन में ही अपनी शक्ति का अपव्यय किया। किन्तु जीवन के यथार्थ को कला में ढाल कर लिखने का कार्य द्विवेदी युग में ही शुरू हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपन्यासो का ढेर लगा देने वाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार पंडित किशोरी लाल गोस्वामी के सम्बन्ध मे लिखा है कि " गोस्वामी जी संस्कृत के अच्छे साहित्य मर्मज्ञ तथा हिन्दी के पुराने कविता तथा लेखक थे। संवत 1955 में उन्होंने 'उपन्यास' मासिक पत्र निकाला और इस द्वितीय उत्थान काल के भीतर 65 छोटे बड़े उपन्यास लिखकर प्रकासित किये। अत साहित्य की दृष्टि से उन्हें पहला उपन्यासकार कहना चाहिए।[2]

इसी के साथ हिन्दी साहित्य में अनुवादित उपन्यासो की भी धूम मची। हरिश्चन्द्र ने ही अपने पिछले जीवन में बंगभाषा के एक उपन्यास के अनुवाद में हाथ लगाया था; 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' मे। उनके समय में ही प्रतापनरायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी ने कई बंग्ला उपन्यासो का अनुवाद किया। बाबू गदाधर सिंह 'बंग विजेता', और 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद किया। राधाकृष्णदास, कार्तिक प्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि ने बंग्ला उपन्यास के अनुवाद की एक परम्परा सी चला दी। बंग्ला के बंकिमचन्द्र, रमेश चन्द्र दत्त, चण्डी चरण सेन, शरत चन्द्र चटोपाध्याय, तारा चन्द्र, राखालदास बन्दोपाध्याय और रवीन्द्र नाथ ठाकुर जैसे लेखकों के उपन्यासों के अतिरिक्त, अनेक उर्दु, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी के माध्यम से छपे हुए संसार के अनेक श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवाद हुए। अंग्रेजी से 'लंदनरहस्य' 'राम काका की कुटिया' उर्दू से 'पूना में

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ0 नागेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, दूसरा, सस्करण, पेज 473
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, रामचन्द्र शुक्ल, सं0 2002, पेज 434

हलचल' इत्यादि अनुदित हुए। उर्दू से आयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने भी 'वेनिस का बाका' जैसे अनुवाद किये। हरिऔध जी की रचनाओ में 'ठेठ हिन्दी का ठाट' है, और ब्रज नन्दन सहाय की रचनाओ मे भाव प्रधानता है।

बग्ला उपन्यासों का हिन्दी उपन्यासों पर प्रभाव संख्या, विविधता, प्रकार, भाव, भाषा, और प्रेरणा सभी दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास के विकाश में सहायक हुआ है। हिन्दी उपन्यास का स्वरूप, आकार, तथा गुण की दृष्टि से गरिमा प्रदान करने वाले उपन्यासकार प्रेंमचन्द के पूर्व के अर्थात पूर्व-प्रेमचन्द काल के प्रमुख उपन्यास कारों और उनकी प्रवृत्तियों पर विचार करना भी आवश्यक होगा।

1 भारतेन्दु युग अनेक प्रकार के आन्दोलनो, सुधारों ब्रहम समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, विधवा विवाह, बूढ्ढ विवाह, बाल विवाह, व्यभिचार, भूत प्रेतादि, जैसी कुरीतियों के विरोध का युग था। इस लिए इन समस्याओं का निदान प्रमुख रूप से नाटकों द्वारा ही अभिव्यक्ति पा सका है। कथा साहित्य से कहीं अधिक नाट्य रचना हुई।

2. सन् 1885 ई0 में इडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से राष्ट्रीय उत्थान का प्रभाव देश तथा विदेश व्यापी हुआ, फलत नाटक के साथ भी उपन्यास की धूम मचने लगी।

3. यूरोप का पूर्ण विकसित उपन्यास ही अनुवाद के रूप मे और बंग्ला उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी में आ गया। पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति का सम्पर्क ही उसे हिन्दी में ले आया।

4 हिन्दी के उपन्यासकार धर्म सुधार, तथा समाज सम्बन्धी उपदेशात्मक और मनोरंजन प्रधान तिलिस्म और ऐयारी के मौलिक उपन्यास लिखते रहे।

5 सच्चे अर्थो में प्रौढ़ता, गरिमा और मौलिकता की दृष्टि से श्रेष्ठता और परिमाण तथा संख्या की दृष्टि से भी और आलोचना में औपन्यासिक गुणों के आधार पर भी प्रेमचन्द के उपन्यास ही स्थायी साहित्य के धरातल पर महत्वपूर्ण हैं, प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासो का महत्व केवल ऐतिहासिक ही अधिक है।

लाला श्री निवास दास (सन् 1850 ई0 1887 ई0) का 'पराक्षा गुरु उपन्यास-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी सन् 1882 ई0 के प्रकाशित इस उपन्यास को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है। और इसे पहला अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास माना है उपन्यास कार ने इस ग्रन्थ के निवेदन में कहा है कि 'अपनी भाषाओं में नई चाल की पुस्तक होगी।'

भारतेन्दु मण्डल के प्रतिभाशाली सदस्य लाला श्री निवास दास ने इस नई चाल की पुस्तक में रोशनी के एक व्यापारी का खुशामदी एवं स्वार्थी मित्रों के चक्कर में पड़कर दिवालिया हो जाना और एक हितैसी मित्र की सहायता से सुधर जाना चित्रित किया है। इसमें लम्बे-लम्बे संवाद हैं और दृष्टांतों की बहुलता हैं। इससे कथा प्रवाह में व्याघात उत्पन्न होता है। इसमें नाटकीयता अधिक है। वैयक्तिक विशेषताएं अधिक नहीं उभर सकी। फिर भी मानवीय दुर्गुण तथा सदगुण दोनों ही पात्र को जीवन्त बनाते हैं। इस उपन्यास में सामाजिक दशा का उपयुक्त चित्र मिलता है। इसका नायक मदनमोहन झूठी सम्मान भावना, फिजूल खर्ची, अकर्मण्यता तथा अंग्रेजी के अन्धानुकरण का शिकार है। और अपने पिता की मान्यताओं तथा चरित्र का ठीक उल्टा है। परीक्षा गुरू में चित्रित चित्रपट विस्तृत है। इसके आत्म सजग लेखक ने हिन्दी पाठकों का मार्ग निर्देशित करते हुए हिन्दी की परम्परिक विधा नाटक की पुस्तक का उपन्यास विधा से अन्तर भी स्पष्ट किया है और उसके स्वरुप को भी बताया है।

इसके बाद के उपन्यासकारो में रत्नचन्द प्लीडर ने 'नूतन-चरित्र' (1883 ई0), बाल कृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रहमचारी' (1886 ई0) और 'सौ अजान एक सुजान' (1892 ई0) इनके उपन्यासों का उद्देश्य भी समाज सुधार ही है। राधा कृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिन्दू' (1890 ई0)। राधाचरण गोस्वामी और देवी प्रसाद शर्मा ने 'विधवा-विपाप्ति' (1888 ई0), कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'जया' (1896 ई0), उपन्यास लिखे।

कथा आख्यायिकाओं की तर्ज पर लिखे गये उपन्यास प्रयोगो मे डा0 जगमोहन सिह का 'श्यामा स्वप्न' (1888 ई0) तथा पं0 अम्बिका दत्त व्यास का 'आश्चर्य वृत्तान्त' (1893 ई0), उल्लेखनीय है। श्यामा स्वप्न मे गान्धर्व विवाह तथा रीति कालीन प्रसंग के दूती, नायिका विरह तथा क्षत्रिय कुमार का ब्राहमण कुमारी से प्रेम चित्रित किया गया है। दूसरी ओर 'आश्चर्य वृत्तान्त' में कोई प्रेम कथा नहीं है। वरन् एक व्यक्ति के स्वप्न का भ्रमण वृत्तान्त है।

किशोरी लाल गोस्वामी (1865-1932 ई०) :

गोस्वामी जी ने उपन्यास विधा को काफी गम्भीरता से लिया है स0 1955 में उन्होने 'उपन्यास' मासिक पत्र निकाला और इस द्वितीय उत्थान काल के भीतर 65 छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित किए। अत साहित्य की दृष्टि से उन्हे हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए।''[1]

गोस्वामी जी के उपन्यासों की प्रमुख विशेषता-

1 इनके उपन्यासों में सामाजिक तत्व की प्रमुखता है सभी उपन्यासों के दो-दो नाम रखे गये हैं।

2 रस पूर्ण घटना वैचित्रय की प्रधानता है।

3. साहित्य प्रयोजन के समाजोत्कर्ष तथा ज्ञान वितरण की अपेक्षा मनोरंजन को ही वरीयता दी है।

4 सामाजिक समृद्धि की दृष्टि से आर्थिक पक्ष को भी महत्व दिया है।

5. ये अपने उपन्यासों में उसकी अपेक्षा मनोरंजन को ही महत्व दिया है।

6. गोस्वामी जी का उपन्यास क्षेत्र में कोई मौलिक देन नहीं है केवल सिद्धान्त प्रतिपादन ही दिखता है।

7 अधिकांश उपन्यास के नाम नायिका के नाम पर ही रखे गये है; कुछ ही के नाम नायकों पर रखे गये हैं। उपन्यासों को सुखान्त बनाने की प्रवृत्ति हमेशा प्रबल रही है। किशोरी लाल गोस्वामी सामाजिक परिवेश का यथार्थ

---

1. हि0 सा0 का इति0, राम चन्द्र शुक्ल, काशी ना0 प्र0 सभा सं0 2002 पृ0 434

अंकन प्रस्तुत करते हैं। किन्तु सम्पूर्ण कथा की परिणति आदर्शवाद मे ही करते हैं। इनके संवाद स्वाभाविक हैं। भाषा को दृष्टि से उनके उपन्यास महत्वपूर्ण है। अत्यधिक विशेषणों का प्रयोग कदाचित बंग्ला प्रभाव के कारण ही हो। इनके अधिकांश पात्र मध्यम वर्ग के किन्तु रीतिकाल के नायक नायिका भेद की परिपाटी से प्रभावित तथा रोमाटिक प्रेम पद्धति से आच्छादित है। गोस्वामी जी कथानक प्रधान उपन्यासों का समर्थन करते हुए अपने व्यवहार एवं सिद्धान्त मे पूर्ण सामंजस्य रखते हुए उपन्यास की रचना की है।

देवकीनन्दन खत्री (1861 ई०–1913 ई०)

देवकीनन्दन खत्री ने हिन्दी साहित्य में तिलिस्मी एव ऐयारी उपन्यासों की एक परम्परा चलाई जिसमें प्रमुख है 'चन्द्रकांता' (1882 ई0), 'चन्द्रकांता सन्तति' (चौबीस भाग 1896 ई0), 'बीरेन्द्रमोहिनी' (1893 ई0), 'कुसुम कुमारी' (1899 ई0), उपन्यास 'काजर की कोठरी' (1902 ई0), 'अनूठी बेगम' (1905 ई0), 'गुप्तगोदना' (1906 ई0), 'भूतनाथ' नामक उपन्यास खत्री जी के मृत्यु के बाद उनके पुत्र दुर्गादास खत्री ने पूरा किया। ऐयारी और तिलिस्म के इन उपन्यासों पर आल्हा ऊदल जैसे वीर–काब्यों का प्रभाव दिखता है। इन उपन्यासो में न तो जीवन का आदर्श और न ही यथार्थ ही दिखता है। बल्कि जीवन के असंतोष और उसकी नीरसता से भिगो कर एक ऐसे काल्पनिक लोक का सृजन है जहॉ इच्छाओं को विश्राम मिलता है। पात्रों में हृदय पक्ष का अभाव है। उसके स्थान पर ऐयारी पक्ष का चमत्कार है। अत· एक वैचित्रयपर्ण संसार है। इसीलिए इसके पात्र सजीव नहीं है। मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से वे भले ही सफल न हो, किन्तु घटना वैचित्रय प्रधान होने के कारण उनका अपना महत्व है।

गोपालराम गहमरी (1866–1946 ई०) :

गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों का प्रवर्तन किया। गहमरी जी अंग्रेजी के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार 'आर्थर कानन डायल' (1859–1930ई0)

से प्रभावित थे–उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'ए स्टडी इन स्कारलेट' (1887 इ0), का उन्होंने गोविन्दराम शीर्षक से (1905) में रूपान्तरित भी किया। इसके अतिरिक्त 'सर कटी लाश' (1900 ई0), 'चक्करदार चोरी' (1901 ई0) 'जासूस की भूल' (1901 ई0), 'जासूस पर जासूसी' (1904), आदि हैं। गहमरी जी अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों से प्रभावित होकर 'जासूस' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया। इनके उपन्यासों के चरित्र जासूस, डॉकू, हत्यारे हैं किन्तु साथ ही उनके अधिकाश पात्र सामाजिक हैं। उनके सामाजिक उपन्यासों में चरित्र विकास भी हैं जो अधिकतर घटनाओं के बदलने के लिए ही हुआ है।

उनके उपन्यासों के प्रमुख उद्देश्य 'जगत का भला, चतुर होना; अवगुणो का त्याग, 'अनरूचि' 'जी लगाना' तथा 'कर्तव्य का बोध' इत्यादि है। संक्षेप में वह मनोरंजन के साथ ही लोक व्यवहार–ज्ञान देकर पाठक को शिक्षा भी प्रदान करते हैं। किन्तु उनके उपन्यासों में मनोरंजन की प्रधानता है।

मेहता लज्जा राम शर्मा (1863–1931 ई०) :

लज्जा राम शर्मा के उपन्यासो मे 'धूर्त रसिक लाल '(1889 ई0)', 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899 ई0), 'आदर्श दम्पत्ति' (1904 ई0), 'बिगड़े का सुधार' अथवा 'सती सुखदेवी' (1907 ई0) 'आदर्श हिन्दू' (1914ई0), इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यासों में हैं।

'स्वतंत्र रमा और परतत्र लक्ष्मी' नामक उपन्यास में रमा और लक्ष्मी नामक दो बहनों में रमा अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित स्वतंत्र जीवन बिताने की आकांक्षा रखती है। लक्ष्मी भारतीय संस्कृति से सराबोर प्रतिब्रता नारी का जीवन व्यतीत करती है। लेखक भारतीय संस्कृति की महत्ता को प्रतिपादित कर लक्ष्मी को श्रेष्ठ सिद्ध करता है। यह देखा जाय तो लज्जा–राम शर्मा अपने सारे उपन्यासों के माध्यम से भारतीय सस्कृति को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। उनके बीस–बाइस उपन्यासों में कुछ तो जीवनी मात्र हैं कुछ अनुवाद मात्र हैं। लज्जा राम शर्मा अपने उपन्यासों का उद्देश्य मनोरंजन और शिक्षा प्रद होना दोनों ही माना है।

वह उपन्यास की सामग्री को चार स्रोतों से लेते हैं-1 दैनिक जीवन की घटनाए, 2 पुरानी पोथियाँ, 3 जनश्रुतियाँ और 4 कल्पना। इस प्रकार वह उपन्यास सामग्री का स्रोत भूत, भविष्य और वर्तमान सभी मे मानते थे।

जिस प्रकार वह तिलस्मी ऐयारी, तथा जासूरी तथा डकैती के उपन्यासों की भर्त्सना करते थे, उसी प्रकार श्रृंगारिक उपन्यासों के प्रति भी उनकी अधिक रुचि न थी। वह तो शिक्षा प्रद उपन्यासों को वास्तविक उपन्यास मानते थे, जिसमें समाज का चित्र हो, प्रजा के सच्चे चरित्र का बोध हो। उसमें वर्तमान समाज के यथातथ्य रूप का चित्रण हो। उनकी मान्यता थी कि उपन्यास को भावी इतिहास का कार्य करना चाहिए। वह संक्षिप्त तथा चुस्त शैली के समर्थक थे।

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों की स्थिति :

जहाँ तक सामाजिक उपन्यासकार और उपन्यास की बात है, इस तरह के बहुत ही कम हैं।

प्रेमचन्द पूर्व सामाजिक उपन्यासकारों में श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्री निवास दास, बाल कृष्ण भट्ट, जगमोहन सिंह, राधाकृष्ण दास, लज्जा राम शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, ब्रज नन्दन सहाय, मन्नन द्विवेदी आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचन्द पूर्व युग में उपन्यास साहित्य की रचना नवीन सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त है जो काव्य माध्यम की खोज के परिणाम के रूप में आरम्भ हुई थी।[1]

प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास साहित्य की प्रेरक, सशक्त और स्फूर्तिदायिनी परम्परा सामाजिक जागृति के वाहक उपन्यासों की ही मानी जा सकती है। इन्ही

---

1. हि0सा0 तृतीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद, प्र0 सस्करण 1969-पेज 266।

उपन्यासो ने 'सेवा सदन' की रचना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।[1]

भारतेन्दु युग में लेखकों को उपन्यास रचना की प्रेरणा बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों से प्राप्त हुई।[2]

आलोच्य काल कथा साहित्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत समृद्ध है, किन्तु इस क्षेत्र मे लेखकों पाठ्कों की प्रवृत्ति कुतूहल, रहस्य और रोमाच के माध्यम से मनोरजन करने मे अधिक रही है। सामाजिक जीवन के यथार्थ समस्याओं को लेकर गम्भीर उपन्यासो की रचना इस युग में कम हुई। रहस्यमयी अद्भुत घटनाओं को श्रृंखला बद्ध करके एक अपरिचित संसार के पाठ्कों को भटकाते रहना लेखकों का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है। प्रकृति भेद के आधार पर द्विवेदी युगीन उपन्यासों को पाँच भागों में रखा जा सकता है-तिलस्मी, 1-ऐयारी उपन्यास, 2-जासूसी उपन्यास, 3-अद्भुत घटना प्रधान उपन्यास, 4- ऐतिहासिक उपन्यास और 5-सामाजिक उपन्यास।[3]

द्विवेदी युगीन सामाजिक उपन्यासों में जीवन का सुधार वादी दृष्टिकोण है। इस काल में अंग्रेजी और बंग्ला से बहुत से उपन्यास अनुदित हुए।

प्रेमचन्द पूर्व काल में ही सामाजिक उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण परम्परा का आविर्भाव और विकास हुआ, जिसका उद्देश्य समाज सुधार था। आगे चलकर प्रेचन्द्र ने इसे एक नई दिशा दी।

प्रेमचन्द युग (1918-1936 ई०) :

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले-पहल प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही दिखाई पड़ता है या हिन्दी उपन्यासों का वास्तविक विकाश प्रेमचन्द से ही मानना चाहिए। जब कुछ लोगों द्वारा यह बात कही जाती है तो उसके पीछे यही सत्य निहित होता है कि हिन्दी में उपन्यास की वास्तविक शक्ति

---

1 हि०सा० तृतीय खण्ड, भा०हि०प०, प्रयाग, प्र० सस्करण, 1969 पेज 267।
2 हि०सा० का इति०, सम्पादक डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, हि० सस्करण, पेज 482
3 हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय सस्करण 1987, पेज 519।

और स्वरूप को सही रूप में पहले-पहल प्रेमचन्द ने ही पहचाना। प्रेमचन्द के पूर्व के हिन्दी उपन्यासों में विषय और उददेश्य की दृष्टि रो कुछ वैविध्य भले ही रहा हो लेकिन वे कहीं न कहीं एक हैं और वे सब के सब उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्राप्त करने में असमर्थ है।[1]

प्रेमचन्द युग हिन्दी साहित्य अथवा आधुनिक हिन्दी साहितय का एक महत्वपूर्ण काल है। उपन्यास की दृष्टि से तो इसे निर्विवाद रूप से हिन्दी उपन्यास का स्वर्णकाल ही कहना चाहिए।

प्रेमचन्द युग (1918-1936 ई०) :

प्रेमचन्द का उपन्यास लेखन काल वैसे तो उर्दू में सन् 1905 ई0 से ही शुरू होता है किन्तु हिन्दी में सन् 1918 ई0 से 'सेवा सदन' के प्रकाशन के काल से ही प्रारम्भ होता है। अन्त होता है 1936 ई0 में उनकी मौत के साथ। यह युग राष्ट्रीय और सामाजिक उथल-पुथल का युग था। यह सक्रांति का काल था। दो प्रकार की संस्कृतियों का और दो प्रकार के मूल्यों का साथ ही साथ संघर्ष साम्राज्यवाद से राष्ट्रवाद का, सामंती सभ्यता से महाजनी सभ्यता का। सामन्ती और महाजनी दोनों सभ्यताओं से शोषित किसानों और मजदूरों की शक्तियों का।[2]

सेवा सदन के प्रकाशन के पूर्व प्रेमचन्द की कई उर्दू रचनाएँ प्रकासित हो चुकी थीं। इनमें से 'हम खुर्मा व हम सवाब' (1904 ई0), 'बाजारेहुस्न (1907ई0), 'जलवे ईसार' (1912 ई0), इत्यादि हैं। इसके अलावा उनके 'असरारे मआविद' उर्फ देव स्थान रहस्य', 'किसान', 'रूठी रानी' उपन्यास भी उर्दू में हैं।

प्रेमचन्द को हिन्दी साहित्य में उपन्यास सम्राट कहा जाता है। प्रेमचन्द के द्वारा उपन्यास साहित्य को समृद्धशाली एवं सर्वागीण विकास के पथ पर लाया

---

1 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, दूसरा सस्करण, पेज 15।
2. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दूसरा सस्करण 1982, पेज 32।

गया। प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य को जिन्दगी के साथ स्थापित किया। उसे जीवन की व्याख्या दी, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से जीवन्त किया। उन्होने अपने 'कुछ विचार' नामक निबन्ध सग्रह में उपन्यास के सम्बन्ध में व्याख्या देते हुए आत्म सजगता का परिचय दिया है। और ठीक ही कहा है कि-'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्य को खोलना उपन्यास का तत्व है।''

हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द एक मील के पत्थर की भाँति साबित हुए हैं। इसलिए उनके उपन्यासों के बारे में जाँच परख जरूरी है।

सेवासदन (1918 ई०) :

हिन्दी उपन्यास कार के रूप मे प्रतिस्थापित करने का काम सेवासदन से ही माना जाता है। यह उपन्यास उनके युग और समाज की पहिचान और उसके प्रतिनिष्ठा का साक्षी है। बेटी सुमन के विवाह के लिए दरोगा कृष्ण चन्द का घूस लेने के अपराध में जेल जाना, कुपात्र पति गदाधर द्वारा घर से निकाली गई सुमन का वेश्यावृत्ति अपनाना, छोटी बहन के विवाह में इसी विवाह के कारण वाधा पाकर सुमन का गंगा मे डूबने का प्रयास, वही पर पश्चाताप के कारण गदाधर के द्वारा बचाया जाना।

'सेवा सदन' में वेश्या जीवन को एक सामाजिक सन्दर्भ में देखा गया है। वेश्या जीवन पुरूष के लिए एक लुभावनी चीज रहा है। परन्तु यथार्थ वादी कलाकार ने इस लुभावनी चीज के नीचे छिपे नारी-जीवन की गहनतम प्रतारणा और अवमानना को उद्घाटित कर उन मूल कारणों पर प्रकाश डाला है, जो हमारे मध्यमवर्गीय स्त्री समाज को वेश्या बनने के लिए विवश कर देते हैं। इस उपन्यास के मूल में आर्थिक विषमता है।

प्रेमाश्रय (1921ई०) :

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में आर्थिक विषमता के ऊपर आरोपित न्याय, अधिकार और धर्म के चोंगे को उतार फेंका और सच्ची वस्तु स्थिति का विश्लेषण करते हुए मानवीय न्याय और अधिकार की बात उठायी है प्रेमचन्द की यह

मानवतावादी दृष्टि सामाजिक यथार्थ पर आधारित है। जो किसानों के जीवन पर है। किसनो, जमींदारों के आपसी सम्बन्धों की समस्याओं पर है। यह समस्या किसानो जमींदारो के संघर्ष पर है। बल्कि समस्त सत्ताधारी वर्ग और गरीब निरीह किसान प्रजा का है।

निर्मला (1923 ई०) :

इस उपन्यास पर दृष्टिपात करने पर लगता है कि प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से हट कर दुखान्त उपन्यास भी लिख सकते हैं।

रंग भूमि (1925 ई०) .

इस उपन्यास में एक विराट राष्ट्रीय मंच पर उसकी बहुआयामी परिस्थितियों और चेतना को उपस्थित किया है। राष्ट्रीय जीवन के विविध पहलुओं का अलग - अलग दस्तावेज नहीं वरन विविध पहलुओं से बने हुए संश्लिष्ट राष्ट्रीय जीवन का दस्तावेज है। इस उपन्यास के केन्द्र बिन्दु में पाण्डेपुर गाँव है। इस गाँव के माध्यम से मुख्य समस्या उभरती है। औद्योगीकरण की। गाँव का केन्द्रवर्ती पात्र है सूरदास। जो अपनी हड़पी जमीन के अन्याय के विरूद्ध एक स्वर से-एक न एक दिन हमारी जीत होगी-अवश्य होगी। सूरदास का आत्मबल, शोषण समस्या पर हावी है।

काया-कल्प (1926 ई०) :

उपन्यास में राजारानी, नेतागणों और कृषकों के संघर्ष में अन्त में एक रानी देव प्रिया के भोग-विलास के त्याग की कहानी है। यहीं काया कल्प है। और गाँधीवादी प्रभाव में हृदय परिवर्तन का एक अनुपम उदाहरण है।

प्रतिज्ञा (1929 ई०) :

यह उपन्यास विधवा की समस्या पर है।

गबन (1931 ई०) ·

यह उपन्यास कृष्णा जैसे उपन्यास का परवर्ती रूप है। गबन में एक अपात्रपति के जीवन का सुधार है उसकी पत्नी द्वारा। गबन का सामाजिक परिवेश, पारिवारिक और राष्ट्रीय आन्दोलन की समस्या से मिल कर अधिक व्यापक है।

कर्मभूमि (1932 ई०) :

पराधीनता, दमन, शोषण, आतंक, बेदखली, अस्पृश्यता आदि के ताने बाने से बुना यह उपन्यास कृषक मजदूरों के मनोबल का परिचायक है। सघर्ष और कर्म की कर्मठता का भी परिचायक है।

मंगलसूत्र (1936 ई०) :

यह आत्मकथात्मक एक अपूर्ण उपन्यास है जिसका सघर्षरत लेखक नायक देव कुमार अपने आदर्शों से हट रहा है।

गोदान (1936 ई०) :

गोदान प्रेमचन्द का ही नही, हिन्दी उपन्यास साहित्य का सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यास है। यह समाज के यथार्थ को उभारता है। लेखक इस उपन्यास में अपने प्रिय पात्रों को भी वस्तुवादी दृष्टि से चीरता चला जाता है। और ये पात्र अपनी समस्त विसंगतियों के साथ साकार हो उठते हैं।

इस उपन्यास में लेखक का आदर्शवादी सपना टूटता है। वह यथार्थ का द्रष्टा रह गया है। इस लिए न तो वह अन्त में कोई समाधान लादता है न ही किसी वर्गीय भावना से अपने पात्रों को उठाता गिराता है। यह सच है कि किसानों को चूसने वाली अनेक शोषक शक्तियां अमर वेल की तरह उनसे लिपटी हैं मगर उनकी धर्म भीरुता या आपसी स्वार्थभावना भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं है। लेखक की दृष्टि बिना किसी रियायत के किसानों की इन

सीमाओं की ओर बराबर लगी रही है।[1]

समाज में सम्बन्ध आर्थिक आधारों पर बने हैं, आर्थिक विसमताओं के कारण ही यह सामाजिक विषमता है। ये आर्थिक विषमता धर्म के ठेकेदार चालाक लोग पडे, पुरोहित-व्यापारी, व्यवसायी, जमींदार आदि हैं धर्म की आड़ में आर्थिक शोषण करते हैं।

गोदान की कथा का केन्द्र होरी नामक किसान का जीवन है। होरी अपने समस्त गुण दोष, अभाव और शक्ति के साथ भारत का सच्चा किसान है। उसका अपना व्यक्तित्व है जो उसे भीड़ से अलग करता है फिर भी वह किसानों का प्रतिनिधि है। किसान की एक छोटी सी आकाँक्षा, जीवन को विडम्बनाओ एवं विसंगतियों के जाल में फंसाती है। भारतीय किसान का आर्थिक पहलू कृषि है, जिसका मूल आधार है, गाय। गाय किसान की सम्पत्ति भी है और धर्म प्राण भारतीय जनता की पूज्य माँ भी। इतनी भयंकर विषमता है कि कृषि प्रधान देश भारत का एक किसान गाय रखने की एक छोटी सी चाहत लेकर इतना छटपटाहट की मानों वह साम्राज्य पाना चाहता हो। इस आकांक्षा में बाधक बने धर्मप्राण लोग जीवित गाय का सुख उठाने से वंचित कर देते हैं। और मृत्यु को प्राप्त गाय का सारा अभिषाप उसके सिर पर मढ़ देते हैं धार्मिक अनुष्ठान के लिए विवश कर, अपने आर्थिक कसाव में कस देते है। अंतत फिर सारी बात अर्थ पर आकर रूक जाती है। जो कि होरी के साथ यही होता है।

जीवन का वास्तविक बोध कराने वाले इस माहकाव्यत्मक उपन्यास में नायक होरी की गोदान की साध अपूर्ण रह जाती है। अकेला और असहाय कृषक समाज की गुटबन्दी और राजनीति का सामना कहाँ तक कर सकता है।? जब कि उसके शोषक सूदखोर, महाजन, पुरोहित, जमीदार, मिलमालिक, पुलिस, कारिन्दे और अधिकारी सभी हैं। अपने-अपने स्वार्थ साधन में लगे है। और जिस भारत का प्रतीक होरी है वह आज भी आर्थिक विपन्नता, देशी-विदेशी ऋण,

---

1 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरस मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि0स0 1982 प्रेज 55।

प्रादेशिक-संकट, सामाजिक गतिरोध और राजनीतिक दबाव के गतिरोध में जकड़ा हुआ है।[1]

प्रेमचन्द के पूर्वोत्तर उपन्यासों का स्तर बहुत कुछ मनोरंजनात्मक था, प्रेमचन्द ने उसे ऊपर उठाकर जीवन की सार्थकता का पर्याय बना दिया। समाज के चारों ओर फैले हुए परिवेष की सूक्ष्म से सूक्ष्म ईकाई की ओर उनकी दृष्टि गई, कदाचित ही समाज की ऐसी कोई समस्या बची हो जिस पर उन्हो ने लेखनी न उठायी हो। उनकी सामाजिक समस्याओं में अछूतोद्धार, विधवा विवाह, बृद्ध-विवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह के अतिरिक्त, पराधीनता, किसानों का केवल सूदखोरों, महाजनों द्वारा ही नहीं, वरन जमीदारों पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा शोषण, निर्धनता, अन्धविश्वास, अशिक्षा, नारी की घर के बारह की स्थिति, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, कुरीतियों तथा पारस्परिक वैमनस्य इत्यादि समस्याए मुख्य हैं। उनके सभी उपन्यासो में समस्याएं मुखर हो उठी हैं 'सेवा सदन' में यदि दहेज और कुलीनता की समस्या है, तो 'निर्मला' में दहेज-प्रथा और वृद्ध विवाह के फलस्वरूप विनास की। 'प्रेमाश्रय' मे कृषक जीवन की समस्या है और उसका विस्तार ग्रामीण तथा बाहरी कथानक के मध्य गोदान में हुआ है। रंगभूमि और कर्मभूमि में भी ग्रामीण स्थिति का मार्मिक निरूपण हुआ है। उनका बृहत उपन्यास 'गोदान' है। गोदान को कृषक एवं भारतीय जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। केवल प्रभावशाली चित्रण की दृष्टि से और व्यापक परिवेश के आधार पर भी वह हिन्दी के अन्य उपन्यासों से बाजी मार ले जाता है।

प्रेमचन्द भी महात्मागांधी से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाये। वह आर्यसमाज के आन्दोलनों और राष्ट्रीय आन्दोलनों से भी प्रभावित थे। उनकी दृष्टि मानवतावादी थी। वे पुराने मूल्यों के विघटन से परिचित थे इस लिए कृषक जीवन के उपरान्त उन्होंने मध्यवर्ग को अपने उपन्यासों का उपजीब्य विषय चुना।

---

1. हिन्दी साहित्य, तृतीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, 1969 ई0, पेज 282

मध्यवर्ग ही समाज की रीढ़ है। यही कारण है कि उनके उपन्यास अभिजात वर्ग अथवा केवल नागरिक जीवन पर आधारित नहीं हैं। हालाँकि वे नागरकि जीवन के विशेषज्ञ भी नहीं लगते।

प्रेमचन्द विषय के अनुरूप शिल्प, का अन्वेषण किया जहाँ तक भाषाा का प्रश्न है, वह अपने वैविध्य की दृष्टि से भी और भाषा के सटीक और सार्थक प्रयोग की दृष्टि से भी आज तक के हिन्दी उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ ठहरती है। अभिव्यक्ति की इतनी छटांए दिखाते हुए भी प्रेमचन्द की भी भाषा सरल और व्यजक हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनके परिस्थिति-चित्रण भी सजीव एव यथार्थ हैं।

गोदान की कथावस्तु, भाषा, उसका प्रस्तुतीकरण, उसकी संस्कृति-निष्टता, गोदान मे प्रयुक्त आंचलिकता, युग सन्दर्भ में उसकी सामाजिक और आर्थिक-उथल-पुथल, उसका महा काव्यात्मक रूप, उसका महान-लक्ष्य, उसका वास्तुकल्प, और शिल्प संधान सभी कुछ ऐसी उपलब्धियाँ हैं जो न केवल हिन्दी उपन्यास के मूर्धन्य स्थान पर वरन संसार के श्रेष्ठ उपन्यासों के मध्य गोदान का स्थान निश्चित करती है।

जयशंकर प्रसाद (1889-1937 ई०) :

उपन्यास विकाशक्रम में प्रेमचन्द के बाद प्रसाद जी भी दो उपन्यासों 'ककाल' (1929 ई0) और 'तितली' (1934 ई0) तथा एक तीसरा अधूरा उपन्यास 'इरावती' लिखा है। प्रसाद जी उपन्यासकार के रूप में बहुत नहीं ठहरते। ये अपने उपन्यासों में मध्यम वर्गीय सामाजिक समस्याओं को उठाया है।

उनका कंकाल उपन्यास एक विचार प्रधान उपन्यास है। जिसमें अभिजात्य अथवा उच्चकुलीनता का प्रश्न उठाकर एक गहरा आघात दिखाया गया है। उसके ऊपर से दिखने वाले आदर्शवादी पात्र बिल्कुल कच्चे सिद्ध हुए हैं। उसकी चरित्रांकन हासोन्मुखी सिद्ध हुई हैं। एक प्रकार से धर्म का खोल पहने हुए उच्चता की आड़ में उपन्यास की विपथगामी ढलान समाज के यथार्थ का ही चित्रण करती है।

विश्वम्भर नाथ 'कौशिक' (1881–1945 ई०) .

मॉ' और भिखारिणी' (1929 ई0), इनके दो उपन्यासों में प्रेमचन्द का अनुकरण दिखाई देता है तथा उसी शैली और विचारधारा के भी समर्थक थे।

प्रताप नरायण श्रीवास्तव (1904 ई०) :

इनके दो प्रमुख उपन्यास 'विदा' (1929 ई0), 'विजय' (1929 ई0), समस्यापूर्ण उपन्यास हैं। प्रथम में शहरी जीवन के विविध पक्ष उद्घाटित हुए हैं, दूसरे मे उच्चवर्गीय विधवा जीवन की कहानी है। ये प्रेमचन्द की तरह यथार्थ एवं आदर्श दोनो को एक साथ लेकर चले हैं। इसके अतिरिक्त 'विकास' 'वयालीस', 'विर्सजन', 'वेकसी का मजार', 'विश्वास की वेदी, प्रमुख हैं।

देवनारायण द्विवेदी (1889–1937 ई०) :

प्रेमचन्द की परम्परा मे द्विवेदी जी के 'मर्तव्यघात; 'प्रणय, 'दहेज, आदि सामाजिक समस्याओं पर लिखित है।

शिवपूजन सहाय का देहाती दुनियां (1926 ई०) :

उपन्यास प्रचलित रूढि से हटकर लिखी गई एक महत्वपूर्ण कृति है।

जैनेन्द्र (1905 ई०) :

प्रेमचन्द की गांधीवादी विचारधारा को अधिक गहराई से और त्याग एवं अहिसा तथा सहनशति के माध्यम से चित्रित करने वाले प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र हुए हैं जैनेन्द्र के तीन प्रमुख उपन्यास हैं। 'परख' (1929 ई0), 'सुनीता' (1935 ई0) और 'त्यागपत्र' (1037 ई0) इन उपन्यासों की विशेषता व्यक्ति की मानसिक गुत्थियों का अंकन है। ''जैनेन्द्र में कहानी निमित्त मात्र होती है व्यक्ति का मानस मन्थन ही उनका लक्ष्य होता है। जैनेन्द्र के 'अन्तर' में आधुनिक

जीवन के ज्वलन्त प्रश्न को उभार कर सामने नहीं ला पाते। वैसे इस उपन्यास में भारत में भूख और गरीबी पर प्रकाश डाला है।''[1]

भगवती प्रसाद बाजपेयी :

प्रेमचन्द के सिद्धान्तो से प्रभावित और गाधी फ्रायड मार्क्स के विचारो से अनुप्राणित भगवती प्रसाद बाजपेयी की रचनाओ में 'मीठी चुटकी' (1927 ई0), 'अनाथ पत्नी' (1928 ई0), 'मुस्कान' (1929 ई0), 'त्यागमयी' (1932 ई0), 'लालिमा' (1934 ई0), तथा पतिता की साधना भी अधिक लोकप्रिय रहीं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1986-1961 ई०) :

वैसे तो निराला जी का व्यक्तित्व कवि के रूप मे ख्याति प्राप्त है। लेकिन सामान्य जन रूचि के लिए उपन्यासो का भी लेखन किया जो कि उनके उपन्यास 'अप्सरा' (1931 ई0), 'अलका' (1933 ई0),, 'प्रभावती' (1936 ई0), 'निरूपमा' (1936 ई0), प्रसिद्ध हैं। बंग्ला उपन्यासों की भाँति इनके उपन्यासो में भी नारी जीवन की पराधीनता एवं परतन्त्रता के चित्र मिलते हैं। पुरूष की उच्छृखंलता स्थान-स्थान पर प्रकट हुई है।[1] 'अलका' मे संकट ग्रस्त अलका और उसके पति विजय की जवीन पथ पर द्वन्दपूर्ण घटना की कहानी है। 'निरूपमा' मे प्रेम कथा का रूप प्रस्तुत किया गया है। 'अप्सरा' की कथावस्तु में वेश्या जीवन का संकट स्पष्ट हुआ।

निराला जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि-वे इस काल में स्वच्छन्दतावादी पद्धति के प्रेममूलक उपन्यासों की रचना का श्रेय सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को है।[2]

बृन्दावन लाल वर्मा (18889-1969 ई०) :

हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से और वर्गो के विस्तार एव उनके अध्ययन की दृष्टि से तथा संख्या की दृष्टि से और उपन्यास कला की

---

1 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, 1982 दूसरा-पेज 91
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, स0 डॉ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली, 1987 दूसरा सस्करण, पेज 588

दृष्टि से बृन्दावनलाल वर्मा जी का स्थान महत्वपूर्ण है। वर्मा जी के उपन्यासों में सामान्य, असामान्य, दिव्य, ऐतिहासिक, सामाजिक, उच्च, निम्न मध्यवर्ग-सामन्तीय, रूढ और उदारवादी चरित्रों की जितनी कोटियाँ मिली है उतनी अन्य कहीं नहीं। इनके उपन्यासों के नाम पीछे दिये गये हैं।

यशपाल कृत 'क्यो' फसे (1968 ई0) में नवयुवक और अविवाहित पत्रकार भास्कर के उसकी अपनी मामी, वरून्निसा, मोना, मोती, हेना आदि कई स्त्रियों के साथ अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित हुआ, और लेखक अन्तविरोधों से भरे सामाजिक संस्कारों पर चोट करना चाहा है। लेकिन ऐक्स की भूख प्रधान हो जाने पर भी उसमे दृष्टिकोण नहीं है। जो युवा पीढी का होता है। जिसने युगबोध के नवीन स्तरो ंको आत्मसात किया है। जिसकी उपलब्धियाँ कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

नागार्जुनकृत 'इमरतिया' (1968)-बिहार के उत्तरी भाग में स्मगलिंग और धार्मिक एव सामाजिक भ्रष्टाचार की थीम लेकर लिख गया उपन्यास है उसमें उच्चवर्गीय स्वार्थ का भण्डाभोड़ यथार्थवादी और व्यंग्य पूर्ण दृष्टिकोण से किया गया है।

इलाचन्द्र जोशी ने 'ऋतु चक्र' (1969 ई0) में आधुनिक जीवन की सारी विसंगतियों को दूर करने के लिए जीवन में रोमांटिक चेतना जाग्रत करनी चाही है। जो कि उस काल के अनुरूप नहीं है।

'अश्क' कृत 'एक नन्हीं किन्दील' (1969 ई0) उनके द्वारा प्रस्तावित एक महाकाव्य उपन्यास के 'गिरती दिवारें' और शहर में 'घूमता आईना' के बाद तीसरे खण्ड के रूप में है। 'एक नन्हीं किन्दील' का युवक, चेतन, मध्यम वर्गीय युवक है। जो जीवन के चारो तरफ के संघर्ष में रत रहता है। वह विवशताओ और विषम परिस्थितियों, पारिवारिक जीवन की उलझनों और मानसिक ग्रन्थियों से जूझता है। किन्तु वह स्वतंत्रता की प्राप्ति के पहले का युवक है इस कारण उसमें वह तीखापन नहीं दिखाई देता जो स्वतंत्रता प्राप्ति की तमाम विसंगतियो ंके बाद

होना चाहिए। 'बांधो न नाव इसठाव' अश्क जी का अधूरा उपन्यास है।

धर्मवीर भारती कृत 'गुनाहो का देवता' (1949) में चन्दर और सुधा के माध्यम से शिक्षित मध्यवर्ग के काल्पनिक भावुकतापूर्ण रोमास को सामाजिक यथार्थ से जोड़ने की असफल चेष्टा की गई है। उपन्यास कार ने यौनाकर्षण पर आवश्यकता से अधिक ध्यान खींचा है। जिसके कारण यह उपन्यास वय सन्धि के किशोर किशोरियों को अधिक रोचक एव भावुकता प्रदान करता है। भाषा शैली की विशेषता तो मिलती है लेकिन जीवन की सच्चाई पर पकड ढीली लगती है। जिसकी एक नवचेतना प्राप्त लेखक से आशा नहीं की जा सकती है।

राजेन्द्र यादव कृत 'शह और मात' (1959 ई0) में उदय और सुजाता के माध्यम से एक सस्ती रोमानी कथा को गढ़ा है। आत्मकथात्मक शैली में लेखक गहरीअनुभूति और जीवन के प्रति आधुनिक संवेदना व्यक्त नहीं कर पाया प्रेमकथा में कोई नवीनता नहीं है। 'शह और मात' की अपेक्षा राजेन्द्र यादव कृत अनदेखे अनजान पुल (1963) में निन्नी नामक नायिका के रूप में एक व्यक्ति का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण अच्छा बन पडा है। कुरूपता में कारण हीन भावना से ग्रसित निन्नी दर्शन के प्रति प्रेम में निराश हो जाने के फलस्वरूप जो भग्नाशा, कुण्ठा आदि व्यक्ति करती है उससे लेखक को उसका व्यक्तित्व उभारने का अवसर प्राप्त हो जाता है। लेखक ने निन्नी के चरित्र चित्रण में बहुत ही सूझ-बूझ दिखाई है।

नरेश मेहता कृत 'डूबते मस्तूल' (1945) में रूप से सुसज्जित रंजना का उसी अपनी वासना के फलस्वरूप कई पुरूषों द्वारा छकी जाने और आधुनिक नारी का मनोविज्ञान चित्रित हुआ है। जिसमें उसके जीवन की विसंगतियों विद्रूपताओं का उल्लेख हुआ है। रंजना में आत्मविश्वास, अहं, स्पष्टवादिता, आत्मगौरव आदि गुणों के होते हुए भी उसके व्यक्तित्व में और समाज में सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाता। विद्रोही प्रकृति की एक मध्यम वर्गीय नारी के जीवन की अन्तिम परिणति क्या हो सकती है, जो कि उपन्यास में निरूत्तर है। लेकिन समाज तेजी

से बदल रहा है। जिसके उत्तर इसमें अवश्य दिखाई पड़ते हैं। उपन्यास आत्म कथात्मक शैली मे लिखा गया है। उसमे वह नवीनता है। जिसमें कुतूहल और जिज्ञासा उत्पन्न किया गया है।

मोहन राकेश कृत 'अन्धेरे बन्द कमरे' (1961) में आज के स्त्री पुरूष के सम्बन्धों विशेषत दाम्पत्य जीवन में पडी दरारों, विसंगतियो और विडम्बनाओ के बीच व्यक्ति व्यक्ति के सम्बन्धो में तनाव-खिंचाव आदि का चित्रण हुआ है। उपन्यास में मधुसूदन, हरवंश, शुकला और नीलिमा मुख्य पात्र हैं और कथानक की पृष्ठभूमि स्वतन्त्रता प्राप्त के बाद की दिल्ली का जीवन है जहां की भीड़भाड में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से अपरिचित सा दौड़ता चला जा रहा हैं लोखक ने दिल्ली के सांस्कृतिक, राजनीतिक, पारिवारिक खोखले पन का चित्रण करते हुए स्त्री पुरूषों के प्रति मानवता वादी दृष्टिकोण अपनाया है तथा अपनी सहानुभूति प्रदान किया है। किन्तु ऐसा लगता है कि वह नीलिमा और मधुसूदन की कथाओ में सामंजस्य नहीं बना पाया है। वैसे भी पूँजीवादी सभ्यता की विसंगतियों, पात्रों स्थित परिवेश चित्रण, पात्रों के चरित्र चित्रण, भाषा आदि की दृष्टि से मोहन राकेश को सफलता प्राप्त हुई है कहीं कहीं पर मधुसूदन का आदर्श वाद और अनावश्यक विश्तार अवश्य ही जरुरत से ज्यादा दिखाया गया है। न आने वाला कल (1968) मोहन राकेश जी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसमें एक मिशनरी स्कूल के अध्यापक मनोज की कथा है जो अपने स्कूली परिवेश और अपनी पत्नी शोभा के कारण स्कूल से त्याग पत्र देकर चला जाता है। पति-पत्नी अपने स्वतंत्रत्र व्यक्तित्वों से चिपके रहने के कारण एक दूसरे का साथ निभा नहीं पाते हैं और अलग हो जाते हैं। पत्नी अपने भूतपूर्व स्वर्गीय पति के साथ चली जाती है। स्कूल में धर्मगत गुटबन्दी और भेदभाव के कारण मनोज स्कूल के जीवन के साथ सामंजस्य नहीं बैठा पाता है। यहॉ पर मोहन राकेश मे मनोज की मानसिक प्रतिक्रियाओं का उल्लेख किया है उसके मानवीय पक्ष की आत्मीयता और सहजता से चित्रण किया हैं हरवंश और नीलिमा के माध्यम से मोहन राकेश ने देश व्यापी परिवेश भी उद्‌घाटित किया है। इस प्रकार से इस उपन्यास में स्त्री

पुरूष समाज और देश के विभिन्न सन्दर्भों के बीच व्यक्ति के सम्बन्धों का उभारा है। व्यक्ति के रूप में मनोज अपने जीवन में एक रिक्तता और विखराव का अनुभव करता है। जो सम्भवत आज के व्यक्ति की नियति मान ली गयी है। मनोज की कथा के अलावा उपन्यास में कोहली, शारदा काशनी आदि से सम्बन्धित प्रासगिक कथाओं में स्त्री पुरूष सम्बन्ध को भी दिखाया गया हैं जिससे यह लगता है कि आज के स्त्री पुरूष के सम्बन्ध की विद्रूपता किस प्रकार है। उपन्यास मे व्यक्ति के सम्बन्धों में तनाव, विखराव, आदि आ गया है, किन्तु व्यक्ति की अन्त में नियति क्या है, यह चीज उपन्यास मे व्यक्त नहीं हो पाती है।

निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' (1964 ई0) व्यक्ति केन्द्रित पहला उपन्यास अस्तित्व वादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर लिखा गया है। एक तलाक शुदा नारी का गाइड कथा नायक रायना, फ्रान्ज, टी टी आदि सभी एक दूसरे से अजनवी बने रहते हैं उनमें सत्रास और कुण्ठा है, शून्य और मृत्यु का भय है। वे अपने प्रति तो प्रतिबद्ध है लेकिन मानव समाज के प्रति नहीं। कथा का नायक समाज के सभी सामाजिक सांस्कृति एवं नैतिक मूल्यों को नकार देता है क्योंकि वह किसी सीमा में बधना नहीं चाहता है। वे जीवन की अभिव्यक्ति को सब कुछ मानकर वह सब कुछ करना चाहता है जो उसके जीवन का चरम लक्ष्य है। कथा का नायक अपने वर्तमान के प्रति सजग है उसे भूत भविष्य की परवाह नहीं हैं। मानव सम्बन्धों की पवित्रता का प्रश्न उनके सामने नहीं है क्योंकि वे आपस में शारीरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर भी एक दूसरे से अजनबी बने रहते हैं। उस समय के युवा पीढ़ी के मन·स्थितियों को जीवन की रिक्तता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन को सूसक्ष्म संवेदनात्मक शक्ति द्वारा पकड़ने और चित्रित करने और सम्भवतः आधुनिकता का रूप प्रस्तुत करने की चेष्ठा की है।

इस दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा के कृतियों का विवेचन करना भी अनिवार्य है जिससे उपन्यास जगत में उनके स्थान एव महत्व को जाना जा सके।

भवगती चरण वर्मा के उपन्यास साहित्य का परिचय

साहित्य में भगवतीचरण वर्मा जी का जीवन कवि रूप में शुरू हुआ था। जिस समय उनकी आयु मात्र 14 वर्ष की थी, उस समय उन्होंने कविताओं के साथ-साथ गद्य भी लिखा, परन्तु साहित्य में प्रमुखता कविता को ही दी। कालान्तर मे पण्डित विशवम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के सान्निध्य में आने के फलस्वरूप उनमें कथा-साहित्य के प्रति अभिरूचि जाग्रत हुई।[1] वर्मा जी ने सन् 1922-23 ई0 में 'हिन्दी मनोरंजन' नामक पत्रिका में कुछ कहानियाँ भी लिखीं, किन्तु आज वे कहानियां अनुपलब्ध हैं। तत्पश्चात् कथा साहित्य के क्षेत्र में उनका पदार्पण 'पतन' (1928 ई0), नामक उपन्यास से हुआ। वह वर्मा जी का प्रथम उपन्यास था। इसमे शिल्पगत अपरिपक्वता दृष्टिगत होती है। और कुछ लोग तो 'पतन' से अपरिचित भी लगते हैं। 'स्वयं वर्मा जी भी उस साहत्यिक कृति को महत्व नहीं दे पाते हैं।''[2] वर्मा जी के विचारों एवं जीवन-दर्शन के सूत्र उसमें किसी न किसी रूप में अवश्य मिलते हैं। जो कि रचनाकार की मूल प्रवर्तिनी दृष्टि के बीज से हमें परिचित कराते हैं।

पतन :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1928 में हुआ। 'पतन' उपन्यास मे अवध के अन्तिम शासक नवाब वाजिद अलीशाह के पतनोन्मुखी शासन की पृष्ठभूमि में तत्कालीन जनजीवन का चित्रण करने का प्रयास किया गया है। नवाब वाजिद अलीशाह का जीवन इतना रोचक, आकर्षक एवं विचित्रपूर्ण रहा है कि उससे प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य में अनेकों उपन्यास लिखे गये हैं। जिसमें इस विलासी, कला प्रेमी एवं रंगीले नबाव के व्यक्तिगत जीवन एव शासन-काल के प्रामाणिक एवं यथार्थ चित्र मिल जाते हैं। इन्होंने नवाब वाजिद अलीशाह के हरम, तथा दरबार की झांकी की पृष्ठभूमि में तत्कालीन जनजीवन को 'यथा राजा

---

1. वर्मा जी के (दिनांक हीन) पत्र के आधार पर
2 वर्मा जी के पत्र के आधार पर.

तथा प्रजा' के सिद्धान्त पर चित्रित करने प्रयास किया है।[1]

कुछ उपन्यास समीक्षको ने यह आरोप भी लगाया है कि यह चित्रण दन्तकथाओं पर आधारित है और प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव के कारण शिथिल है।[2] यद्यपि यह मान बैठना कि जनश्रुतियां सदैव असत्य या अप्रामाणिक ही होती हैं यह सही नहीं है। जनश्रुतियां कभी-कभी पक्षपातपूर्ण इतिहास की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती हैं।

उपन्यास का प्रारम्भ प्रताप सिंह, रणवीर सिंह, प्रकाश चन्द्र और सुभद्रा से सम्बन्धित है। प्रताप सिंह में अपने सामने वाले व्यक्ति को सम्मोहित करके उससे अपनी इच्छानुसार कार्य करा लेने की अद्‌भुत शक्ति है। प्रताप सिंह एक ओर अपने को रणवीर सिंह का अभिभावक तथा दूसरी तरफ वह उसी की प्रेयसी सुभद्रा को भी अपनी दानवी शक्ति से सम्मोहित करके वाजिद अलीशाह की बेगम बना देता है ताकि वह उसकी वासना पूर्ति का साधन बन सके, रणबीर उसे जान से मारने का प्रयत्न करता है किन्तु प्रताप सिंह की शक्ति के आगे उसका कोई वश नहीं चल पाता है।

प्रकाशचन्द्र नामक व्यक्ति की अकर्मण्यता के कारण उसकी पत्नी सरस्वती उसके लिए भवानीशंकर के प्रेम पास में आबद्ध होकर पतन की ओर अग्रसर होती है। अपने आप को पतन से बचाने के लिए भवानीशंकर अपनी पत्नी उर्मिला के साथ अपने चाचा मुंशी राम सहाय के पास चला जाता है। प्रकाशचन्द्र और सरस्वती भी लखनऊ पहुंचते हैं तथा सुभद्रा का पता लगाता हुआ रणधीर भी लखनऊ पहुंचता है। प्रताप सिंह ज्योतिषी का रूप धारण कर नवाब के दरबार में अपना प्रभाव रखता है। प्रकाश चन्द्र दैवीय शक्तियों को प्राप्त करने के लिए प्रताप सिंह का शिष्यत्व प्राप्त करता है। गुरू दक्षिणा में प्रताप सिंह सरस्वती को अपनी वासना का शिकार बनाता है और सरस्वती भवानीशंकर के साथ कानपुर

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, डा0 इन्दू शुक्ला, पेज-2
2 उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, पेज-19

चली जाती है। उन्हीं के पीछे भवानीशंकर की पत्नी, माता और चाचा भी लाव्त हैं। सरस्वती की असहजता के कारण नाव पलटने से सरस्वती डूब जाती है।

नवाब सब कुछ जानते हुए भी अपनी ऐशो आराम की आदत के इतने गुलाम हो गये हैं कि उससे निकलने का कोई यत्न भी नहीं करते, उपन्यास का प्रमुख पात्र प्रताप सिंह ज्योतिषी के रूप में दरबार में पहुंच जाता है। अपनी आखों से घूर कर देखने पर सामने वाले को सम्मोहित करने की दैवी शक्ति से समुन्नत, प्रताप सिह नवाब को शराब के गिलास में उसका भविष्य दिखला कर बता देता है कि उनके राज्य की जड़े खोदने वालों में प्रमुख हैं वजीर नकीब अली खाँ।

यह राज खुलने पर वजीर नकीबअली खाँ तथा अन्य कर्मचारी प्रताप सिंह से चिढ जाते हैं और उसे जेल में बन्द करवा देते हैं। प्रताप सिंह का परिचय गुलनार से होता है। गुलनार मुहम्मद याकूब वजीरअली नकी के विश्वास पात्र कर्मचारी की पुत्री है। गुलनार प्रताप सिंह के दैवी शक्ति से मोहित होकर उससे प्रेम करने लगती है। बन्देहसन, जो गुलनार की इच्छा के विरूद्ध राधारमण (प्रताप सिंह) को मुक्त करा देता है और राधारमण और गुलनार वहाँ से भाग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि मुहम्मद याकूब क्रोध में आगबबूला होने लगता है और वन्देहसन अपनी प्रेमिका को लेकर भागने वाले राधारमण के खून का प्यासा होकर उसकी तलाश करने लगता है। अन्त में राधारमण के हाथों मुहम्मदयाकूब मारा जाता है और अपनी पिता की कटार से घायल होकर गुलनार मर जाती है। गुलनार के शव को लेकर वन्देहसन भी गोमती में डूब कर आत्महत्या कर लेता है।

इस प्रेम त्रिकोण एवं सितमआरा की प्रणय कथा के माध्यम से वर्मा जी ने वाजिद अलीशाह के युग के रोमानी वातावरण को प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

पतन मे वर्माजी की मूल जीवन-दृष्टि का बीजारोपण मिलता है। इस उपन्यास में वर्माजी ने अपने विचारक एव तार्किक रूप को प्रस्तुत कर दिया है। जिसका परिस्कृत एवं संशोधित रूप इनके अगले उपन्यास 'चित्रलेखा' मे मिलता है। इस उपन्यास में प्रेम और घृणा, प्रेम और तृष्णा, पाप और पुण्य, यौवन और उल्लास, विश्वास, व्यभिचार, कर्तब्य तथा अन्तरात्मा, ईश्वर, धर्म और पुनर्जन्म, शकुन, विवाह एव नियतिवाद सम्बन्धी विचारों को विस्तार से प्रकट किया है। "प्रेम एव तृष्णा दोनो का सम्बन्ध 'पसन्द करने' से है किन्तु दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है।"[1]

प्रेम को सद्वृत्ति एव तृष्णा को असद्वृत्ति से देखते हुए प्रताप सिंह कहता है-"प्रेम अमृत है। प्रेम सांसारिक नहीं है, वह दैवी होता है। प्रेम में गम्भीरता होती है। तृष्णा मनुष्य को पागल बना देती है। प्रेम मानसरोवर की भाति शान्त है, तृष्णा सागर की उतावली लहरों की भांति उच्छृंखल है। प्रेम में सदा स्थिरता रहती है, वह सदा एक सा रहता है, तृष्णा परिवर्तनशील है।"[2]

प्रेम और तृष्णा ये दोनों प्रवृत्तियाँ मनुष्य में विद्यमान होती हैं। एक के शिथिल होने पर दूसरा भाव तीव्र होने लगता है।

वर्मा जी की दृष्टि में 'पाप और पुण्य' की समस्या व्यक्ति एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं। एक गरीब व्यक्ति के लिए भोग-विलास और व्यभिचार पाप बन जाता है लेकिन वहीं पर एक सम्पन्न व्यक्ति के लिए भोग-विलास, ऐशो-आराम मामूली सी बात होती है। प्रताप सिंह ने व्यभिचार के लिए हत्या की थी इसे उसकी अन्तरात्मा पाप कहती थी। पाप और पुण्य का सम्बन्ध अन्तरात्मा एवं सामाजिक नियमों से है, पाप पुण्य को ईश्वर नहीं बल्कि समाज ही उनका निर्णय करता है-'कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें प्रत्येक समाज पाप समझता है, उन्हीं बातों पर सब मनुष्यों की अन्तरात्माएं सहमत हैं। चोरी करना

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, डा0 इन्दू शुक्ला, पेज 5
2 पतन, भगवतीचरण वर्मा, पेज 16-17

पाप है, क्योकि यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति चोरी करने लगे तो समाज मे ऐसी गड़बड़ मचेगी कि समाज की उसी दिन समाप्ति हो जायेगी। बालक समाज के प्रत्येक मनुष्य से यही सुनता है कि चोरी करना पाप है। उसके हृदय पर इसका प्रभाव पडता है और उसकी अन्तरात्मा बन जाती है बाद में वह जब चोरी करने पर उद्यत होता है तो उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कारती है।''[1]

इसी सन्दर्भ में आगे 'नियति' पर वर्मा जी की आस्था 'पतन' से ही झलकने लगती है वर्मा जी का मन्तव्य है कि मनुष्य स्वयं कुछ नहीं करता वह तो नियति के अधीन है। मनुष्य किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा सचालित किसी पथ पर चलता है वर्मा जी की 'नियति' विषयक धारणा पतन में मुख्यत नवाब वाजिद अलीशाह के कथनों द्वारा-'ऊपर खुदा है, उसकी मर्जी हमेशा बडी होगी, फिर मैं यह सब क्यों करूं वह जो कुछ करना चाहता है, वह टल नहीं सकता। फिर मैं यह सब क्यों करूं।''[2]

'पतन' के लेखन की अवस्था तक वर्मा जी की मनोवृत्ति समाज से अधिक जुड़ी थी, व्यक्ति स्वातन्त्रय की स्थापना की आकांक्षा तो उसमें थी किन्तु समाज का सबल विरोध करने का साहस वह तब तक नहीं जुटा पाया था। इसके उपरान्त यह कहा जा सकता है कि औपचारिक कला में इनकी विचारधारा और जीवन दर्शन के बीज किसी न किसी रूप मे देखने को अवश्य मिल जाते हैं, जिसको कि वर्मा जी अपने आगे के उपन्यासों में विकसित किया। जैसे-पाप और पुण्य की समस्या, नियतिवाद और सामन्तवाद, विवाह संस्था और विलासी जीवन के प्रति विशेष प्रकार का मोह आदि।

1 पतन, भगवतीचरण वर्मा, पेज 147
2 पतन, भगवतीचरण वर्मा, पेज 35

चित्रलेखा :

हिन्दी औपन्यासिक परम्परा में उपन्यासकार भगवती चरण वर्मा को एक सुनिश्चित स्थान दिलाने वाली महत्वपूर्ण कृति 'चित्रलेखा' ही है। 'चित्रलेखा' का प्रकाशन 'पतन' के 7 वर्ष पश्चात् 1934 ई में हुआ। इस लम्बे अन्तराल के बीच वर्मा जी ने स्वाध्याय एवं मौलिक प्रतिभा से सम्पन्न होकर के अपनी अभिव्यंजना कला का पर्याप्त विकास कर लिया, जिसके प्रतिफल से 'चित्रलेखा' की सृष्टि हुई। जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में धर्म, दर्शन, रीति–रिवाज, आचार–विचार, जीवन–मूल्य तथा नैतिक आदर्शों का सजीव चित्रण किया गया है। इस उपन्यास का उद्देश्य ही समाज की गूढ नैतिक मान्यताओं से असहमति व्यक्त कर व्यक्ति की विचारधारा को महत्व प्रदान करना है। इसे उपन्यास साहित्य का प्रथम घोषणापत्र कह सकते हैं इस उपन्यास के माध्यम से एक महत्वपूर्ण समस्या पाप और पुण्य सम्बन्धी संकल्प–विकल्पात्मक मन प्रवृत्ति को वर्मा जी ने बड़े ही सलीके के साथ सुलझाया है। वर्मा जी की भारतीय परम्परा से भिन्न यह धारणा है कि पाप और पुण्य के बीच कोई निश्चित और दृढ़ लकीर नहीं खींची जा सकती। रत्नाम्बर द्वारा वर्मा जी पाप और पुण्य का विश्लेषण करते हुए कहते हैं "संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का ही दूसरा नाम है।"[1]

कथानक का प्रारम्भ रत्नाम्बर की कुटी में शिष्य श्वेतांक की जिज्ञासा "और पाप क्या है" से होता है। गुरू अपने शिष्यों की जिज्ञासा का उत्तर उपदेश द्वारा न देकर संसार–सागर में स्वतः ढूंढ कर प्राप्त करने का निर्धारण करते हैं। श्वेतांक क्षत्रिय है इसलिए उसे एक समृद्ध एवं युवा सामंत बीजगुप्त के सानिध्य में छोड़ देते हैं और विशाल देव, जो ब्राह्मण है को योगी कुमारगिरि के पास ले जाते हैं, स्वयं एक वर्ष के साधना में लीन हो जाते हैं। उसके उपरान्त शिष्यों के अनुभव के आधार पर वह श्वेतांक की जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत करते हैं।

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147

दो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जन्में बीजगुप्त 'भोगी' एक शाक्त सम्पन्न वैभव-विलास में सुख का अनुभव करने वाला सामन्त है और कुमारिगिरि नवयुवक 'योगी' हैं जो कि घोषित करता है कि समस्त वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है।

पाटलिपुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में राजनर्तकी 'चित्रलेखा' सामन्त बीज गुप्त में अपने पूर्व प्रेमीपति कृष्णादित्य की साम्यता देखती है, तथा बीजगुप्त से प्रेम करती हुई उसकी प्रेयसी बन जाती है। दोनों शास्त्रानुसार विवाह न कर भी पति पत्नी की भाति जीवन जीते हैं।

सम्राट चन्द्रगुप्त की सभा में राजनर्तकी चित्रलेखा योगी कुमारगिरि की ऐन्द्रजालिक शक्ति को अपनी मानसिक वाक्प्रतिभा से पराजित करती है, और राजा की ओर से विजयमुकुट की अधिकारिणी राजनर्तकी घोषित की जाती है, पर चित्रलेखा ने विजयी होकर भी मुकुट योगी को पहना दिया। अत वह परास्त कर के भी योगी के आकर्षण में बंध जाती है। यह आकर्षण इतना तीव्र होता है कि समस्त चमक दमक एवं वैभव को तिलांजलि देकर कुमारगिरि का शिष्यत्व ग्रहण करने उसके आश्रम चली जाती है। पर योगी नर्तकी के सहवास द्वारा अप्रत्याशित अमंगल की आशंका से इसे एक दम स्वीकार न करके निश्चयार्थ कुछ समय मांगता है।

इसी समय गणराज्य के मुख्याधिकारी की कन्या यशोधरा विवाह योग्य रहती है। उनकी दृष्टि में बीज गुप्त यशोधरा के लिए योग्य वर है। वे बीजगुप्त को भोजन पर आमन्त्रित कर विवाह का प्रसंग छेड़ते हैं पर बीजगुप्त की दृष्टि में प्रेम की पूर्णता विवाह है।

इसी समय यशोधरा और श्वेतांक की प्रासंगिक कथा मुख्य कथानक में नयी दिशा दे देती है। यशोधरा के जन्मोत्सव पर चित्रलेखा, बीजगुप्त से मिलती है और अपने नीति कुशल मस्तिष्क से बीजगुप्त से मुक्ति का उपाय खोजती है। वह बीजगुप्त के जीवन के हितार्थ उससे यशोधरा से विवाह करने का आग्रह

करती है। इसके पश्चात् चित्रलेखा कुमारगिरि से दीक्षा प्राप्त करन उसक कुटिया में पहुंच जाती है। चित्रलेखा से बीजगुप्त का निराश मन यशोधरा की तरफ उन्मुख होता है और अपने नीरसमय जीवन को सुखमय बनाने के लिए बीजगुप्त यशोधरा से विवाह का निश्चय करता है। इस बात का पता कुमारगिरि को चल जाता है तो कुमारिगिरि इसका दुरूपयोग करता है। वहीं पर कुमारगिरि के वासना के द्वन्द में पड़ी हुई चित्रलेखा कुमारगिरि के प्रति समर्पित हो जाती है और विशाल देव से वास्तविकता का ज्ञान हो जाने पर चारित्रिक पतन पर पश्चाताप करती है। जब बीजगुप्त को यह ज्ञात होता है कि श्वेतांक यशोधरा से प्रेम करता है तो वह यशोधरा से अपने विवाह के निर्णय को समाप्त कर देता है तथा स्वयं की समस्त सम्पत्ति श्वेतांक को देकर यशोधरा से विवाह करवा देता है। वह स्वयं सन्यास लेकर देशाटन के लिए निकल पड़ता है। वहीं पर चित्रलेखा बीजगुप्त से क्षमायाचना करती है तब बीजगुप्त पथभ्रष्ट चित्रलेखा को स्वीकार करके भिखारी के वेश में पवित्र प्रेम बंधन में बंधकर देशाटन करने निकल पड़ते हैं।

रत्नाम्बर महाप्रभु के माध्यम से वर्मा जी ने समाज की खोखली मान्यताओं का प्रत्याख्यान करने का प्रयास किया–"संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन·प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव अप्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है वह परिस्थितियों का दास है– विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है, फिर पुण्य और पाप कैसा ?"[1]

इस सम्पूर्ण घटना प्रवाह को श्वेतांक और विशाल देव अत्यन्त निकट से देखते हैं और दोनो उससे अलग–अलग अनुभव ग्रहण करते हैं। श्वेताक को अनुभव होता है कि बीजगुप्त देवता है और कुमारगिरि पापी है तथा विशाल देव को लगता है कि कुमारगिरि महान है, बीजगुप्त पतित है। इस प्रकार से श्वेताम्बर ने दोनों शिष्यों को पाप और पुण्य को मनुष्य की परिस्थितियों की

1. चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147

परक हो। लेखक ईश्वर द्वारा निर्मित अन्तरात्मा तथा किसी विभाजक रेखा द्वारा तय किये गये पाप और पुण्य को नकार देता है। अर्थात नैतिकता की सार्वभौमिक एव सार्वकालिक परिभाषा नहीं हो सकती देश काल के अनुसार स्वत बदलती रहती है।

'चित्रलेखा' कृति एक नाटकीय शिल्प विधि की रचना है। पात्रों के कथोपकथन कहीं भी इतर और नीरस नहीं होते हैं। इस उपन्यास के पात्र ऐसे वार्ता करते हैं जैसे नाटक में मच पर अभिनेता। इसके वार्तालाप उपन्यास की प्रत्येक गतिविधि का संचालन करते हैं। इन्हें कथानक को रसहीन बनाने वाला तत्व कदापि नहीं कहा जा सकता है। इसके माध्यम से कथानक में गति और प्राण दोनों तत्वों का संचार होता है।

इस उपन्यास के पात्रो मे चित्रलेखा, बीजगुप्त, कुमारगिरि और अन्य पात्रों में मानव हृदय की समस्त भावनाए-जैसे राग, द्वेष, ईर्ष्या, प्रेम, मोह, साहस, त्याग, घृणा, क्रोध, निष्ठा, भक्ति आदि दिखाई देती है।

यशोधरा के प्रसंग का उद्घाटन बीजगुप्त के पवित्र प्रेम का मापदण्ड है। चित्रलेखा उपन्यास की सबसे सशक्त पात्र है जो अपनी शक्ति का परिचय अपने सबल संवादों द्वारा देती है। कुमारगिरि के यह कहने पर कि "स्त्री अंधकार है, मोह है माया है और वासना है, रही स्त्री के अंधकार तथा माया होने की बात योगी वहाँ भी तुम भूलते हो। स्त्री शक्ति है, वह सृष्टि है, यदि संचालित करने वाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है यदि उसे संचालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है। इसलिए जो मनुष्य स्त्री से भय खाता है वह या तो अयोग्य है या कायर। अयोग्य और कायर दोनों ही व्यक्ति अपूर्ण हैं।"[1] बीजागुप्त को उपन्यासकार की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त है। इस सम्बन्ध में एक आलोचक का मत है-'वर्मा जी जीवन को कर्म क्षेत्र मानते हैं और उससे विमुखता-अकर्मण्यता,

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147-148.

चित्रलेखा में प्रेम और विवाह, प्रेम और वासना, दुःख और सुख, नारी आर पुरुष, परिस्थिति और व्यक्ति, पाप और पुण्य आदि गम्भीर समस्याओ को नये नाटकीय ढग से उपन्यास में परोसा गया है। उपन्यासकार ने अपनी रचना में महाप्रभुरत्नाम्बर द्वारा पुण्य की व्याख्या की है-''संसार में पाप कुछ भी नहीं वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है-प्रत्येक व्यक्ति इस ससार के रचमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मन प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है-यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है परिस्थितियो का दास है-विवश है। कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है फिर पुण्य और पाप कैसा? संसार मे इसलिए पाप की परिभाषा नहीं हो सकती है। हम न पाप करते हें और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हमे करना पड़ता है।''[1]

उपन्यास की शुरूआत जितना ही नाटकीय है अन्त उससे भी ज्यादा प्रभावोत्पादक है। संवादों द्वारा नाटकीय शिल्प विधि की सौन्दर्य वृद्धि हुई है। परिस्थिति, नियति और प्रकृति के आगे मनुष्य कितना निरूपाय एव असहाय है वह सब 'चित्रलेखा' द्वारा तर्कपूर्ण ढंग से पाठक के सामने प्रस्तुत हुआ है। इस कृति में कथावस्तु संगठन, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण तथा उद्देश्य आदि सभी तत्वों का बड़े ही सुन्दर तरीके के साथ समन्वय किया है। कथोपकथन सरसता के साथ-साथ चुटीले तथा व्यंग्य प्रधान हैं, और भाव गाम्भीर्य से पूर्ण है। भाषा में पात्रो के अनुकूल युगीन वातावरण की छाया उभरती है। उपन्यास चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का चित्ररूप' उपस्थित करवा देता है। लेखक ने संक्षिप्त से कथानक में इतिहास, संस्कृति और दर्शन को अनुस्यूत करके अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर उसे कलात्मक रूप दे दिया है।

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147-148

तीन वर्ष :

भगवती चरण वर्मा का अगला उपन्यास 'तीन वर्ष' 1936 ई0 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के नायक रमेश के विश्वविद्यालय जीवन के तीन वर्षों में घटित होने वाली कथा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस आधार पर इस उपन्यास का नाम भी 'तीन वर्ष' रखा है। इसमें विश्वविद्यालयी जीवन, विद्यार्थियों के परस्पर वार्तालाप तथा हास्टल के जीवन की गतिविधि मे विद्यार्थी का जीवन मुखरित हो उठता है। भौतिक वादी युग में मनुष्य की भौतिक पिपासा इस कदर से भर उठी है कि मानवीय सम्बन्धों में कटुता एवं दरार पैदा कर दी है। इस चित्र को उपन्यासकार उपन्यास में सामने रखता है। आज के स्त्री पुरूष का सम्बन्ध भावना पर आधारित न होकर बल्कि आर्थिक सुविधाओं एवं भौतिक वासनाओं पर आधारित हो गये हैं। स्त्री पुरूष के सम्बन्धों के साथ ही अच्छाई बुराई की परम्परागत मान्यताओं को लेखक ने नकार दिया है और आज के समाज में प्रतिष्ठित नारियों की तुलना में वेश्याओं को श्रेष्ठतर माना है।

उपन्यास के प्रथम खण्ड में रचनाकार ने सामाजिक वर्ग-भेद की विडम्बना का चित्रण किया है। जिसकी पृष्ठभूमि इलाहाबाद विश्वविद्यालय है। नायक ग्रामीण परिवेश 'झांसी' से इलाहाबाद पढने के लिये आया हुआ है और शहरी जीवन को देख कर आश्चर्यचकित होता है। यहां पर उसकी मुलाकात अजित से होती है जो उसका सहपाठी है दोनों में अन्तर विरोधाभाष, आर्थिक, सामाजिक, एवं मूल्यों के प्रति दिखता है। रमेश गरीब लेकिन पढाई में कुशाग है वहीं, अजित धनी परन्तु पढ़ाई में पीछे है। उच्च वर्ग से अजीत जो देश-विदेश, बड़े शहरो एवं ऊँचे से ऊँचे समाज का उपभोग कर चुका है। जिसे आदमी के पहचान की अनुभव है। अजित कुमार ने रमेश के हृदय में वह स्वच्छता पायी, जो सभ्यता के वातावरण में लाख ढूँढने पर भी न मिली। वह रमेश पर मुग्ध हो गया।[1]

---

1 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज 33.

अजित कुमार के सम्पर्क में आकर रमेश में भी उच्च वर्ग की महत्वाकांक्षाएं बलवती हो उठती हैं। अतः अपनी वास्तविक स्थिति को भूल कर वह भी उच्च वर्गीय जीवन में घुल मिल जाता है। वह अपने आचरण में उच्च वर्ग के रंग-ढंग अपना लेता है किन्तु अपने जन्मजात संस्कारों से मुक्ति नहीं प्राप्त कर पाता। रमेश अजित के कारण ही प्रभा से मिलता है और प्रेम करने लगता है। और उसकी दृष्टि में प्रेम का अन्त है विवाह · परन्तु प्रभा एक उच्च वर्ग की युवती है वह प्रेम को विवाह का आधार नहीं मानती उसका विचार है कि-"कोई भी स्त्री जब किसी पुरूष से विवाह करती है, तो इस आशा से करती है कि वह पुरूष उसको जीवन में सुखी बनायेगा। हमारा जीवन केवल भोग-विलाश ही तो है। भोग विलास जीवन के कई अंगो में एक अंग है। भोग-विलास तो बाद की बात है। सबसे पहले प्रश्न आता है रोटी का, हमारी नित्य की आवश्यकताओं का। यदि हमारी नित्य की आवश्यकताएं नहीं पूरी होती, यदि हम भूखों मरते हैं, तो प्रेम अकेले तो हमे जीवित नहीं रख सकता है। विवाह को मैं स्त्री और पुरूष के बीच में आर्थिक सम्बन्ध के रूप में मानती हूँ।"[1] रमेश को लगने लगा कि प्रभा की इन सारी भौतिक आवश्यकताओं को तो मैं पूरी नहीं कर सकता। प्रभा द्वारा विवाह के प्रस्ताव को ठुकराने पर रमेश को आघात लगता है जिससे रमेश मानसिक सन्तुलन खो बैठता है तथा इसी असन्तुलित आवेग में रमेश अजित पर पिस्तौल चला देता है, जब रमेश से प्रभा के प्रेम का आवरण हटता है तो वास्तविकता का आभास होता है कि अमीरों का अभिशप्त समाज होता है जहाँ पशुओं से भी लोग गये-गुजरे होते हैं, धन के पिशाच ने वहा सब को गुलामी में जकड़ लिया। वर्मा जी ने उपन्यास के प्रथम खण्ड के कथानक के माध्यम से सामाजिक वर्ग भेद की विडम्बना को प्रेम के माध्यम से चित्रण किया है, जो कि 'प्रेम' उपन्यास का मुख्य विषय है।[2] लेखक यह मानता है कि समाज मे जीवन के हर क्षेत्र में कहीं भी समानता नहीं हर क्षेत्र में विषमता ही विषमता है।

---

1 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज 108
2 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, पेज 17

समाज में कहीं भी समानता नहीं है। रमेश अपनी गरीबी को उच्चवर्ग की अमीरी से श्रेष्ठ समझता है वह कहता है- 'मैं जिस समाज में था वह अच्छा था, तुमने मुझे उससे क्यों निकाला-तुमने मुझे एक सुन्दर स्वर्ग के समान समाज से निकाल कर एक नरक के तुल्य समाज में क्यों डाल दिया, जहाँ लोग पशुओं से भी गये बीते हैं। धन का पिशाच जहाँ सब को गुलाम बनाये हुए है। तुम्हारा यह अभिशापित समाज-तुम्हारी यह अभिशापित संस्कृति मुझे न चाहिए थी, मनुष्यता से निकाल कर तुमने मुझे पशुता में क्यों डाल दिया।[1] इसी आवेश में अजित की ही पिस्तौल से उस पर गोली चला देता है किन्तु रमेश शर्मिन्दगी के कारण दूसरे ही दिन इलाहाबाद छोड़कर एक अनिश्चित राह अपना लेता है।

इस प्रकार रमेश समाज की विषमता का शिकार बनकर अध्ययन कार्य छोड़कर कानपुर पहुंचता है। कानपुर जाते हुए गाड़ी में उसे विनोद नामक व्यक्ति मिलता है जो एक नये समाज से रमेश का परिचय करवाता है। विनोद रमेश को वेश्याओं के यहाँ ले जाता है। वहाँ पर वह सरोज नामक वेश्या से परिचित होता है। जहाँ पर सरोज वर्ग विशेषता के विपरीत एक भावुक स्त्री है, एक सद्गृहणी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है, जो कि वह रमेश में देख कर अपने स्वप्न को सत्य बनाने के उद्यम में लग जाती है। परन्तु रमेश की नजर में प्रभा की तरह हर स्त्री होती होगी जो स्वार्थी, बेवफा, धनलोलुप होगी, अतः रमेश सरोज की प्रेम भावना की उपेक्षा करता है। सरोज रमेश के प्रेम में घुल-घुल कर रोग ग्रस्त हो उठती है और अपने प्राण त्याग देती है तथा रमेश के नाम अपनी चार लाख की सम्पत्ति छोड़ देती हैं। सरोज के त्याग से रमेश की अन्तरात्मा परिवर्तित होती है और वह चार लाख की सम्पत्ति का स्वामी बन कर इलाहाबाद लौटता है तो उसकी भेट प्रभा से होती है। प्रभा रमेश के धन की लालच में आकर विवाह का प्रस्ताव करती हैं तब रमेश प्रभा पर व्यंग्य कसता है-"तुम

---

1 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज 112

पुरूष का धन लेती हो, पुरूष को अपना शरीर देने के बदले में–है न ऐसी बात, और यह वेश्या वृत्ति है।''[1]

अत 'तीन वर्ष' के कथानक में वर्मा जी के मुख्य रूप से तीन मूल उद्देश्य प्रतीत होते हैं–पैसे की सर्वव्यापी शक्ति, प्रेम का वास्तविक रूप, और वेश्या सुधार की समस्या। वेश्या सुधार की समस्या वर्मा जी के उपन्यास में कोई नई बात नहीं है। इसके पहले भी ''प्रेमचन्द के उपन्यासों में वेश्याओं के उद्धार की आकांक्षा दिखती है और उनके मन की पवित्रता एवं उदारता की सम्भावना की ओर भी दृष्टिपात किया गया है। इसी प्रकार बंग्ला उपन्यासकार शरतचन्द के उपन्यासो में भी वेश्याओं के चरित्र को ऊँचा उठाया गया है। परन्तु 'तीन वर्ष' का वैशिष्टय यह है कि इससे वेश्या–मनोवृत्ति को असली रूप में सामने लाने के लिए कथानक को इस प्रकार गढ़ा गया है कि वेश्यावृत्ति प्रभा में दिखती है न कि सरोज में।''[2]

'तीन वर्ष' के प्रथम खण्ड में यथार्थ का सच्चा चित्रण हुआ है। जिसमें नवीनता और कुतूहल का समावेश है किन्तु दूसरे खण्ड में किसी प्रकार की मौलिकता नहीं दिखाई देती।

डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय ने उपन्यास के दूसरे खण्ड को शरतचन्द के 'देवदास' के उत्तरार्ध वाले भाग पर आधारित माना है। 'देवदास' उपन्यास का 'तीन वर्ष' पर प्रभाव वर्मा जी ने स्वयं स्वीकार किया है किन्तु उस पर इसे आधारित नहीं माना जा सकता है। दोनों की मूल संवेदना में अन्तर है। 'रमेश दूसरा देवदास है जो देवदास की भाँति अकर्मण्य एवं निष्क्रिय नहीं है।[3] वर्मा जी ने इसमें आधुनिक समाज का बडा यथार्थ चित्रण किया है इसमें वह संसार चित्रित है जिसमें आज का मनुष्य जीवित है। उन्होंने सामाजिक जीवन मे आर्थिक विषमता

---

1 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज 208
2 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा डा0 इन्दू शुक्ला, चिन्ता प्रकाशन, दिल्ली 1992, पेज 20
3 चित्रलेखा से सवहिन चावत राम गोसाई तक, डॉ0 कुसुम वार्ष्णेय, साहित्य भवन, इलाहाबाद 1971, परिशिष्ट 2 वर्मा जी के कुछ पत्र । पेज 221–22

एव पैसों का महत्व 'तीन वर्ष' में अभिव्यंजित किया है।

'तीन वर्ष' के शुरू और अन्तिम वाले भाग अत्यन्त आकर्षक है। सम्पूर्ण कथानक का विकास अपनी स्वभाविक धारा में हुआ है। पात्रों के हाव-भाव, क्रिया-प्रतिक्रिया ने कथा के विकास को आगे बढाया है। वस्तु विन्यास मे यथेष्ट कसाव है। अनावश्यक इतिवृत्त और पात्रों का निर्माण लेखक ने नहीं किया है। सयोग तथा घटनाओ का वर्णन है उनमे नाटकीयता एवं बनावट नहीं है। इस उपन्यास की रोचकता यह है कि इसमें पाठक को कहीं भी बौद्धिक प्रयास नहीं करना पड़ता है। इसमें पर्याप्त उत्सुकता कुतुहल और मनोरंजन की सामग्री है। इसमे सामान्य पाठक का भावनात्मक संवेदना वाला अंश भी प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ता है।

टेढे-मेढे रास्ते :

भगवती चरण वर्मा जी का 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' 1946 ई0 में तीन वर्ष के दस वर्ष पश्चात प्रकाशित हुआ। जोकि एक तरह से विशुद्ध राजनैतिक उपन्यास है, इसमें 1930 ई0 के आस-पास का देश की तीन राजनैतिक पार्टियों की क्षमताओं एवं दुर्बलताओं का रेखांकन तीन प्रमुख पात्रों के माध्यम से किया गया है। ये तीनों तीन पार्टियों-दयानाथ कांग्रेस पार्टी, उमानाथ कम्युनिष्ट पार्टी एवं प्रभानाथ क्रान्तिकारी दल के प्रतिनिधि सदस्य हैं। और इनके तथा इनके साथियों के विचारों से वर्मा जी इन पार्टियों की गतिविधियों की नस पकड़ते है। इन तीनों के पिता पण्डित रामनाथ तिवारी आधुनिक शिक्षा, सभ्यता से परिचित प्राचीन संस्कृति एवं परम्पराओं के उपासक तथा अपने आनबान पर मर मिटने वाले ताल्लुके दारों के प्रतीक हैं। इस उपन्यास के विस्तृत कथा पटल पर पण्डित रामनाथ तिवारी और उनके तीन पुत्रों की राजनीतिक गतिविधियों की गाथा है। इन पात्रों के माध्यम से लेखक ने प्राक् स्वाधीनता युग के सभी दलों को प्रतिनिधित्व देकर भारतीय राजनीति के बढते चरणों का आभास भी कराया है।

रामनाथ तिवारी एक शक्ति सम्पन्न, सबल व्यक्तित्व धना एव अहम ताल्लुकेदार एवं आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। ब्रिटिश अधिकारी उनकी राजभक्ति से प्रभावित होकर उन्हे सम्मान की दृष्टि से देखते है। इन्हीं सब कारणों से उनकी अहम्मन्यता चरम सीमा पर पहुंच जाती हैं तथा 'योग्यतम् ही जीवित रहता है' के सिद्धान्त पर सामन्तवाद के टूटते एवं पूँजीवाद के पनपते मूर्तरूप पण्डित राम नाथ तिवारी में दिखता है। उनकी यही अहम्मन्यता उनके पुत्रों को भी विरासत में मिली है। इसी कारण उनके तीनों पुत्र पृथक-पृथक रास्तों का चयन करते हैं। बड़ा लड़का दयानाथ वकील, कांग्रेसी हो गया जो पिता का कोप भाजन बनता है। क्योकि कांग्रेस जमीदारों की समर्थक ब्रिटिश सरकार की विरोधी है। इससे दयानाथ को घर तथा सम्पत्ति से वंचित कर देते हैं। दयानाथ कानपुर कांग्रेस का डिक्टेटर बन कर जेल जाता है तब रामनाथ प्रयास करते है कि उसकी पत्नी तथा बच्चे उनके पास वानापुर में आकर रहे; पर दयानाथ की पत्नी इस पर तैयार नहीं होती क्यों कि जब रामनाथ ने दयानाथ से नाता तोड़ दिया तो फिर पत्नी उस घर में कैसे रह सकती है। परन्तु दयानाथ अपने राजनीतिक पथ पर पूर्ण निष्ठा से आगे बढता है धीरे-धीरे अपनी पार्टी की दुर्बलताएं उसे झकझोरने लगती हैं। उसकी अहम्मन्यता ही उसके पैरो की बेड़ी बन जाती है। वह अपने साथियों से समान स्तर पर नहीं मिल पाता, जिससे चुनाव में पराजय का मुँह देखना पडता है। इस पराजय से निराश होकर अपने पिता के चौखट को खटखटाता है, परन्तु स्वाभिमानी पिता को अपने पुत्र की आन्तरिक पराजय अपने कुल का कलंक प्रतीत होता है। पिता रामनाथ उसे डॉट कर अपने कर्म पथ पर जाने को प्रेरित करते हैं और अपने कुल की मर्यादा के हित में पुत्र से हाथ धो बैठते हैं।

दूसरा लड़का उमानाथ जर्मनी से पढ़कर लौटता है। वह अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन के सदस्य तथा भारत में कम्युनिष्ट पार्टी के उच्च अधिकारी के रूप में देश में नई आर्थिक क्रान्ति लाने के लिए प्रयत्नशील होता है। ब्रिटिश सरकार उसके कृत्यों से उसके नाम वारंट जारी करती है। वह सरकार की आँखों में धूल झोंक कर विदेश भाग जाना चाहता है।

आर्थिक सहायता के लिए पिता के पास जाता है परन्तु रामनाथ उसे (कम्युनिस्टों को) अपना, पूँजीपतियों का तथा ब्रिटिश शासन का भयानक शत्रु बताकर उसे सहायता देने से इनकार करते हैं। वे कहते है- "मिटाना मिटाना यही तुम लोग सीख सके हो-तुम्हारी सारी शिक्षा और सारी संस्कृति तुम्हें केवल इतना सिखा सकी है कि मिटाओ। लेकिन मिटा वही सकता है, जो सबल है।"[1] कम्युनिज्म की कटु आलोचना वर्मा जी ने उमानाथ के माध्यम से की है, जिसमें भारतीय समाज की उस मनोवृत्ति का प्रकाशन होता है जिसमें कम्युनिष्टों के सर्वाधिक उपयोगी सिद्धान्तों की उपेक्षा करके उनके आचार-विचार, भौतिकवादी दृष्टिकोण एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के आग्रह के कारण भारतीय संस्कृति को भूल जाने का विरोध किया जाता है।"[2] भारतीय संस्कारों एवं शिष्टाचारों के प्रति उमानाथ की कोई आस्था नहीं है। वह भारतीय संस्कृति में अपने को फिट नहीं बैठा पाता। वह एक पत्नी के रहते दूसरी जर्मन पत्नी से विवाह कर लेता है। यह एक कम्युनिस्ट तथा कम्युनिस्ट पार्टी पर वर्मा जी का बड़ा ही रोचक व्यग्य दिखता है। जो कि मार्कण्डेय कम्युनिस्ट पार्टी की असलियत बताते हुए कहता है-"कम्युनिस्टों में अधिकतर मध्यम वर्ग के लोग ही हुए हैं, ऐसे लोग जिनका दुनिया के घमण्डी पूँजीपतियों से मुकाबला हुआ और उनके मन में पूँजीपति वर्ग के स्वार्थ, अभियान और उच्छंखलता के प्रति विद्रोह पैदा हुआ। जिन लोगों में पूँजीपति के भाग्य पर ईष्या हुई, जिन्होंने यह लगातार सोचा, कि उन्हें वे सब सुविधाएं क्यो नहीं मिलती, जो पूँजीपतियों को प्राप्त हैं। ईर्ष्या और ईर्ष्याजनित विद्रोह पर ही कम्युनिज्म की नींव पड़ी है।"[3] मार्कण्डेय आगे भी कहता है-क्या तुम यह बतला सकते हो कि दुनिया में किस कम्युनिस्ट ने दूसरों की गरीबी से द्रवित होकर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है? तुम बता सकते हो कि किस कम्युनिस्ट ने ऐय्याशी, भोग विलास छोड़े हैं? तुम बता सकते हो कि किस कम्युनिष्ट ने त्याग किया है?"[4]

---

1 टेढे मेढ़े रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 495

2 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, डॉ0 इन्दू शुक्ला, चिन्ता प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पेज-22।

3 टेढे मेढ़ रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 436,

4. टेढ़े मेढ़े रास्ते, पेज 436

मार्कण्डेय के इन बातों पर उमानाथ तर्क के द्वारा अपनी बातों को कहता है कि दान, त्याग, दया मूर्खो के लिए बने हुए सिद्धांत है; इन पर बुद्धिवादी कम्युनिस्ट विश्वास नहीं करता है, यहीं पर वर्मा जी द्वारा यह भी दिखाया गया है कि एक पतिव्रता पत्नी अपने पति को सहायता करती है और उमानाथ पत्नी से यह कह कर कि प्रतीक्षा करना, हिन्दुस्तान छोड़ देता है। कम्युनिस्ट की विशेषता पर वर्मा जी कहते है कि कम्युनिस्ट अपने देश की ओर न देखकर रूस की ओर देखता है। ऐसा नहीं है कि इस पर उमानाथ प्रतिवाद नहीं करता किन्तु प्रतिवाद इतने हल्के है किं इन आरोपों को गलत नहीं ठहरा सकते।

रामनाथ की कनिष्ठपुत्र प्रभानाथ के प्रति विशेष सहानुभूति है। उमानाथ के जर्मनी से वापस आने पर प्रभानाथ कलकत्ते लेने जाता है वहीं पर उसकी मुलाकात क्रान्तिकारी दल की सदस्या वीणा से होती है, और वीणा के सम्पर्क से प्रभानाथ क्रान्तिकारी दल का सदस्य बन जाता है। और अपने पिता के स्कूल में ही वह अपनी प्रेमिका वीणा को हेड मिस्ट्रेस बनाकर कलकत्ते से उन्नाव बुलवा लेता है। दोनों रामनाथ से छिप कर अपने क्रान्तिकारी दल को सम्भालते हैं। वर्मा जी ने यहाँ पर प्रभानाथ के माध्यम से क्रान्तिकारी दल के आन्दोलनों को चित्रित करने का प्रयास किया है। सन् 1930 में क्रान्तिकारी आन्दोलन में अर्थाभाव के कारण शिथिलता आने लगी थी। इन क्रान्तिकारियो ने दल के कार्यो को अन्जाम देने के लिए सरकारी खजाने पर डाका डाला जिसमें वीणा और प्रभानाथ भी सम्मिलित हैं, किन्तु इसमें मनमोहन और प्रभा नाथ पुलिस की गोलियों के शिकार होते हैं। मनमोहन मृत्यु के दो क्षण पूर्व प्रभानाथ से क्रान्ति के रास्ते से अलग होने की प्रतिज्ञा करवाता है। पुलिस इन्सपेक्टर प्रभानाथ का पीछा करता है और अन्त में अपने चाचा श्यामनाथ (जो एस0पी0) है के द्वारा बचाये जाने का प्रयास किये जाने पर भी वह पकड़ा जाता है। श्यामनाथ किसी तरह उसे मुखविर बनने के लिए राजी कर लेते हैं पर रामनाथ के स्वाभिमान एवं

अहंमन्यता को यह स्वीकार्य नहीं कि उनका लड़का मुखबिर बने, जेल मे भट करते समय अनजाने में वह प्रभानाथ को सिद्धान्तों पर अड़े रहने की प्रेरणा दे देते हैं। प्रभानाथ पिता के चरणों पर गिर पड़ता है और कहता है–ददुआ–कल से बुरी तरह भटक रहा हूँ। आप ने मुझे उचित रास्ता दिखला दिया। एक बहुत बडे पाप से आप ने मुझे बचा लिया है। अब मैं शान्ति पूर्वक हंसते हंसते मर सकता हूँ।

जेल में प्रभानाथ को तरह–तरह की यन्त्रणायें दी जाती हैं। प्रभानाथ की महिला मित्र वीणा उसे टार्चर से बचाने के लिए पत्नी का स्वांग भर कर जेल मे उसे पोटैशियम साइनाइड का जहर देकर अपने सुहाग के टीके को स्वयं धो डालती है। और स्वयं भी पुलिस अधिकारी की हत्या कर आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार से लेखक यह दिखाता है कि प्रभानाथ और वीणा अपने वैयक्तिक जीवन की बलि देकर देश के लिए कुर्बान हो जाते हैं तथा दयानाथ, उमानाथ एवं प्रभानाथ के द्वारा देश की राजनैतिक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। तीनों में अपने–अपने दल के प्रति निष्ठा तथा कार्य करने की शक्ति है। किन्तु राजनैतिक पार्टियों की कुछ दुर्बलताएं एवं कुछ उनके वैयक्तिक जीवन की दुर्बलताएं उनके रास्तों को टेढा मेढ़ा सिद्ध करती हैं।

जीवन के उतार चढ़ाव को अपनी औपन्यासिक कृतियों में चित्रित करने वाले वर्मा जी का जीवन भी अनेक घात–प्रतिघात से होकर गुजरा है। उनके शुरूआती रचना काल में पराधीन भारत को स्वतंत्र कराने के लिए हिंसा और अहिंसा दोनों उपायों का सहारा लिया गया है। इन्हीं माध्यमों से 'टेढ़े मेढे रास्ते' में हिंसा और अहिंसा दोनों उपायों को प्रयोग में लाने वाले दलों का चित्रण किया गया है। वर्मा जी ने स्वयं आगे लिखा है कि 'वह युग प्रगतिशील साहित्य के उफान का था समाजवादी विचारधारा वाले एक दल विशेष को 'टेढे मेढ़े रास्ते' में गांधीवादी विचारधारा का प्रतिपादन दिखता है। यद्यपि सही अर्थो में उसमें किसी

भी विचारधारा का प्रतिपादन नहीं था, वह तो उस काल में प्रचलित सभी विचारधाराओं के परिवेश में मानवीय संवेदना एवं मानवतावाद का आरोपण भर था।''[1]

सामन्तवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि रामनाथ स्वयं भी टूट जाते हैं किन्तु उनका अहंकार उनकी दुर्बलता को दबा देता है। कथा के अन्त मे उमानाथ के पुत्र को छाती से चिपकाये हुए वे अनुभव करते हैं कि इस समय दूसरों को उनके सहारे की आवश्यकता नहीं, अब उन्हें उस बच्चे के सहारे की जरूरत है। बच्चे को छाती से चिपकाकर अन्त में कहते हैं- 'बेटा, इस बूढ़े का साथ मत छोड़ना।''[2]

पुत्रों के विद्रोह से रामनाथ अपने को अपमानित महसूस करते हैं। उनमें भयानक अन्तर्द्वन्द्व चलता है। वे सोचते हैं-'फिर यह सब क्यों? मेरे निर्णय का विरोध मेरे घर मे ही हो रहा है। मेरे लड़के ही मेरे निर्णय का विरोध करने पर तुल गये हैं। आखिर यह सब क्यों? . यह क्यों? यह सब कुछ बदल कैसे गया? एक दम बदल गया, मैं पहचान नहीं पा रहा हूँ। दया कांग्रेस में शामिल हो गया, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारने को वह तैयार है। और बड़ी बहू! मेरे सामने उसे बोलने की हिम्मत कैसे हो गयी? बोलने की ही नहीं, जवान लड़ाने की। और प्रभा! वह भी मुझसे कहता है कि मैं गलती कर रहा हूँ! क्या वास्तव में मैं गलती कर रहा हूँ।''[3] इसके आगे सोचते-सोचते वह इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि ''युग की नवीनता, देख रहा हूँ, सीमाओं को एक बार तोड़ डालने पर तुल गयी हैं।''[4]

नये युग की छाया परिवार मे ही नहीं बल्कि रामनाथ तिवारी के विरूद्ध परमेश्वर एवं झगड़ू आदि ग्रामीणों का विद्रोह तथा दयानाथ के प्रति ब्रहमदत्त का संघर्ष आदि में प्रतिबिम्बित होती है। इन्हीं सन्दर्भो के माध्यम से वर्मा जी ने चित्रित किया है कि शक्ति का केन्द्र बदल गया है। शोषित वर्ग शोषक वर्ग के

1 कादम्बिनी, नवम्बर 1973, पेज 71
2 टेढे मेढ़े रास्ते, पेज 546
3 टेढ़े मेढ़े रास्ते, पेज 142
4 टेढे मेढ़े रास्ते, पेज 143

प्रभुत्व को अधिक दिनों तक टिकने नहीं देगा, हर व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा है, शक्ति जनता के हाथ आ रही है।

एक तरफ रामनाथ हैं जिन्हें अपनी समस्त अहम्मन्यता और शक्ति के बावजूद युग-परिवर्तन की शक्ति के समक्ष झुकना पड़ता है, तो दूसरी ओर झगडू मिसिर हैं, जो सामान्य अनपढ़ ग्रामीण हैं, जो युग और परिवेश के साथ कदम से कदम मिला कर चलते हैं। वह अपने बेटे को विलायत भेजकर पढ़ाने की इच्छा पाले रहते हैं, परन्तु उसके कांग्रेसी हो जाने पर कोई शिकवा नहीं रखते। जेल जाने पर कोई दुख नहीं। गाँव के किसानों के हित के लिए, वह अपने प्रति तिवारी जी के सम्मान की उपेक्षा करके तिवारी जी की गलतियों को भुलाकर उनकी रक्षा के एिल अपने प्राण भी दे देते हैं।

नारी पात्रों के माध्यम से वर्मा जी तत्कालीन नारी समाज के दो भिन्न रूपों को चित्रित किया है। एक तरफ राजेश्वरी और लक्ष्मी उच्च कुल की बहुएं हैं, जो पति के अस्तित्व में ही अपने अस्तित्व को विलीन कर देने में विश्वास करती हैं। दूसरी तरफ वीणा और प्रतिभा स्त्री की नवीन सामाजिक और राजनीतिक चेतना की प्रतीक बनकर आई हैं। ये यह दिखा देना चाहती हैं कि स्त्री मात्र कोमलता एवं सुन्दरता की पुँज नहीं, वह हर क्षेत्र मे पुरूष के बराबर संघर्ष करती है। इसमें स्त्री अपने भोग्या रूप को पीछे छोड़ देती है। ''हिल्डा एक प्रगति शील पाश्चात्य नारी है उसके विचारों और क्रिया कलापों की तुलना में वर्मा जी ने भारतीय नारी की श्रेष्ठता को स्थापित किया है।''[1] इस उपन्यास में वर्मा जी ने तत्कालीन भारत के विविध दृश्यों को उभारा है।'' रामनाथ की प्रतिक्रिया वादी विचारधारा और कम्युनिज्म की आलोचना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप डा0 रांगेयराघव ने ''सीधा सादा रास्ता' नामक उपन्यास लिख डाला और उसकी भूमिका में मार्क्सवादी लेखक डा0 रामविलास शर्मा ने वर्मा जी की तीव्र आलोचना की है।''[2]

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा डॉ0 इन्दू शुक्ला, पेज 25
2. साहित्यकार भगवती चरण वर्मा डॉ0 इन्दू शुक्ला, पेज 26

आखिरी दाँव :

'आखिरी दाँव' सन् 1950 में प्रकाशित हुआ। वर्मा जी जब सिनारियो लेखक के रूप में बम्बई में थे, तब उन्होंने फिल्मी जीवन पर फिल्म के ही लिए एक कहानी लिखी थी किन्तु बाद में फिल्म संसार से अरूचि हो जाने के कारण उन्होने वह कहानी किसी को सुनाई नहीं और लखनऊ आने पर उसको उपन्यास रूप में परिवर्तित कर दिया।[1] 'आखिरी दाँव' को कहानी के रूप में साकार करने का अवसर वर्मा जी को बम्बई प्रवास 1942-1948 के बीच हुआ, जिसमें वहाँ के अर्थ पिशाचों से साक्षात्कार करने का अवसर प्राप्त हुआ होगा, जिससे फिल्मी दुनियाँ के अर्थ लिप्सा ने वर्मा जी की चेतना की तरंगों को तरंगापित कर दिया होगा जो कि स्वाभाविक है। जो दो अर्थ लोलुपों का चित्रण दिखता है। "जिन्हों ने भोले-भाले दो ग्रामीणों की जीवन-धारा को ही बदल दिया। फिल्मी कथा के अनुरूप इस उपन्यास में नाटकीय स्थितियों की भरमार है और उसके लिए वर्मा जी का 'नियतिवादी' और परिस्थितियों के चक्र' वाला दर्शन विशेष सहायक हुआ। रामेश्वर और चमेली को नियति ऐसी परिस्थितियों में डाल देती है, जहाँ से वे सही सलामत निकल नहीं पाते। इन परिस्थितियों के निर्माण में निमित्त बनता है 'अर्थ' इस प्रकार नियति, परिस्थिति और अर्थ की नींव पर उपन्यासकार ने उपन्यास का ढाचा खड़ा किया है।"[2]

उपन्यास की शुरूआत उत्तर प्रदेश के विशनपुर गाँव के रामेश्वर नामक व्यक्ति के जीवन से शुरू होती है जिसे सारा गाँव काका कहता है। जो उपन्यास का नायक है। जो एक ऋणग्रस्त जमींदार का बेटा है। जो जमींदारी की सम्पत्ति ऋण के रूप में प्राप्त की है। बड़े स्वाभिमान के साथ बची-खुची सम्पत्ति बेच कर वह ऋण चुकाता है और इसके लिए अपनी पत्नी के जेवर तक बेंचने पड़ते

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा डॉ0 इन्दू शुक्ला, चिन्ता प्रकाशन, दिल्ली 1992, पेज 29 के आधार पर वर्मा जी के एक पल (दिनाक हीन) के आधार पर।

2 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, डॉ0 इन्दू शुक्ला, चिन्ता प्रकाशन, दिल्ली 1992, पेज 30 के आधार पर वर्मा जी के एक पत्र (दिनाक हीन) के आधार पर।

हैं। जीवन चलाने के लिए मात्र पन्द्रह बीघे जमीन बचती है। आथिक सकट म उसकी पत्नी क्षय रोग से मृत्यु को प्राप्त होती हैं, मृत्यु का आघात उसके जीवन को बदल देता है। फिर दूसरे विवाह की सलाह पर वह आर्थिक विपन्नता को देखते हुए विवाह करने से इनकार कर देता है। वह अपनी थोड़ी सी आय को गाँव की सहायता एवं बच्चों को मिठाई खिलाने में खर्च करता है तथा पूरे गाँव को अपना परिवार समझने लगता है। पत्नी, पारिवारिक प्रतिष्ठा एवं सम्पत्ति से हाथ धो लेने पर उसके अन्दर अवसाद एव तटस्थता आ जाती है। उसमे कुछ अच्छाइयाँ दया, ममता, उदारता एवं नेकी थी, तथा इसी के साथ-साथ उसे जुऐ की लत थी जो गुजारे के लिए पन्द्रह बीधा जमीन भी वह भी हार जाता है। हार कर वह बम्बई की राह पकड़ता है।

दूसरे अंश में नायिका चमेली, निम्न मध्यवर्गीय स्थिति में रहने वाली एक ग्रामीण महिला है जो परिवार में बाँझपन के कारण ठुकरा दी जाती है सास-ससुर पति के अत्याचारों से उसका जीवन दुखदायी हो जाता है। उसके पास रूप यौवन की प्रबल शक्ति है। चमेली के दुखदायी जीवन का लाभ उठाकर उसका पड़ोसी रत्नू जेवेरों और पैसों का प्रलोभन देकर बम्बई भगा ले जाता है। बम्बई में चार महीने तक चमेली के धन एवं आकर्षण का उपभोग करता है। तथा धीरे-धीरे पैसे की कमी से रत्नू के मन में चमेली के प्रति आकर्षण कम होता जाता है। और अन्त में सेठ हीरा लाल के हाथों सौंप कर शरीर व्यापार के लिए विवश करता है और भोली-भाली चमेली विद्रोह कर पुलिस में रिपोर्ट करने जाती है फिर पुलिस स्टेशन में फंस जाती है। सौभाग्य से उसी समय रामेश्वर से उसकी मुलाकात होती है जो स्थिति से उबार कर अपने घर ले जाता है। इस प्रकार गाँव से उजड़े दोनों रामेश्वर एवं चमेली एक दूसरे का सहारा बनते है। और एक दूसरे के प्रति अन्त तक समर्पित हो जाते हैं। यही पर चमेली की मुलाकात फिल्म कम्पनी में काम करने वाले राधा और सेठ शिव कुमार से होती है। राधा का सुख पूर्ण जीवन देख कर चमेली के अन्दर पैसों की तृष्णा जाग

उठती है। चमेली की जिद पर रामेश्वर उसे पैसों की दुकान खेलवा दता ह स्वय पैसों की तृष्णा में सट्टा खेलता है जिसमें सेठ के चार हजार रूपये तक हार जाता है। शिवकुमार को चमेली की मंशा का पता है, इस पर वह चमेली से हिरोइन बनने का आफर करता है। चमेली नकारती है परन्तु रामेश्वर के जेल जाने पर वह फिल्म नायिका बनने को तैयार होती है। जो कि शिवकुमार के आगे समपैण कर देती है। रामेश्वर के ग्रामीण आत्मा को लगने लगा है कि ससार में पैसा ही सब कुछ है, जिसे प्राप्त करने के लिए चाहे शरीर एवं आत्मा तक बेचने पड़े। पैसे की हवस में वह रघुदादा का तबेला खरीदता है उसी की आड में शराब का अवैध धन्धा करने लगता है। तथा जुआ खिलवाने लगता है। चमेली पहली ही फिल्म में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली । जिससे धीरे-धीरे फिल्म स्टूडियों की मैनेजिंग डायरेक्टर एवं शेयर होल्डर बन जाती है। किन्तु आत्मा की स्वच्छ चमेली को वहाँ के भ्रष्ट जीवन एवं सेठों के विलासी प्रवृत्ति से उसकी आत्मा तड़पने लगती है। और शान्ति पूर्वक जीवन जीने के लिए रामेश्वर के साथ बम्बई छोड़ने को तैयार कर लेती है। जिस दिन वह बम्बई छोड़ना चाहती है उसी दिन उसके जीवन की सारी परिस्थितयाँ बदल जाती है। सेठ शीतला प्रसाद चमेली के अपहरण के लिए जाल फैलाता है किन्तु चमेली गोली मार कर सेठ की हत्या कर देती है। जब वह रामेश्वर के पास पहुंचती है तब रामेश्वर अपनी कमाई हुई सम्पत्ति से बम्बई में आखिरी दाँव, खेलने बैठ जाता है, चमेली बार-बार उससे कहती है कि पुलिस उसका पीछा कर रही है, किंतु रामेश्वर आखिरी दॉव चलता है उसी समय पुलिस आ जाती है। चमेली रामेश्वर की रक्षा करने मे असमर्थ हो जाती है। और गिरफ्तार होने के भय से गोली मार कर आत्म हत्या कर लेती है। रामेश्वर को तब होश आता है और पुलिस के आगे आत्म समर्पण करता हुआ कहता है 'ले चलिए सारजेण्ट साहब आज मैं जिन्दगी का आखिरी दाँव हार चुका हूँ, ले चलिए।''[1]

---

1 आखिरी दॉव, पेज–262

वर्मा जी ने इस उपन्यास के माध्यम से 'नियति' की सर्वोच्चता को स्वीकार किया है। जिसमें व्यक्ति के जीवन में आने वाले उतार चढ़ाव को बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया है। जिसमें राधा फिल्म व्यवसाय के लिए युवतियों को फसाने वाली दलालों का प्रतिनिधित्व करती है। किशोर अपने गीत से तो प्रभावित नहीं कर पाता तो अश्लील कविता के सहारे दूसरो की जडखोद कर अपना काम निकालता है। शिवकुमार के अनमेल विवाह, विवाह की समस्या की ओर इंगित करती है। बम्बई में गुण्डों एवं दुग्ध व्यवसाय की आड़ में गलत कारनामों का उद्धरण आदि फिल्मी जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं।

इस उपन्यास के माध्यम से वर्मा जी ने दिखाया है कि पूजी वादी युग में पैसा आदमी को कितना विकृत कर दिया है कि मानव आर्थिक परिस्थितियों का दास बन जाता है। आज का प्रत्येक प्राणी पैसों का दिवाना है जो पैसे के लिए शरीर, आत्मा तक बेंच देता है। जो कि शिवलाल के माध्यम से वर्मा जी ने चित्रित किया है। ऐसे तमाम लोग समाज में मरे पड़े है जो जाल-फरेब, झूठ बेईमानी आदि के सहारे जीते है।

अर्थ और नैतिकता का सम्बन्ध सम्पूर्ण उपन्यास में है। जिसमें विजय अर्थ की होती है नैतिकता हार जाती है। जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था से वर्मा जी की असहमति स्पष्ट दिखती है। 'आखिरी दाँव' एक साधारण आकार वाली प्रौढ़ रचना है। जिसमें वस्तु विन्यास की सुचारूता, इतिवृत्ति की रोचकता, तथा बाह्य एवं आन्तरिक द्वन्द्व की तीब्रता यह एक उद्देश्य प्रधान उपन्यास लगता है जो लेखक की पूर्व योजना का परिणाम लगता है। इसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं, सम्पूर्ण उपन्न्यास में भाग्य एवं नियति को महत्व दिया गया है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने वर्तमान समाज का यथार्थ चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

'अपने खिलौने'-

वर्मा जी का यह उपन्यास हास्य,-व्यंग्य पर आधारित 1957 ई0 में प्रकाशित हुआ था। इसे उच्चवर्गी समाज के वैचित्रय पूर्ण जीवन का व्यग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से लिखा है। यह एक स्तरीय हास्य-व्यंग्य उपन्यास के रूप में महत्वपूर्ण है। भारत सरकार के सेक्रेटरी आई0सी0एस0 आफिसर श्री जयदेव भारती के निर्देश पर दिल्ली के एक बड़े पूँजीपति का पुत्र और शौकिया कविता करने वाला अशोक गुप्ता 'कला भारती' नामक एक संस्था खोल देता है। जहाँ पर बडे-बडे पूँजीपति, ठेकेदार, सरकारी अफसर, और उनकी पत्नियाँ कला प्रेम की ओट में अपना फालतू समय काटते हैं, पूँजीपति इसके आड में धनकमाते हैं। उच्च पदस्थ सरकारी अफसरों के बेकार रिश्तेदार व्यवसाय का हल खोजते हैं।

अपने को कला और संस्कृति का ठेकेदार समझने वाले वर्ग का खोखलापन बड़ी मनोरंजक शैली मे इस कृति के माध्यम से सामने आता है। रियासत के राजकुमार, मिल ओनर, अच्छे सरकारी अधिकारी, कलाकार, साहित्यकार फिल्म प्रोड्यूसर और इनके आस पास मंडराने वाले पैरा साइट्स की दुनिया इस उपन्यास में एक बारगी जीवित हो उठी है। उच्च वर्गीय महिलाओ की ऊची शिक्षा और नजाकत के बावजूद उनका स्वभाव, उनकी अस्थिरता सभी को लेखक हास्य के माध्यम से व्यक्त करता है। जिसके पीछे तीखे व्यंग्य का हथियार छिपा हुआ है।

सामन्तवादी व्यवस्था के अवशिष्ट का चित्रण यशनगर के राजकुमार वीरेश्वर प्रताप के माध्यम से चित्रित होता है। साथ ही साथ उनकी खोखली प्रदर्शन प्रियता और झूठी शान-शौकत पर भी कथाकार ने व्यंग्य किया है।

जयदेव भारतीय केन्द्रीय सरकार में सेक्रेटरी हैं और यशनगर राज्य में दीवान रह चुके हैं। जयदेव भारती की सुन्दर एवं सुशिक्षित पुत्री मीना भारती उच्च

समाज की रौनक है। शहर का नामी पूँजीपति पंचम लाल का पुत्र अशोक गुप्ता है जिनका विवाह मीना के साथ करीब-करीब तय है। अन्नपूर्णा वंसल, अशोक कुमार की विधवा बुआ है जो कि पचास लाख की लागत वाली मिल की मालकिन है। जो अपने भाई के ही पास रहती हैं। अपने असामयिक वैधव्य के कारण वह यौन कुठाओ से ग्रस्त है उनकी यौन अतृप्ति सनकीपन की सीमा तक पहुच जाती है। उनमें ढलती जवानी के साथ-साथ धन का आकर्षण है जिसमें मीना का ममेरा भाई राम प्रकाश बंधा हुआ है। ये सभी 'कला भारती' नामक संस्था से जुड़े हुए हैं इसी बीच में यशनगर का राजकुमार वीरेश्वर प्रताप विलासी प्रवृत्ति से ग्रसित है। जो अपने सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक महिला को अपने प्रेमपाश में बाँध लेने की सामर्थ्य रखता है। यही कारण है कि मीना भारती, अन्नपूर्णा वंसल और केराकोमल सभी उसकी विलासी वृत्ति का शिकार बनती हैं। वीरेश्वर प्रताप का प्रेम जीतने के लिए अन्नपूर्णा और मीना में होड़ सी लग जाती है। दोनों के प्रेमी अशोक और राम प्रकाश काफी चिन्तित होते हैं और अपनी-अपनी प्रेमिकाओं को पाने के लिए तरह-तरह के खेल रचते हैं। जिसे वर्मा जी बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। युवराज की पार्टी में जाने से रोकने के लिए अशोक मीना का जूता छिपा देता है, इसमें सफल नहीं हो पाता है तो अन्त में सेन्ट की बोतल में कार्डलियर आयल मिला देता है जिसके फलस्वरूप दुर्गन्ध के कारण पार्टी में लोगों द्वारा प्रकट की गयी विरक्ति से नाजुक मिजाज मीना को ऐसा मानसिक झटका लगता है कि वह बीमार पड़ जाती है। वर्मा जी ने उच्च वर्ग की कला प्रियता के नाम पर पोषित की जाने वाली स्वार्थी मनोवृत्तियों का खाका खींचने का प्रयास किया है। पैसे की आड़ में अनेक प्रकार की अस्वाभाविकताओं को स्वीकार किया जाता है। जैसे मीना भारती के पिता मीना को पार्टी में जाने के लिए उसके ड्रेस आदि की व्यवस्था पिता की मर्यादा भूल कर करता और कहता है कि ''और मीना तुमने अपनी ड्रेस का आर्डर दे दिया कि नहीं! बड़ी शानदार पार्टी होगी। अच्छी से अच्छी ड्रेस होनी चाहिए

तुम्हारी, बस तुम्हीं तुम दिखो। तुम प्रमुख अतिथि हो न।''[1] यहाँ पर इस प्रकार की भौंड़ी प्रदर्शन प्रियता का चित्रण हुआ है। जहाँ पिता-पुत्री, बुआ-भतीजे किसी की कोई मर्यादा नहीं। सभी अपनी स्वार्थी वृत्तियों को पैसे की आड़ में छिपाते हैं। दिलवर किशन 'जख्मी' वास्तव में कविता-कला का उपासक है, किन्तु निर्धन है उसे दूसरों का याचक बनकर भिखारियों सा जीवन बिताना पड़ता है। जख्मी के माध्यम से वर्मा जी ने बेकार नकारा एवं चापलूस चमचों को साकार कर दिया है।

उपन्यासकार कथानक को मीना, अन्नपूर्णा, राम प्रकाश और दिलवर किशन 'जख्मी' कला भारती की शाखाएं खोलने के लिए लखनऊ पहुंचते हैं। उन्हें लखनऊ पहुंचाकर उपन्यासकार लखनऊ और बनारस के साहित्यकारों की चुट्की लेता है और लखनऊ की बटेरवाजी और पतंगवाजी से युक्त, नवाबी संसकृति का जायका भी परोस देता है। यहीं पर मीना आदि की मुलाकात रामकृष्ण सैदा से होती है वह मीना को हिरोइन की लालच देकर बम्बई चलने को राजी करता है। इस पात्र में फिल्म प्रोड्यूसर रामास्वामी चेट्टियार और शैदा का कामुक और गैर जिम्मेदार आचरण फिल्मी हस्तियों पर करारा व्यंग्य करता है। यहीं पर रामा स्वामी द्वारा अर्थ की पैशाचिक शक्ति का भी भण्डा फूटता है-'सेक्रेटरी' तो क्या कर लेगा? यहाँ सेक्रेटरी बिकते हैं। उनकी लड़कियाँ बिकती हैं, बड़े-बड़े मिनिस्टर तक बिकते हैं। दुनिया में कौन ऐसा है जो न बिक सके-कीमत चाहिए उसकी। यू रास्कल सैदा-बड़ा तगड़ा सौदा किया, एक लाख में एक सेक्रेटरी की लड़की।[2]

इधर केराकोमल नामक युवती से घबरा कर युवराज बम्बई भाग जाता है। युवराज की सहायता से मीना, अन्नपूर्णा, रामप्रकाश तथा जख्मी सभी सैदा और रामास्वामी चेट्टियार के चंगुल से मुक्त होते हैं। युवराज उन्हें अपने पास बम्बई बुलवा लेता है। बम्बई में युवराज को पाने के लिए मीना और अन्नपूर्णा

---

1. अपने खिलौने, पेज-66
2 अपने खिलौने, पेज-171

में ईर्ष्या जाग उठती है, दोनों ही उसे अपनाना चाहती हैं। इसी बीच युवराज की फ्रांसीसी मंगेतर लिली उसे ढूंढ़ते हुए वहाँ पहुंचती है। जिससे विरेश्वर प्रताप की सच्चाई खुल जाती है और अन्त में लेखक इन महिलाओं को विरेश्वर प्रताप से अलग कर अपने पूर्व प्रेमियों से मिलवा देता है।

वर्मा जी यह उपन्यास मनोरंजनार्थ लिखा है इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। अत्यन्त रोचक कथानक में परिस्थितियों की विषमता तो हास्य उत्पन्न करती ही हैं, लेखक की चित्रांकन शैली और पात्रों की अजीब उलझने भी हास्य को जन्म देती हैं। इस उपन्यास में वर्मा जी की विनोदी प्रवृत्ति खुल कर सामने आयी है। उन्होने मनोरंजन को महत्वपूर्ण माना है, इससे उनकी सामाजिक प्रतिक्रिया कम नहीं होती। सीमित क्षेत्र और सीमित जीवन के चित्रण के कारण न तो यह उपन्यास कथानक की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन पाया है और न पात्रों के चरित्र निर्माण की दृष्टि से ही।

लेखक कथानक की गहराई तक पहुंचकर उसे सामाजिक विसंगतियों को प्रदर्शित करने का माध्यम बनाते हैं अतः 'अपने खिलौने' वर्मा जी की हास्य व्यग्य से पूर्ण एक महत्वपूर्ण कृति है जिसमें संयोगों का सहारा लिया गया है, जो रोचकता एवं मनोरंजन से परिपूर्ण है। समग्र उपन्यास में उत्सुकता एव कुतूहल व्याप्त है, इसके प्रत्येक पास की प्रकृति इतनी युगानुरुप और आचरण इतना परिस्थिति अनुकूल है कि उन्हें हम अपर्याय नहीं कह सकते। ऐसे चरित्र समाज में रोज देखने को मिलते हैं इसमें उच्च वर्ग की कमजोरी का यथार्थ चित्रण हुआ है।

भाषा पात्रानुकूल एवं बोलचाल की है। लोक प्रचलित उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी शब्दों का यथेष्ट प्रयोग हुआ है। जीवन की कटुता को हल्के फुल्के ढंग से वर्मा जी वर्णनात्मक शैली, चरित्रांकन शैली और कथन-शैली तीनों में हास्य व्यंग्य का पुट है। 'हास्य व्यंग्य' के इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से गम्भीरता एवं गहनता ढूँढ़ पाना असम्भव है, किन्तु परोक्ष रूप से उच्च वर्गीय समाज की

विभिन्न विकृतियों के प्रति लेखक की दुश्चिन्ता व्यक्त हुई है।''[1]

भूले विसरे चित्र :

'भूले विसरे चित्र' सन् 1959 में प्रकाशित हुआ। यह वर्मा जी के वृहदकाय उपन्यासो में से एक है। इसे वर्मा जी की कृतियों में निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ कृति कहा जा सकता है। यह उपन्यास साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत है। इसमें सन[1] 1885 से 1930 ई0 तक विसतृत कालावधि के फलक पर तत्कालीन जीवन की बहुरंगी झांकी चित्रित की गयी है। भारतीय इतिहास में यह काल महत्वपूर्ण रहा है। मध्यवर्ग के उद्भव और विकास, संयुक्त परिवार-प्रथा का विघटन, पूंजीवाद के अभ्युदय सामन्तवाद का पतन एवं भारतीय राजनैतिक गतिविधियों की दृष्टि से यह समय युगान्तकारी रहा है। इन कारणों के साथ-साथ औपन्यासिक दृष्टि से शिष्य और कलात्मक गहराई की दृष्टि से भी यह उपन्यास जगत में श्रेष्ठ है। इसके सम्बन्ध में जगदीश चन्द्र माथुर ने कहा है-''निकट अतीत के चित्रों का एक एलबम-वह अतीत जिसे वर्तमान पीढी को नहीं भूलना चाहिए क्योंकि उसी में हमारे नये जीवन का बीजारोपण हुआ था। परिवार के चित्रों के एलबम के विपरीत इस एलबम के चित्र धुधले नहीं पड़े हैं, क्योकि कैमरा एक ही रहा है, लेंसों का प्रयोग इस कुशलता से किया गया है कि चित्र बिल्कुल साफ और हूबहू चित्रित हुए हैं दूरी ने इन्हें धुंधला नहीं किया है।''[2]

इस उपन्यास में जीवन की अनेकानेक संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के अंकन के लिए एक मध्यमवर्गीय कायस्थ परिवार की कथा है। जिसने सामन्तीय जीवन को टूटते, मध्यवर्ग को पनपते और अन्त मे मध्यवर्गी धारणाओ के ह्रास का आरम्भ होते और युगीन परिस्थितियों के बदलते परिणामों को देखा है। उपन्यास में कथानक समय विशेष में विशिष्ट परिवार के माध्यम से तत्कालीन भारत के 'भूले विसरे चित्रों' को अपनी संवेदना से गहरा रंग भर दिया है। इसमें परिवार

---

1. साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, पेज-35

के चार पीढ़ियों को कथा का माध्यम बना कर वर्मा जी ने भारत वर्ष के अनेक नगरों–तहसीलो और गाँवों में स्पन्दित भारतीय जीवन के चित्रण का सफल खाका खींचने का प्रयास किया है। बदलती हुई परिस्थितियों में एक परिवार पर क्या प्रभाव पड़ता है, पीढी दर पीढी उनके स्वभाव, मनोवृत्तियों और आचरण में क्या अन्तर आता है, इसका कलात्मक चित्रण 'भूले बिसरे चित्र' में चित्रित है।

कथानक की शुरूआत मुंशी शिवलाल से शुरू होती है। जो एक सामान्य अर्जीनवीस थे किन्तु अपनी चाटुकारिता एवं तिकड़यों के बल पर अपने बेटे ज्वाला प्रसाद को नायब तहसीलदार बनवा देते हैं। वे अर्जी नवीस के माहिर थे। जो अपने पेशे में इस नैतिकता के हिमायती थे कि बदमाश के साथ जब तक बदमाशी से पेश न आया जाय तब तक उसकी बदमाशी नहीं जायेगी। बेटे की तहसीलदारी से यह परिवार विकसित होता है जिससे कथानक मे एक नया मोड आता है।

इसी में एक कथा कहार जाति के घसीटे, उसकी पत्नी छिनकी और पुत्र भीखू की। घसीटे मुंशी शिवलाल के साथ कचहरी मे काम करता है दोनो 'हम प्याला' भी हैं। छिनकी मुशी शिवलाल के घर की नौकरानी है, किन्तु अपनी स्वामिभक्ति के कारण और कुछ शिवलाल से अपने अबैध सम्बन्ध के कारण परिवार की अभिन्न सदस्य है, यहां तक कि शिवलाल मरते समय उसे ज्वाला की दूसरी मां तक कह देते हैं। भीखू भी अन्त तक इस परिवार का साथ निभाता है। दूसरी कहानी प्रभुदयाल, जैदेयी और उनके पुत्र की है। प्रभुदयाल वणिक जाति का एक महाजन है। जो अपनी तिकड़मी चालबाजी से लम्बी जमींदारी का स्वामी बन बैठा है।

ज्वाला प्रसाद की तहसीलदारी पूरे परिवार में उल्लास का वातावरण भर देती है। यद्यपि कि शिवलाल विधुर थे किन्तु उनका संयुक्त परिवार था और संयुक्त परिवार की यह विशेषता है कि इसमें से यदि एक भी व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से अन्य लोगों से ऊपर उठ जाता है तो सारा परिवार उसी से आश्रित हो

जाता है। यही स्थिति मुंशी शिवलाल के परिवार की थी, जो कि लेखक ने आर्थिक निर्भरता की दृष्टि से इस तरह की पारिवारिक स्थिति को रेखांकित किया है। ज्वाला प्रसाद के तरफ ही सारे परिवार की आंखे उसी तरफ देखने लगती हैं। मुंशी शिवलाल के संयुक्त परिवार के साथ ही तत्कालीन जमींदारी प्रथा मे निम्नवर्गीय सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। ऊँच नीच की भावना इतनी ज्यादा प्रबल है कि चमार ब्राह्मण के कुएं से पानी नहीं ले सकता किन्तु इस व्यवस्था के विपरीत प्रगतिशील विचारों के हमीरपुर के मुशी राम सहाय अपनी हवेली का आधा हिस्सा चमारों के उपयोग के लिए दे देते हैं। यहीं पर मध्यवर्ग के विचारो में परिवर्तन भी दिखता है।

ज्वाला प्रसाद का बरजोर सिंह के द्वारा प्रभुदयाल की हत्या के पश्चात् उसकी विधवा पत्नी जैदेयी से प्रेमावेश में अवैध सम्बन्ध हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप शिवलाल ज्वाला प्रसाद को सलाह देते हैं कि जैदेयी बड़ी धनवान है, ज्वाला प्रसाद को चाहिए कि जायदाद खड़ी कर ले। अपने पिता के प्रति पनपती वितृष्णा को महसूस करते हुए ज्वाला प्रसाद का चित्रण प्रस्तुत कर पहला खण्ड समाप्त होता है।

दूसरे खण्ड में ज्वाला प्रसाद के पारिवारिक झगड़ों का विशेष वर्णन है। ज्वाला प्रसाद के पद और मर्यादा से खेलकर उसके चाचा राधेलाल तथा इनके निकम्मे लड़के आर्थिक दृष्टि से अपने को सुदृढ़ करना चाहते हैं। इस पर ज्वाला प्रसाद ने अपने चाचा से कहते हैं–"मैंने जो कुछ आप लोगों से कहा है, वह आप लोगों के हित में और अपने हित में कहा है। लड़को से कहिए कि ईमानदार बने और मेहनत करें। उनकी ईमानदारी और मेहनत में मैं इन्हें हर तरह की मदद करने को तैयार हूँ। मेरे साथ रह कर ये सब लोग आवारा, कामचोर, बेईमान और लुटेरे बन रहे हैं। आखिर इनकी जिन्दगी सुधारना आप का

कर्तव्य है।''[1] इसमें 'आप' और 'अपने' की द्वैध भावना संयुक्त परिवार के टूटने का कारण रही है। परिश्रम एव योग्यता के बल पर मध्यवर्ग की शुरुआत होती है सयुक्त परिवार में दूसरों के भरोसे पनपने वाले अक्षम व्यक्ति पीछे छूट जाते हैं।

तीसरे खण्ड में नम्बरदारिन जैदेई, ज्वाला प्रसाद के पुत्र गंगा प्रसाद को अपने संरक्षण में पढाने लिखाने के लिए सोरांव से इलाहाबाद ले जाती है। ज्वाला प्रसाद डिप्टी कलेक्टर के पद से रिटायर होते है, किन्तु गंगा प्रसाद की नियुक्ति सीधे डिप्टी कलक्टर के पद पर होती है। वह अपने अक्खड़ एव साहसी स्वभाव के कारण एक सफल अफसर साबित होता है। जिस तरह से अधिकांश सरकारी अफसर स्वतन्त्रता आन्दोलन के विरोधी होते हैं उसी तरह वह भी स्वतन्त्रता आन्दोलन का विरोधी होता है। उस काल में शोषण अंग्रेजों, सामन्तों, पूंजीपतियों, धर्म के ठेकेदारो जाति के ठेकेदारों सभी ने मिल कर जनता का दोहरे-तिहरे ढंग से शोषण करते थे। सामन्तवाद का सूरज ढल रहा था तो पूंजीवाद का सूरज उद हो रहा था इसका सबसे अच्छा प्रतीक प्रभुदयाल जमींदार का बेटा लक्ष्मीचन्द है जो गांव से अपनी सामन्तीय जड़े उखाड़ कर शहर में पूंजीपति बन कर जम जाता है। साम्प्रदायिकता की बू पण्डित रामेश्वर दत्त एवं मीर जाफर अली के कथनों से स्पष्ट हो जाती है।

इसी सन्दर्भ में रईसों के ठाटवाट एवं व्यापारियों के घृणित कारनामें भी गंगा प्रसाद के रईसी ठाट-बाट, लक्ष्मीशंकर जैसे पूंजीपति की कार्य से उद्घाटित हो जाती है। तथा राधा किशन का अपनी भाभी से अनैतिक सम्बन्ध, सत्तो का गंगा प्रसाद को समर्पण, रिपुदमन सिंह के निराश जीवन के गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन राजा सत्यजीत प्रसन्न सिंह के प्रति सत्तो का समर्पण और रानी हेमवती का बड़े ही फूहड़ ढंग से गंगा प्रसाद को रति के लिए आमन्त्रण आदि प्रसंग। ये उच्च वर्गीय समाज के स्वच्छन्द यौनाचार के नग्न प्रदर्शन है। जिन्हें लेखक ने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार से आर्य समाज और मुस्लिमलीग के बीच का साम्प्रदायिक तनाव, सामन्ती वर्गों के मध्य चलने वाला विलास का

---

1 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 229

मदिरा वातावरण और लक्ष्मी चंद के बढत्रते हुए व्यापार तथा गंगा प्रसाद के मदिरा सेवन तथा वेश्या मलका से उसका सम्बन्ध उसके पैरों की बेड़ियां बन जाना चाहती है। वह मध्यमवर्गी संस्कार की वजह से मलका को तो नहीं अपना पाता लेकिन शराब उसके जीवन की कमजोरी बन जाती है। वह अपने मित्र अली रजा से कहता है- "अली रजा साहेब, आपको मैं बतला दूं कि उसके रूपयों से मुझे कोई मोह नहीं है। मैं तो उसकी मुहब्बत का कायल हूं। मैं जानता हूं कि अब वह कोठे पर कभी नहीं बैठेगी, लेकिन आप ही समझिये कि मेरा खानदान है, मेरी इज्जत है।"[1] यहां पर गंगा प्रसाद के मध्यम वर्गी सस्कार आड़े आते हैं।

उपन्यास के चौथे खण्ड में एक ज्ञान प्रकाश का उदय होता है। ज्वाला प्रसाद का ममेरा भाई और मुंशीराम सहाय का पुत्र ज्ञान प्रकाश 1912 में इंग्लैण्ड से वैरिस्टर बन कर वापस आता है। जिसके प्रवेश से उपन्यास में गति बढ़ जाती है। उपन्यास हर पात्र चेतन हो उठता है। ज्ञान प्रकाश राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है विदेश से शिक्षा प्राप्त वह अंग्रेजी राज्य के प्रति विद्रोह की भावना जगाता है। यही पर वर्मा जी ने नौकरशाही पर व्यंग्य करते हैं जो अंग्रेजों के दिमागी गुलामी से जकड़ा हुआ गंगा प्रसाद कहता है-"यह आन्दोलन सिर्फ इसलिए है कि सरकार सख्ती से काम नहीं लेती। हिन्दूस्तान में दस-पांच जलियावाला बाग और बना दिये जायें तो यह आन्दोलन सदा के लिए समाप्त हो जायेगा।"[2] गंगा प्रसाद विदेशियों के आदेशों पर अपने निरीह देशवासियों पर अत्याचार करता है, उसका विवेक अंग्रेजी शिक्षा नष्ट कर दी है। इसी समय भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का पदार्पण होता है उनके महान व्यक्तित्व को लेखक स्वीकार करता है, "गांधी जी के रूप में हमारे देश में जो नेता मिला है, वह कल्पना जगत का नेता नहीं है। कांग्रेस निष्क्रियता छोड़ कर सक्रिय कार्यक्रम पर आ रही है।"[3] ज्ञान प्रकाश के माध्यम से लेखक ने गांधीवाद के प्रति और गांधी जी के प्रति जनता की अटूट श्रद्धा दिखाई है। ज्ञान प्रकाश के सम्पर्क से गंगा प्रसाद के विचार भी परिवर्तित होने लगते हैं। बाद में अंग्रेजों से अपमान के

---

1 भूले विसरे चित्र, पेज 459
2 भूले विसरे चित्र, पेज-406.
3 " पेज-413.

कारण गंगा प्रसाद का मन अंग्रेजों के प्रति वितृष्णा से भर जाता है।

गाधीवाद के दूसरे पक्ष हरिजन समस्या पर हरिजनों के प्रतिनिधि गेंदालाल के माध्यम से होता है।

पांचवे खण्ड मे मुंशी शिवलाल का परिवार चौथी पीढ़ी पर पहुंच जाता है। गगा प्रसाद का पुत्र नवल किशोर बी0ए0 की परीक्षा देकर, भविष्य निर्माण के लिए आई0सी0एस0 बनने के सपने संजोने लगता है। राय बहादुर कामता नाथ की पुत्री ऊषा का प्रेम भी उसे मिल जाता है। कामता नाथ दोनों को लेकर स्विटजरलैंड लेकर जाना चाहते हैं। यही पर लेखक का नियतिवाद कथानक में नया मोड़ देता है। गंगा प्रसाद आकस्मिक बीमार पड़ जाता है। 'उसकी बीमारी' 'गैलेपिंग टी0बी0' का रूप धारण कर लेती है। नवल इंग्लैंड जाने के बजाय पिता की सेवा में भुवाली चला जाता है। लेखक जहां पर नवल को परिवार के प्रति जागरूक रखा है वहीं पर राजनैतिक चेतना के प्रति भी जागरूक रखा है वह अपनी आत्मा की पुकार के खिलाफ कोई काम नहीं करता तथा अपने पुराने सभी सपने त्यागकर कांग्रेसी कार्यकर्ता बन स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़ता है। नवल की बहन विद्या भी चाचा ज्ञान प्रकाश से प्रभावित होकर नवीन चेतना का प्रतिनिधत्व करती है तथा अपने सास-श्वसुर के अत्याचार का विरोध कर ससुराल छोड़ कर घर वापस आ जाती है और नौकरी करने लगती है। नवल 'नमक सत्याग्रह' में हिस्सा लेने निकल पड़ता है। भीखू और जवाला प्रसाद नये युग की नई चेतना के प्रतीक के रूप में जुलूस का स्वागत करते हैं ज्वाला प्रसाद अनुभव करता है कि उसके युग की मान्यताएं बदल गयी हैं दुनिया तेजी से बदल रही है। इस अनुभव के साथ उपन्यास का अन्त होता है।

''वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की ही भांति 'भूले विसरे चित्र' में ही मानव को परिस्थितियों का दास और नियन्ता के हाथ की कठपुतली बनाकर उपस्थित किया गया है।''[1]

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, डा0 इन्दू शुक्ला, पेज 40

वर्मा जी का यह उपन्यास सामन्तवाद से प्रारम्भ हो कर गांधीवाद पर समाप्त है। अहिसा, सत्याग्रह, असहयोग, अछूत समस्या, हिन्दू मुसलमान एकता, हृदय परिवर्तन ये गांधीवाद की रीढ़ हैं। इस प्रकार से एक परिवार को प्रतीक बनाकर उसकी चार पीढियों की कथा के माध्यम से मध्यवर्ग की उत्पत्ति, विकास एव विघटन, टूटन की कथा के साथ ही नमक तोड़ने तक के सारे राजनैतिक आन्दोलनो को चित्रित कर उसी के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता, आर्य समाज आन्दोलन, मुस्लिम लीग गाथा के साथ ही लेखक ने देश के नव जागरण के इतिहास को चित्रित करने का प्रयास किया है। नियति और भाग्य का आग्रह हर पात्र में है प्रत्येक पात्र आन्तरिक एवं वाह्य द्वन्द्व से ग्रसित है।

लेखक की रोमास के प्रति आसक्ति बिना हास्य के प्रस्तुत है। वर्ग प्रतिनिधि इसके सभी पात्रों में जो मानव मूल्यों में संक्रमण उपस्थित करता है।

उपन्यास में निरर्थक कथोपकथन का अभाव है। संवाद अत्यन्त सरस एवं पात्रानुकूल हैं। घसीटे, छिनकी और भीखे जैसे पात्रों के संवाद लोक भाषा के अनुरूप हैं। वर्मा जी की भाषा स्वयं लोक प्रचलित एवं उर्दू युक्त है। मुसलमान पात्रों के साथ भाषा विशुद्ध उर्दू मिश्रित है। कुछ कमजोरियों के बाद भी 'भूले विसरे चित्र' हिन्दी उपन्यास साहित्य की विशिष्ट कृति है। सभी दृष्टियों से 'भूले विसरे चित्र' हिन्दी कथा साहित्य क्षेत्र में अनन्यतम कृति है और वर्मा जी की प्रौढतम कृति भी।

"इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी ने 'भूले विसरे चित्र' में देश का विस्तृत इतिहास विभिन्न छोटी-बड़ी रोचक कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और उसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है। वर्मा जी के इस उपन्यास ने इतनी ख्याति अर्जित की है कि इस उपन्यास का अनुवाद बरमीज, तिब्बती, जापानी, रशियन व अन्य भाषाओं में हो चुका है।"[1]

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा, पेज 41

वह फिर नहीं आई :

वर्मा जी का यह अति लघु-उपन्यास है जो कि इसी नाम से एक कहानी भी लिखी थी। वाद में इसे एक उपन्यास का रूप दिया। यह उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में एक शरणार्थी दम्पत्ति की कहानी है, जो देश विभाजन के समय में रावल पिंडी से विस्थापित के रूप मे आये, उपन्यास जीवनराम और उसकी पत्नी रानीश्यामला तथा कानपुर के व्यापारी ज्ञानचन्द्र के जीवन पर घटित घटनाओं पर आधारित है।

शरणार्थी समस्या देश की नहीं, आज के उजड़ने और नये सिरे से बसने के युग में समस्त मानव समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या है-रक्त और आंसुओं से भीगी हुई, आहों से धुंधली पड़ी हुई, पशुता और दानवता के नग्न रूप को प्रदर्शित करती हुई।''[1] फिर भी जीवन की सम्पूर्ण भोग-विलास, छल-कपट और अमानुषता के होते हुए भी ममता का सम्बल ही जीवन नौका के लिए महान आशा है। भावना और ममता की प्रेरणा ही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है।

इस उपन्यास में श्यामला के माध्यम से कथाकार ने समाज के कामुक, कुत्सित एवं चरित्रहीन लोगों का यथार्थ अंकन किया है। साथ ही साथ इसके भयंकर परिणाम को भी उद्घाटित किया है। जो इस सन्दर्भ में साफ-साफ झलकता है-श्यामला ज्ञानचन्द्र से कहती है-'कटुता! ज्ञानचन्द्र जी आज कई वर्षो से दुनियां ने मुझे कटुता के घूंट ही तो पिलाये हैं, फिर भला मुझमें कोमलता कैसे हो? लोग मेरा शरीर पाना चाहते हैं। मेरी आत्मा की तरफ कभी किसी ने देखा है? कितना बड़ा अभाव है मेरे जीवन में, कितना सूनापन है, मेरे प्राणों में, काश लोग-बाग यह देख सकते तो वे मुझसे दूर भागते। मेरे प्राण भोग-विलास के भूखे नहीं हैं, उन्हें भूख है ममता की हमदर्दी की। लेकिन सब अपने में गर्व हैं, अपना सुख चाहते हैं, अपने को सन्तुष्ट करते हैं। ऐसी हालत में मुझमे

---

1 वह फिर नहीं आई- भगवती चरण वर्मा, पेज-24

कटुता आ गई है तो ताज्जुब क्या है? मैं अपनी कटुता को बड़े मजे में छिपा लेती हूँ, जिस समय मेरे प्राण रोते हैं, मेरे होठों पर हंसी रहती है।. . .. लेकिन इस सबमें मुझे अब तकलीफ नहीं होती। जीवनराम के खोने की तकलीफ सह चुकी हूँ न।''[1] इस प्रसंग से यह दृष्टिगत होता है कि श्यामला जीवनराम की ममता को जीवनपर्यन्त कभी भुला नहीं सकीं।

वर्मा जी ने एक तरफ नैतिकता दूसरी तरफ अर्थ का जीवन में महत्व तथा तीसरी तरफ विस्थापितों की समस्या को एक विशिष्ट परिवार के माध्यम से इस उपन्यास मे चित्रित किया है। मूलत यह उपन्यास चरित्र की आन्तरिक विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिए लिखा गया है। अन्य उपन्यासों की तुलना में फिर भी यह साधारण कोटि का है।

उपन्यासकार नियतिवादी विचारधारा को अंकित करता है, जीवनराम की विवशता को मनुष्य की विवशता मानता है और गलत कार्य की बाध्यता को स्वीकार करता है। जिसमें पात्रों की कमजोरी को नियति का जामा पहना दिया है।

इस उपन्यास में कहानी संवेदनशीलता की दृष्टि से सफल है। दार्शनिक टिप्पणियाँ भावुकता से ओत प्रोत है। विकास क्रम में उत्सुकता एवं कौतूहल है। इसमें प्रेम को जीवन का चिर स्थाई सम्बन्ध माना गया है जो कि श्यामला का जीवनराम के प्रति। कहने का आशय यह है कि भाषा प्रभावपूर्ण और अभिव्यक्ति बडी ही मार्मिक है। तथा शिल्पगत आधार पर भी यह सफल उपन्यास है।

सामर्थ्य और सीमा :

इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1962 में हुआ। उत्तरोत्तर यह निश्चित हो चुका है कि वर्मा जी की अटूट आस्था 'नियतिवाद' में रही है और सघन होती गयी है। प्रस्तुत उपन्यास का सम्पूर्ण कलेवर नियति के व्यापक प्रभाव को प्रदर्शित

---

1 वह फिर नहीं आई, भगवती चरण वर्मा, पेज-109.

करता है इस उपन्यास के माध्यम से वर्मा जी ने मनुष्य की 'सामर्थ्य और सीमा' को मापने का सफल प्रयास किया है। उनका विचार है कि मनुष्य की सामर्थ्य और सीमा 'नियति' के द्वारा परिचालित है। जब तक 'नियति' और 'प्रकृति' साथ देती है, मनुष्य सर्वोच्च बनता है और अपनी सामर्थ्य पर इठलाता है किन्तु जैसे ही काल चक्र घूमता है प्रकृति दृष्टि फेरती है-मनुष्य का अहंकार धूल धूसरित हो जाता है। तब वह अखण्ड अपरिमित प्रकृति के समक्ष घुटने टेकने के लिए विवश हो जाता है। निर्बल नि सहाय होकर नियन्ता से सुरक्षा गुहार करने लगता है।

सम्पूर्ण कथानक मनुष्य के अहम् और प्रकृति की शक्ति के बीच होने वाले संघर्ष पर आधारित है। 'सामर्थ्य और सीमा' में वर्मा जी ने स्वातन्त्र्योत्तर औद्योगिक विकास की योजनाओं, इसकी कार्य प्रणालियों, मन्त्रियों की योजनागत अज्ञानता, देश मे बढती हुई राजनैतिक दल बन्दियों, बढ़ते हुए पूंजीवाद का प्रभाव, जमींदारी उन्मूलन तथा उससे उत्पन्न जमीदारों की निराशाजनक स्थिति का वर्णन किया है। उपन्यास स्वतन्त्र भारत की पृष्ठभूमि से है अत स्वतन्त्र भारत की सामाजिक, सास्कृतिक और राजनैतिक स्थिति प्रस्तुत उपन्यास में स्वत मुखरित हो उठी है। लेखक ने स्वतन्त्र भारत की शासन नीति पर व्यंग्य किया है।

मानव सभ्यता का इतिहास प्रकृति पर मनुष्य की विजय का इतिहास है। विज्ञान मानव की सबसे बड़ी शक्ति है। इसी के बल पर मनुष्य अपने को प्रकृति का स्वामी मानने लगा है।

संक्षिप्त रूप में कहानी इस प्रकार से चलती है-प्रकृति की गोद में बसे हुए सुमनपुर के नवनिर्माण के लिए पाँच सक्षम व्यक्ति राजमन्त्री जोखनलाल के आमन्त्रण पर सुमनपुर आते हैं। मन्त्री जोखनलाल उत्तर प्रदेश सरकार में है। आने वाले आमन्त्रितों में पहले व्यक्ति रतनचन्द्र मकोला बड़े उद्योगपतियों में हैं जो सत्ता की सहायता से अपनी पूंजी बढाता है। दूसरे व्यक्ति वासुदेव चिंतामणि

देवलंकर हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इन्जीनियर हैं जिनका यह दावा है कि "विज्ञान मानव का पुरुषत्व है जो प्रकृति को उसके वश में रखता है, जो प्रकृति के अनगिनत रहस्य खोलता है। हमारा समस्त विकास विज्ञान का विकास है। मनुष्य सक्षम और समर्थ है, वह कर्ता है। जब बांध बांधने की सोचता हूं, तब मेरे सामने उस बाध का औचित्य नहीं है, मैं उसकी सार्थकता नहीं देखता हूं। उस समय मैं प्रकृति को मानव की एक चुनौती के रूप में स्वप्न देखता हूं। उस समय मैं केवल एक बात सोचता हूं कि मुझे यह करना है क्योंकि मैं कर्ता हूं और किस प्रकार यह किया जा सकता है? मेरी चेतना और बुद्धि उस समय मेरी सहायता करती है।"[1] देवलंकर स्वतन्त्र भारत के नवनिर्माण के लिए विदेश से नौकरी छोड़कर आता है।

तीसरे व्यक्ति हैं ज्ञानेश्वर राव, देश के सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'रिपब्लिक' के प्रधान सम्पादक जो यह जानते हैं कि उनकी राय बहुत कीमती और दूसरों के भाग्य को बनाने बिगाड़ने वाली है। चौथे व्यक्ति प्रसिद्ध साहित्यकार एवं संसद सदस्य पण्डित शिवानन्द शर्मा जो सरस्वती के वरद पुत्र हैं। पांचवे हैं प्रसिद्ध कलाकार एवं आर्कीटिक्ट अल्वर्ट किशन मंसूर जिनके बिना बडे-बडे नगरों की प्लानिंग अधूरी समझी जाती है।

इस प्रकार से लेखक ने मनुष्य की शक्ति के प्रतीक रूप में जोखनलाल, मकोला, देवलंकर, ज्ञानेश्वर राव, अलवर्ट किशन मंसूर तथा शिवानन्द शर्मा को चुना है, जो क्रमश· राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, पत्रकारिता, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक शक्तियों के प्रतीक हैं। जो एक दूसरे को नीचा दिखाना चाहते हैं। साथ ही अपनी शक्ति से ससार की गतिविधियों को बदलना चाहते हैं।

रानीमानकुमारी सुमनपुर के पास की रियासत यशनगर के भूतपूर्व राजा स्वर्गीय शमशेर बहादुर सिंह की पत्नी हैं एवं मेजर नाहर सिंह उनके चाचा हैं। राजा शमशेर बहादुर दूरदर्शी थे जिन्होंने बहुत पहले ही सुमनपुर के औद्योगिक

---

1 सामर्थ्य और सीमा, भगवतीचरण वर्मा, पेज-65.

विकास की योजना बनायी थी परन्तु मेजर नाहर सिंह ने उन्हे उसी समय निरूत्साहित किया था, "सुमनपुर" को जो आप वसा रहे हैं, उससे यशनगर नष्ट हो जायेगा। भविष्य में यशनगर के खण्डहर भी लोगों को ढूंढ़े न मिलेंगे। लेकिन छोटे राजा, नियति के क्रम को रोक सकने सामर्थ्य किसमें है? यशनगर नष्ट होकर रहेगा और यशनगर के मिटने के साथ गुम्मैत ठाकुरों का राजवश भी सदा के लिए मिट जायेगा।"[1] नाहर सिंह के साथ प्रचलित है कि उनकी भविष्य वाणी सत्य होती है। शमशेर सिंह जमींदारी उन्मूलन की वजह से अपनी नकद सम्पत्ति को लेकर रानी मान कुमारी के साथ विदेश चले जाते हैं वहीं पर शमशेर की मृत्यु हो जाती है विधवा होकर रानी भारत लौट आती हैं। रानी को भारत आने पर यह पता चलता है कि उनकी सारी अचल सम्पत्ति सरकार के हाथ मे चली गयी है। उन्हें इससे अत्यधिक निराशा होती है।

जोखनलाल के साथ पांचों व्यक्ति सुमनपुर पहुंचते हैं और सुमनपुर के पास रास्ते में घने जंगलों में कार खराब हो जाती है वहीं पर रानी मानकुमारी की भेंट होती हे। रानी अपनी कार से उन सबको सकुशल सुमनपुर पहुंचा देती हैं। रानी मानकुमारी अनन्य सुन्दरी है, इसलिए मकोला से लेकर शिवानन्द शर्मा तक सभी सामर्थ्य मदोन्मत शक्तिशाली व्यक्ति हैं, जो संसार में किसी के समक्ष झुकते नहीं हैं यहां तक कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करने तक का दर्प पाले हैं। लेकिन उनका समस्त अहं रानी मानकुमारी के रूप में यौवन के आगे पिघल जाते हैं। रानी मानकुमारी भी इन समर्थ्य व्यक्तियों के किसी न किसी पहलू से प्रभावित होती है। उसके अन्दर भी जीने की इच्छा बलवती होती है। रानी का प्यार पाने के लिए सभी अतिथि आमन्त्रण देते हैं। रानी के मन में भी इस परिवर्तन के पूर्वाभास से एक असीम उल्लास हिलोरें लेने लगता है।

विकास योजनार्थ दल के पहुंचते ही मेजर नाहर सिंह उन्हे इस अभिशापित इलाके से चले जाने की चेतावनी देता है। विनाश का पहला संकेत

---

1 सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज 70

मिलता है रोहिणी के तल पर कच्चे पहाड़ के गिर जाने से वहां बहुत बड़ी झील बन जाने पर। इन्जीनियर देवलंकर रोहिणी की धारा को तुरन्त मोड़ देने की सलाह देता है। इस पर मेजर एक दार्शनिक की भाति कहता है कि वे इसमें सफल नहीं होंगे क्योंकि कर्ता कोई और है, जो अदृश्य है, हम सब तो इस कर्ता के साधन मात्र है। इसके साथ ही कहता है कि यह प्रदेश नष्ट और ध्वस्त हो जायेगा।

लेखक ने जीवन दर्शन का माध्यम शमशेर बहादुर के काका नाहर सिंह को बनाया है। उपन्यास का सबसे शक्तिशाली पात्र नाहर सिह है जिसका व्यक्तित्व शुरू से लेकर अन्त तक छाया रहता है। वह 'सामर्थ्य' का विश्लेषक भी है और 'सीमा' का विवेचक भी। उसके पास भविष्य के प्रति पूर्वाभास की अलौकिक क्षमता भी है। इसके अलावा दौ गौण पात्र राजनैतिक विसंगतियों को प्रकट करने के लिए रखे गए हैं। पहला रघुराज सिंह, मेजर नाहर सिंह का पुत्र, जो सामन्ती वंश का होकर भी साम्यवादी है। समाजवाद के प्रति लगाव उसकी परिस्थितियों से जन्मा है, क्योंकि उत्तराधिकार में शमशेर बहादुर हैं जो कि उम्र में रघुराज सिंह से छोटे हैं, इसलिए उसके जीवन में कटुता आ जाती है।

दूसरा गौण पात्र रयाजुलहक है जिसे फिरका परस्त नेता के रूप में चित्रित किया गया है, परन्तु उपन्यास में राजनैतिक जीवन प्रस्तुतीकरण का विषय नहीं है, वह सिर्फ चर्चा के लिए है, यह नियति का विधान है, जिसे न जानने के कारण मनुष्य अपने दर्प में अपने को समर्थ समझकर संसार में लिप्त रहता है जबकि अन्ततः वह नितान्त असमर्थ और विवश सिद्ध होता है।

मेजर नाहर सिंह को रोहिणी प्रपात के पानी का एकाएक कम हो जाना उन्हे अत्यन्त अशुभ का समाचार देता है, उनकी दृष्टि में रोहिणी का सिमटना एक विशेष अर्थ रखता है। रानी मानकुमारी के जन्मदिन पर ये सभी अतिथि यशनगर पहुंचते हैं लेकिन जिस सुबह अपनी-अपनी योजना से आश्वस्त सभी व्यक्ति यशनगर से वापस लौटने वाले होते हैं अचानक वर्षा के कारण रोहिणी का

रुका हुआ पानी कच्चे पहाड़ को तोडकर भीषण बाढ़ का रूप ले लेता है। इस पर मेजर नाहर सिंह नियति के विधान का संकेत करते हैं-"मैं पूछता हूं जितने अतिथि यहां एकत्रित हुए हैं, इनमें कौन सक्षम और समर्थ है? मेरा जवाब दो। तुम सब के सब अपनी निर्बलता और मृत्यु की सीमा लेकर आये हो तुम नहीं देख पा रहे हो कि मृत्यु तुम्हारे सिर पर मंडरा रही है, तुम सब मिटने और मरने के लिए एकत्रित हुए हो यहां पर।"[1] यह कह कर नाहर सिंह अपने अतिथियों को सचेत करने का प्रयत्न करते हैं-"मैं कहता हूं भागो! भागो!"[2] फिर भी सारे अतिथि काल के गाल में समा जाते हैं, सबको मृत्यु के आगे आत्म समर्पण करना पडता है। नाहर सिंह मानकुमारी से कहता है कि तुम्हारे सपने नष्ट हो गये। रानी के साथ नाहर सिंह महल से ऊपर चढकर प्राणों की रक्षा का प्रयास करते हैं उन्हें लगने लगता है कि पानी कम हो रहा है तभी भूकम्प के झटके से यशनगर का राजमहल टूट जाता है और वे भी अथाह जल मे समा जाते हैं। इस नियति के खेल में प्रकृति पर भी दर्प रखने वाले चूर हो जाते हैं, जिसमें प्रकृति रह जाती है। सामर्थ्य विखण्डित हो जाता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में आज के समाज का एक सजीव चित्रण प्रस्तुत हुआ है। इसका प्रत्येक पात्र आज के समाज के विभिन्न व्यक्तियों के प्रतीकों के रूप मे हमारे सामने दिखाई देता है। इस तरह के चरित्र ससार में हर जगह दिखाई देते हैं चाहे वह मकोला हो, चाहे देवलंकर, चाहे ज्ञानेश्वर राव और चाहे शिवानन्द शर्मा या अल्बर्ट किशन मंसूर। ये सब किसी न किसी मनोग्रन्थि एवं विकृति को प्रकट करते हैं।

लेखक ने रोहिणी के जल विप्लव के प्रतीक से मनुष्य को अहंकार मुक्त होने की चेतावनी दी है कि जिस प्रकार सामन्ती काल नष्ट हो गया उसी प्रकार आज की व्यवस्था भी समाप्त हो जायेगी। वस्तुवादी वासना की विकृतियां समाप्त

---

1 सामर्थ्य और सीमा-भगवती चरण वर्मा, पेज-298
2. सामर्थ्य और सीमा-भगवती चरण वर्मा, पेज-298

कर देगी। प्रकृति की शक्ति का प्रयोग मनुष्य अपने लिए करे किन्तु उसे अपने वश में करने का लेखक समर्थक नहीं। प्रकृति में भी प्राण है, पहाड़ों और जगलों और नदियों मे प्राण है, यह लेखक रोहिणी के जल प्लावन के माध्यम से दिखा दिया है कि प्रकृति पर विजय नहीं पायी जा सकती है।

इस उपन्यास में भी कथ्य की दृष्टि से वर्मा जी का नियतिवादी दृष्टिकोण बड़े ही व्यापक ढंग से प्रस्तुत हुआ है। मनुष्य को प्रकृति जिस रूप में चाहती है, उसी रूप में चलायमान करती है क्योंकि मनुष्य उस अदृश्य शक्ति के इशारे पर चलने वाला उपकरण मात्र है।

वर्मा जी ने घटनाओं और संयोगों के तानेवाने में पात्रो को नहीं फसाया। कोई भी पात्र अपनी गलती से नष्ट नहीं होता, वे सभी नष्ट होते हैं क्योंकि उन्हें नष्ट होना था। वे सुमनपुर आये थे क्योंकि वह नियति चक्र था। सृजन और विनाश की लीला मानव बुद्धि से परे है। इस छोटी सी कथा के माध्यम से लेखक ने पाठको पर प्रभाव डालने का प्रयास किया है। जिसमें प्रलय का सजीव चित्रण हृदयविदारक है।

इस उपन्यास में कुछ कमियां भी दृष्टिगोचर होती हैं। उपन्यास में अन्त प्रेरणाओ तथा अन्तर्द्वन्द का चित्रण सबसे कम हुआ है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा चरित्रांकन कम हुआ है। उद्देश्य पूर्ति में लेखक को मनोविश्लेषण की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। फिर भी अभिव्यक्ति काव्यात्मक एवं सरस है। दृश्य विधान और प्रकृति चित्रण सभी में लेखक का हृदय झलकता है। उपन्यास विचारोत्तेजक है, तर्क-वितर्क के कारण अभिव्यक्ति को व्याघात पहुंचा है। सवादों में पात्रानुकूल तथा भावानुकूल भाषा का ध्यान रखा गया है।

नियतिवादी उपन्यास होने के कारण अनेक आलोचकों ने इसमें दोषारोपण भी किया है। डा० त्रिभुवन सिंह का कहना है-"यदि उपन्यासकार अपने को चरित्र निर्माण तक ही सीमित रखता तो सम्भवतः वह उपन्यास 'भूले विसरे चित्र' के

विकास की अगली कड़ी माना जा सकता था, पर स्वछन्द प्रेम का जो सजीव चित्रण वर्मा जी ने किया है वह प्रलयकारी बाढ़ की करूणा में डूब गया है।''[1] वहीं पर डा0 कुसुम वार्ष्णेय ने निराशा एवं विवशता के सन्दर्भ में-''यद्यपि छटपटाहट, निराशा और विवशता की अनुभूति पाठक को जीने की प्रेरणा नहीं दे सकती उसमे जीवन से भागने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है परन्तु फिर भी 'साामर्थ्य और सीमा' मृत्यु और विनाश, विवशता और निराशा की अनुभूति कराकर व्यक्ति की कलुषित भावनाओं को जागृत करने की प्रेरणा देती है। यही प्रस्तुती कृति की रचनात्मक उपलब्धि है।''[1]

इतना होते हुए भी उपन्यास का अभिप्रेय इतना युगानुकूल है कि कृति की महत्ता से हम इंकार नहीं कर सकते।

थके पाव ·

वर्मा जी का यह उपन्यास 1963 ई0 में लघु आकार का रूप लिए प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय समाज के जीवन का आर्थिक सघर्ष चित्रित किया गया है। धनाभाव के कारण ही व्यक्ति आजीविका की खोज में दर-दर की ठोकरें खाता हुआ घूमता है। जिससे उसका जीवन निराशा से भर उठता है। दूसरी तरफ हमारे समाज की नैतिक मान्यताओं के दबाव में निम्न मध्यवर्गीय समाज और भी टूटता हारता चला जाता है। 'भूले विसरे चित्र' की तरह 'थकेपांव' में भी मध्यवर्ग की पीढी की बदलती हुई मन स्थिति तथा बदलते हुए आदर्शो को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में भी तीन पीढी के व्यक्तियो रामचन्द्र, केशवचन्द्र और मोहन की कहानी है, वे सभी आर्थिक रूप से परेशान एवं नैतिक रूप से दबाव के कारण विवशता से ग्रस्त हैं।

कथा के प्रारम्भ में मध्यमवर्गीय केशव के 50वर्ष के थके हारे जीवन संघर्ष का चित्रण है। जिसमें उसके सामने अतीत की घटनाए उभर कर एक के

---

1 हिन्दी उपन्यास और पर्यायवाद, पेज 490

बाद एक सामने आती हैं। उसे जीवन का एक दिन याद आता है जब वह बी0ए0 का छात्र था। बाईस वर्षीय केशव उज्ज्वल भविष्य की कल्पनाए मन में सजोये हुए आगे बढना चाहता है। उसके पिता रामचन्द्र एण्ड्रज कम्पनी में पचास रूपये पाने वाले एक साधारण क्लर्क है। जो अपने पुत्र को बी0ए0 पास कराकर सरकारी अफसर बनाना चाहते हैं। वहीं पर किस तरह से मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना की शुरूआत होती है "उसके पिता ने उसके पास होने के उपलक्ष्य में अपने मित्रो को दावत दी थी और उसने स्वय भी अपार साहस, उमग और अक्षय जीवनी शक्ति का अनुभव किया था, किन्तु उस दिन वह यह नहीं जानता था कि उसकी शिक्षा केवल इसलिए थी कि वह नौकरी करे, बैल की भाति गृहस्थी की गाडी ढोये।"[1] उसी समय केशव के हाईस्कूल पास करते ही केशव का विवाह नन्हे निर्बैले कन्धों पर लाद दिया जाता है। केशव के विवाह के साथ कथानक में पहला मोड आता है।

केशव के पास होने के उपलक्ष्य मे जिस दिन उसके पिता द्वारा दावत थी उसी दिन उसकी छोटी बहन सुधा के विवाह के लिए वर के पिता देखने आये हैं, और विवाह के लिए भारी दहेज (चार हजार) की समस्या उठ खडी होती है। जिससे दावत का माहौल नीरसता में बदल जाता है। उसी दिन केशव को यह महसूस होता है कि पारिवारिक दायित्वों को संभालना चाहिए। इसी समय केशव के उज्ज्वल भविष्य के सारे सपने मिट जाते हैं। नौकरी के प्रयास में उसे क्लर्की मिलती है और युवावस्था के सुनहरे सपनों को कुचल कर परिवार के भरण-पोषण के लिए अथक श्रम करने लगता है। अपने बच्चो को वह ऊंची शिक्षा देता है इस प्रकार कुटुम्ब के भरण पोषण पर जो भार रामचन्द्र ने केशव चन्द्र पर डाला था उसे अब केशव अपने बच्चों पर डालना चाहता है। केशव चन्द्र के दो लडके, एक लडकी है। केशव के बड़ा लडका मोहन अपने पिता के कर्म मार्ग पर चलते हुए संयुक्त परिवार की जिम्मेदारियों को वहन करने वाला है, किन्तु किशन नयी

---

1 चित्रलेखा से सबहि नचावत राम गोसाई तक, डा0 कुसुम वार्ष्णेय, पेज 219

चेतना और नये युग के रास्ते पर चलने के लिए पैर बढाता है। वह रंगीन फक्कड़ मिजाज का है जो जीवन के प्रति अपने युगानुरूप नजरिये से जीवन को बढाता है और वह बम्बई जाकर अभिनेता बन जाता है। उसकी बहन माया भी उसकी प्रेरणा से शादी करने से इन्कार कर देती है और मां बाप से बिना बताए फिल्मों में काम करने चली जाती है। वह मध्यम वर्गीय परिवार की दुर्दशाग्रस्त 'पत्नी' की अपेक्षा अपने भाई किशन के साथ स्वच्छन्द रूप मे 'एक्ट्रेस' बनना अधिक अच्छा समझती है।

मोहन की 'इंडियन एक्सपोर्ट' की 120 रूपये मासिक की नौकरी छूट जाती है और वह बेकार हो जाता है। सारा परिवार उसकी बीमारी से तिलमिला जाता है, क्योकि घर गृहस्थी चलाने में वही केशवचन्द्र का साथ देता है। नौकरी छूटने पर मोहन का आर्थिक तंगी जीवन चिन्ताग्रस्त हो गया और वह क्षय रोग से पीडित हो गया, जिससे सारे परिवार में शोक छा जाता है। इसी अवसर पर मोहन की पत्नी सुशीला भारतीय साहसशील पत्नी की तरह अपने सारे जेवरात बेंचकर मोहन को लेकर पहाड़ चली जाती है। यहीं पर सुशीला के माध्यम से एक भारतीय नारी का साहस उजागर होता है। वह नौकरी करने का प्रस्ताव रखती है परन्तु मोहन की इसमें पारिवारिक प्रतिष्ठा आड़े आने लगती है कि पत्नी नौकरी करे। इस प्रकार से अपने निर्थक आदर्श बोझ के तले दबते हुए, खोखली मान्यताओं को ओढे हुए केशव संघर्षमय पचास वर्ष समाप्त करता है। अपने अभावो से त्रस्त केशव एक हजार रिश्वत लेता है। जिससे मध्यवर्गीय आत्मा की शान्ति नष्ट हो जाती है, और परिवार के जो सदस्य परिवार की जिम्मेदारियों से मुंह मोड़कर निकले, वे सफलता के पथ पर बढते गये जो परिवार के मोह से बंधे, वे अभावों और विवशताओं में पिसते रहे। केशव ने अपनी पत्नी के सारे जेवर बेंचकर अपने भाइयों सुरेश और रमेश को पढाया, वे बड़े आदमी बन गये और केशव परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के लिए

---

1 थके पाव, भगवती चरण वर्मा, पेज-27.

अभावों को अपने गले से लगाता रहा। वही स्थिति मोहन की रही। केशव जीवन भर जिन आदर्शों का पालन करता है, वह रिश्वत लेने से खण्डित हो जाता है, तब उसकी आत्मा चीख उठती है। वह विवशता से युग सत्य को स्वीकारता है और पश्चाताप की अग्नि में जलता हुआ वह अपने अपराध को अपने अधिकारी के सामने स्वीकारता है और नौकरी से इस्तीफा दे देता है। उसी समय किशन और माया के भेजे हुए डेढ हजार रूपये उसे प्राप्त होते हैं तथा वह रिश्वत के पैसे अनाथालय को दान देकर अपनी आत्मा को शान्ति देता है। इस प्रकार उपन्यास का अन्त आदर्शवादी रूप मे होता है।

इस उपन्यास में जिन लोगों ने सामाजिक नैतिकताओं को छोड़ दिया है, जो इस समाज से अलग हो गये हैं, इसी मध्यवर्ग की विवशता, छटपटाहट और निराशा का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। यह उपन्यास वर्मा जी के अन्य उपन्यासों से भिन्न है। क्योंकि यहां बेकारी की समस्या का मर्मस्पर्शी चित्रण है किन्तु एक बात को बार-बार दोहराना कथा प्रवाह के लिए घातक सिद्ध हुआ है जिससे उपन्यास मे रोचकता का अभाव है। अत वर्मा जी की 'थके पांव' एक प्रौढ़ कृति न होकर एक सामान्य रचना है।

रेखा :

वर्मा जी का उपन्यास 'रेखा' सन् 1964 ई0 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास स्त्री प्रधान है। इस उपन्यास में एक स्त्री की यौन कुंठाओं से ग्रस्त रोमानी आदर्श और कटु यथार्थ के बीच भटकती हुई कहानी है। इस उपन्यास की नायिका रेखा के माध्यम से अनमेल विवाह की समस्या को उभारा गया है। रेखा अनमेल विवाह से ग्रस्त यौन अतृप्ति से आहत, यौन स्वच्छदता मे पागल, नियति के झंझावातों में बहती हुई असाधारण नारी है। भावना के प्रवाह मे प्रेम और श्रद्धा के वशीभूत होकर प्रोफेसर और रेखा ने जैविकीय आवश्यकताओं-तन की प्यास और मन की हुलास को भुला दिया जिसका अभिशाप दोनों को मृत्युपर्यन्त

भोगना पड़ता है।

"रेखा ने श्रद्धातिरेक में अपनी उम्र से कहीं बड़े उस व्यक्ति से विवाह कर लिया जिसे वह अपनी आत्मा तो समर्पित कर सकी, लेकिन जिसके प्रति उसका शरीर निष्ठावान नहीं रह सका।"[1]

कथानक का प्रारम्भ दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग से होता है। जिसमे रेखा भारद्वाज एम0ए0 प्रथम वर्ष की परीक्षा पास कर एम0ए0 द्वितीय वर्ष के प्रथम क्लास में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रोफेसर प्रभाशंकर से क्लास मे देर से पहुंचने पर डॉट खाती है। प्रभाशंकर की इस उपेक्षा से रेखा के रूप का दर्प चकनाचूर हो जाता है। वह उनके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित होती है। धीरे-धीरे वह प्रोफेसर की तरफ आकर्षित होने लगती है। उसका आकर्षण श्रद्धा की भावना से भरा हुआ है।

रेखा के रूप सौन्दर्य और अध्ययनशील व्यक्तित्व के प्रति प्रोफेसर का झुकाव बढता गया और प्रोफेसर प्रभाशंकर एम0ए0 फाइनल के डिजर्टेशन के लिए रेखा का गाइड होना स्वीकार कर लेते हैं किन्तु यह झुकाव एक अतृप्त पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण है न कि एक प्रोफेसर का विद्यार्थी के प्रति। प्रोफेसर के विधुर होने के बाद से इलाहाबाद में ही देवकी के साथ भी अनैतिक सम्बन्ध रहता है। वहीं पर रेखा प्रभाशंकर की ख्याति और यश से अत्यधिक प्रभावित है। आदर्श और भावुकता के वशीभूत होकर प्रोफेसर से विवाह करने को तैयार हो जाती है किन्तु यह प्रेम, प्रेम न होकर क्षणिक आवेग पूर्ण मन·स्थिति विशेष है जिसके कारण 52 वर्ष के विधुर प्रभाशंकर से 21 वर्षीया रेखा का विवाह होता है। यहीं पर उम्र की असमानता से नारी के अनमेल विवाह की समस्या उठ खडी होती है जो स्वच्छन्द प्रेम के कारण एक ओर भावुक प्रेम दूसरी तरफ से वासना का सघर्ष शुरू हो जाता है। विवाहोपरान्त रेखा को यह आभास होने लगता है कि प्रभाशंकर से उसकी शारीरिक भूख शान्त नहीं होने वाली है और अपने इस

अभाव को वह सोमेश्वर, निरंजन, शशिकान्त, यशवन्त सिह, योगेन्द्र नाथ मिश्र आदि युवकों द्वारा पूर्ण करती है। हर युवक से शारीरिक सुख प्राप्त करने के बाद उसे लगने लगता है कि वह गलती कर रही है और महसूस करती है कि आत्मा से वह प्रोफेसर की है। सोमेश्वर से प्रथम शारीरिक सम्पर्क स्थापित होने के बाद आत्म ग्लानि से पीड़ित होकर रेखा कहती है-''यह क्या कर डाला उसने। उसकी सारी पवित्रता नष्ट हो गयी। उसने अपने देवता, अपने आराध्य के साथ कितना बडा विश्वासघात कर डाला।''[1] रेखा अपनी गलती पर पश्चाताप करती है कि भविष्य में वह ऐसी गलती कभी नहीं करेगी, किन्तु अपने निश्चय पर अडिग नहीं रह पाती। मसूरी में निरंजन कपूर से उसका शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होता है जिसकी जानकारी प्रोफेसर को हो जाती है। रेखा के चरित्र के प्रति प्रभाशकर का जो सन्देह उत्पन्न होता है वही रेखा के प्रति मारपीट और गाली-गलौज में बदलता हुआ, प्रभाशंकर को बुढापे मे की गयी शादी की भूल का एहसास करा देता है। रेखा चाहती है कि शारीरिक भूख अन्य से मिटाती रहे और प्रेम प्रभाशंकर से करती रहे किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिल पाती है। डा0 योगेन्द्र नाथ का दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर बनकर आने पर वह उससे भी अनैतिक सम्बन्ध कायम कर लेती है, विश्वविद्यालय में चर्चा आम हो जाती है, इस घटना से प्रभाशंकर का मानसिक तनाव में हार्ट अटैक हो जाता है। वह रेखा और योगेन्द्र के प्रति हिसा से भर उठ्ते हैं और योगेन्द्र नाथ को त्यागपत्र दिलवाकर ओसलो विश्वविद्यालय की नौकरी स्वीकृत करने के लिए विवश कर देते हैं। रेखा योगेन्द्र के साथ जाने को तैयार हो उठ्ती है किन्तु बीमार प्रोफेसर को देख उसका मन द्रवित हो उठ्ता है किन्तु क्रोध में आकर प्रोफेसर उससे अपशब्द कहते हैं तो वह अपना सूटकेस लेकर एरोड्रम भागती है किन्तु तब तक योगेन्द्रनाथ का हवाई जहाज रवाना हो चुका होता है। वह वापस लौट्ती है तो देखती है कि इस बीच प्रोफेसर की मृत्यु हो चुकी होती है। इन दो अप्रत्याशित

---

1 रेखा - भगवती चरण वर्मा, आवरण चित्र

झटकों से रेखा पागल होकर कह उठती है–'आप जानते है, नियति ने मेरे साथ बहुत बड़ा खिलवाड़ किया है, लेकिन मैं रेखा हूं–रेखा। सब मिट गये लेकिन यह रेखा–मिट–मिट कर भी यह अमिट है।''[2] इस प्रकार से उपन्यास का शीर्षक भी सार्थक हो जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने यौनकुण्ठाओं से ग्रस्त पात्रों का एक जमघट सा लगा दिया है इसका प्रत्येक पात्र चरित्रहीन और उच्छृखल है किन्तु इतना होने पर भी यह उपन्यास सेक्स की ग्रन्थि का कोई विश्लेषण नहीं कर पाता है। आत्मा और शरीर के धर्म एक हैं या अलग–अलग? एक व्यक्ति क्या कई लोगों से प्रेम कर सकता है? ऐसे अनेक प्रश्न इसमें उठाये गये हैं? वह घर से तय करके निकलती है कि निरंजन से सम्बन्ध तोड़ लेगी किन्तु घर से निकल कर सीधे निरंजन के यहाँ पहुच जाती है। रेखा के आदर्श और उसकी आत्मा पर वासना की विषय के चित्रांकन को लेखक ने अनावश्यक तर्कों में उलझाया है। वर्मा जी रेखा की विश्रृंखल प्रवृत्तियों को परिस्थितियों की गलती सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। ऐसा उनके नियतिवादी जीवन दर्शन के कारण हुआ है।

रेखा हमे ऐसे समाज से परिचित कराती है जो ऊपर से देखने मे बडा सम्मानित और सभ्य लगता है किन्तु जिसका भीतरी रूप अत्यन्त कुरूप लगता है। दार्शनिक होने के कारण प्रभाशंकर और योगेन्द्र नाथ के चरित्र में थोड़ी गरिमा अवश्य है अन्यथा अन्य पात्रों में छिछ्लापन, काम विकृतियां और चारित्रिक कमजोरिया व्याप्त हैं। किन्तु लेखक ने प्रेम के आत्मिक पक्ष की गरिमा को कम नहीं किया है। शारीरिक भूख, काम–कुण्ठा का परिणाम है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। नारी की गरिमा को भी वर्मा जी ने कम नहीं होने दिया है। रत्ना चावला को छोड़कर ज्ञानवती शीरी चावला देव की किसी भी नारी के प्रति हमारे मन में

---

1 स
2 रेखा–भगवती चरण वर्मा, पेज–288

घृणा नहीं उत्पन्न होती। प्रभाशकर से आत्मिक सम्बन्ध अनुभव करने के कारण ही रेखा अपने चारित्रिक पतन पर पश्चाताप करती है।

पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण वर्मा ने बड़े स्वाभाविक एव मनोवैज्ञानिक ढ्ग से किया है। उपन्यास की भाषा अभिव्यंजनापूर्ण, अभिव्यक्ति की अपार क्षमता है। कहीं भी नीरसता नहीं आने पायी है। ''उपन्यास की भाषा शैली इतनी अच्छी बन पड़ी है कि इसके विषयगत दोष छिप गये हैं। उपन्यास का अन्त बड़ा ही कारूणिक है।''[1]

इस प्रकार से सतरंगी नागपाश और आत्मा के उत्तरदायी संयम के बीच हिलोरे खाती हुई रेखा एक दुर्घटना की तरह है, जिसके लिए एक ओर उसका भावुक मन जिम्मेदार है, तो दूसरी ओर पुरूष की अक्षम्य 'कमजोरी' भी, जिसे समाज 'स्वाभाविक' कहकर बचना चाहता है। वस्तुत रेखा जैसी युवती के बहाने नारी की यह दारूण कथा पाठकों के मन को गहरे तक झकझोर जाती है।''[1]

सीधी-सच्ची बातें :

भगवती चरण वर्मा का यह उपन्यास विशुद्ध रूप से एक राजनैतिक उपन्यास है जो 1968 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास मे 1939 से लेकर 1948 ई0 तक के भारत की राजनैतिक गतिविधियों का जिसमें त्रिपुरी कांग्रेस से लेकर महात्मा गांधी के मृत्यु तक की घटनाएं है। इस उपन्यास में जनमानस की प्रतिक्रिया को प्रमुख रूप से व्यक्त किया गया है। वर्मा जी के 'भूले विसरे चित्र' 'टेढेमेढे रास्ते' की परम्परा की अगली कडी के रूप में 'सीधी सच्ची बातें' महत्वपूर्ण उपन्यास है। जो सन् 1939-1948 ई0 के मध्य के भारत राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डालता है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने कांग्रेस और उसके कार्यकर्ता और उसके कार्यकर्ताओं के वाद-विवाद, समाजवाद और उनके अनुयायियों की निष्क्रियता, साम्यवाद और

1 हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डा0 त्रिभुवनसिह, पेज 413

उसकी कारगुजारियों को सीधे साधे रूप में चित्रित किया है।

इस उपन्यास के कथानक का ताना बाना गाँव के रहने वाले इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शोध छात्र जगत प्रकाश को केन्द्र बनाकर बुना गया है। जगत प्रकाश की शुरू मे राजनीति में कोई रूचि नहीं किन्तु अपने मित्र कमलाकान्त के आग्रह पर वह त्रिपुरी कांग्रेस अधिवेशन को देखने जाता है। वहां पर राजनीति से प्रतिबद्ध कुछ अत्यन्त समृद्ध लोगों से उसकी मित्रता भी हो जाती है। जगत प्रकाश को शुरू मे इन समृद्ध लोगो के साथ रहने में संकोच होता था, लेकिन उसके मित्र कमलाकान्त ने उसके इस संकोच को दूर कर दिया–"हम लोग उस समाज की व्यवस्था के समर्थक हैं जिसमें ऊंच–नीच की भावना न हो, जहा सम्पन्नता का गर्व न हो, अभाव की कुण्ठा न हो। मेरे ये साथी, इन्हें तुमने देखा है। कहीं भी अलगाव की भावना दिखी इन लोगों में तुम्हे? हम सब इस देश में समाजवादी व्यवस्था कायम करना चाहते हैं, हम सब वर्गभेद मिटाना चाहते हैं तुम्हें इन लोगों से मिलने जुलने में संकोच नहीं होना चाहिए।"[1] जगत प्रकाश के ये सभी साथी युवा पीढ़ी के उच्च शिक्षा प्राप्त लोग हैं। जब ये एकत्रित होते हैं तो राजनीति, धर्म और अर्थ पर खुले दिल से चर्चा करते हैं। इन सभी चरित्रों के माध्यम से वर्मा जी देश की अनेक समस्याओं पर अपने विचारो के पक्ष विपक्ष को प्रस्तुत करते हैं। इन सभी साथियों में जसवंत कपूर, त्रिभुवन मेहता, कुलुसुम कावसजी तथा वेन आदि का परिचय उसके जीवन की गतिविधि को बदल देता है। ये सभी लोग साम्यवादी विचारधारा के हैं किन्तु इनके लिए कम्युनिज्म महज एक शौक की चीज है। इन लोगों से मित्रता के बाद से लेकर अंत तक जगत प्रकाश अपने लक्ष्य से हट कर इधर–उधर भटकता है। बीमार कुलुसुम को पहुचाने वह बम्बई जाता है। वहां पर उसके गांव के ही जमील काका से मुलाकात होती है जो बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी का सक्रिय कार्यकर्ता है। जमील के द्वारा जगत प्रकाश पर भी साम्यवाद का प्रभाव पडता है।

---

1 रेखा, भगवती चरण वर्मा, आवरण

जगत प्रकाश रिसर्च पूरा करके विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो जाता है। वशगोपाल नामक वकील अपनी बेटी सुषमा के साथ उसका विवाह करना चाहता है लेकिन जगत प्रकाश की सगाई यमुना के साथ हो चुकी होती है इसलिए वह इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। वशगोपाल के षडयन्त्र से वह कम्युनिस्ट होने के आरोप मे गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस सदमे से वह निष्ठावान कम्युनिष्ट बन जाता है। वहा से छूटने पर पता चलता है कि मंगेतर यमुना का विवाह रूपलाल से तथा कुलसुम का विवाह परवेज से हो जाता है तो इस पर जीवन में कटुता समा जाती है और सेना मे भर्ती होकर कमीशन प्राप्त करके द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी के विरूद्ध लड़ने के लिए मित्र राष्ट्रो के मोर्चे पर चला जाता है। युद्ध की विभीषिका वह नहीं झेल पाता है और सेना से मुक्ति प्राप्त करता है। उसके जीवन की मात्र एक सहारा उसकी बहन आन्दोलन के समय फौजियों की गोलियो का शिकार हो जाती है। वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे फिर से नौकरी करने लगा। कुलसुम के निमन्त्रण पर नौकरी छोड़कर बम्बई चला जाता है। अन्त मे वह कुलसुम के प्यार और पैसों के सहारे दुनिया की गतिविधियों में उलझा रहता है। भारत और पाकिस्तान के विभाजन पर जमील काका भी पाकिस्तान चले जाते हैं तब वह अपने को नितान्त अकेला महसूस करने लगता है। गांधी जी की हत्या के सदमे से उबर नहीं पाता है और यह दुखद समाचार सुनते ही अहिसा और साम्यवाद पर अडिग रहने वाला जगत प्रकाश हृदयगति रूक जाने से समाप्त हो जाता है और कुलसुम उसकी नब्ज देखती हुई कह उठती है-''गया-महात्मा के पीछे-पीछे एक फरिश्ता भी गया और उसकी आखो से दो आँसू टपक पड़े।''[1]

इस कथानक के साथ ही जगत प्रकाश के आस-पास और भी कहानियां इसमें हैं मालती और त्रिभुवन, शिव दुलारी और सुखलाला, माता प्रसाद और यमुना, शायर शैलाब की कहानिया भी समानान्तर चलती रहती है, किन्तु वे

---

1 सीधी-सच्ची बातें, भगवतीचरण वर्मा, पेज 564

निरर्थक नहीं हैं, वे समाज की विकृतियों को प्रकट करती हैं। जो जगत प्रकाश के हृदय को झकझोरने का कार्य करती है। कथा संगठन में त्रुटि तो कम दिखती है लेकिन राजनैतिक विवरण आवश्यकता से अधिक है। 1939 से 1948 तक घटनाओ का जिक्र और उन पर वाद-विवाद ही उपन्यास में भरा पड़ा है। हिसा-अहिसा, हिन्दू-मुसलमान, कम्युनिज्म और काग्रेसी आन्दोलन का विश्लेषण तथा तिथि क्रम से तथ्य सम्बन्धी विवरण उपन्यास में इतना अधिक है कि कई बार लगता है कि हम उपन्यास नहीं इतिहास पढ रहे हैं।

वर्मा जी के इन पात्रों में आत्म विश्वास की कमी दिखती है क्योंकि इनके अधिवेशनो में भाग लेना, बहस करना, विभिन्न मुद्दों पर आम राय कायम नहीं हो पाना से ऐसा लगता है कि ये विचारधारा से प्रेरित होकर बहस नहीं कर रहे हैं, बहस के लिए बहस कर रहे हैं। जो पात्र गाधी को देवता कहता है वही गाधी को मतलब परस्त कहता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

वर्माजी का यह उपन्यास राजनीतिक चेतना का विकृत रूप ही नहीं प्रस्तुत करता वरन् सामाजिक विकृति और व्यक्ति की कुण्ठा को भी प्रकट करता है। मालती, त्रिभुवन, सुषमा उच्च मध्यवर्ग की विकृति ही प्रकट करते हैं। कांग्रेस के नाम पर अगनू शाह का अर्थ संचय, रूपलाल की धन लिप्सा, वंश गोपाल की स्वार्थपरता, शिक्षण क्षेत्र की अनैतिकता उच्च मध्यम वर्ग की कुंठाएँ और प्रेम विकृतिया जिसके भाग हैं।

जगत प्रकाश जो महात्मा गांधी और उनकी अहिंसा पर अटूट विश्वास करता था वही अब साम्यवाद पर गहरी आस्था का अनुभव करने लगता है। यह राजनीति उसके लिए खिलवाड़ नहीं बन पाती क्योंकि उसे जीवित रहने के लिए सघर्ष करना पडता है। उसको विश्वास हो जाता है कि साम्यवाद मे वह क्षमता है जो दुनियां को एक बना सकता है। दुनियां के दु ख दैन्य का एक ही इलाज है-समाजवाद। वह उस अहिंसा पर विश्वास नहीं करता जो मानव मे कायरता एव

नपुंसकता भर दे, वह उसी अहिंसा पर विश्वास करता है जो मानव कल्याण के लिए आवश्यक हो।

प्रेम के बदले जगत प्रकाश को घोर निराशा और अपमान मिलता है लेकिन इससे वह निष्क्रिय और उदासीन नहीं होता है, एक बार टूट अवश्य जाता है तथा एक ही झटके में अपनी कमजोरियो पर विजय प्राप्त कर अपने कर्म क्षेत्र में कूद पडता है। 'सीधी सच्ची बातें' में लेखक में अनास्था का भाव तीव्रतम हो गया है। उसकी सारी आस्थाए एकदम टूट गयी हैं। उसके अन्दर वाले सारे विश्वास नष्ट हो चुके हैं और इसी अनास्था में उसमें नियति पर विश्वास बढाया है। नियति हमारा जीवन सत्य है, हमारा विश्वास है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वर्मा जी की यह प्रौढावस्था की कृति है। अत. इसमें जीवन के विविध अनुभवो को अधिक यथार्थवादी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है।

सबहिं नचावत रामगोसाई :

वर्मा जी का यह उपन्यास सन् 1970 ई0 में प्रकाशित हुआ था इस उपन्यास में वर्मा जी ने भारत के पूँजीपति, मंत्रिगण और अधिकारियो की कारगुजारियों का व्यंग्यपूर्णशैली में चित्रण किया है।

इस उपन्यास के कथानक को मानव जीवन की तीन प्रमुख कृतियो-बुद्धि (राधेश्याम) जो एक परचूनी से देश का बड़ा उद्योगपति बनता है। भाग्य (जबरसिंह) जो एक कुख्यात डाकू का पोता होते हुए गृहमंत्री बनता है। तीसरा भावना (रामलोचन) जो संस्कारों से परिपूर्ण एवं साहस से लबरेज होकर पुलिस कोतवाल बनता है और गृहमन्त्री से टक्कर लेता है। उपन्यास इन तीनों कथाओं की अन्तिम पीढी चौथे खण्ड की कर्णधार है।

उपन्यास में अलग-अलग तीन कहानियां कही गयी हैं, तीनों एक दूसरे से स्वतन्त्र है। पहली कहानी का नायक राधेश्याम जो बुद्धि का प्रतीक है जो देश के पूँजीपति वर्ग की निरन्तर बढ़ती हुई हराम खोरी की कहानी है। लालाघासीराम

किरानी थे, कम तौलना तथा डण्डीमारना ही उनके बेईमानी की सीमा थी किन्तु उनका पुत्र मेवालाल जालसाजी के बल पर पिता की हजारो की सम्पत्ति लाखो मे बदल देता है। मेवालाल अपने पुत्र राधेश्याम को उच्च शिक्षा दिलाता है और यहीं राधेश्याम अपनी बुद्धि के बल पर देश का भारी उद्योगपति बन जाता है। बेईमानी, भ्रष्टाचारी, जाल साजी, मिलावट, धोखाधड़ी के द्वारा वह उन्नति करता हुआ उद्योगपति बन जाता है और अपने पैसों के बल पर जबरसिह जैसे मत्रियो की आत्मा तक को खरीदता है।

दूसरे खण्ड में भाग्य जो जबरसिंह का प्रतीक है, एक मंत्री है उनके परिवार की कहानी है। भाग्य की ऐसी अनुकम्पा कि डाकू नाहर सिंह डाके की रकम से उत्तर प्रदेश मे एक छोटी सी जायदाद खरीद कर कुँवर नाहर सिंह राठौर बन जाता है उसके बेटे केहर सिंह का विवाह बघेल ठाकुर रघुराज सिंह की बहन से होता है जिससे उसके खानदान पर उच्च कुलीन ठाकुर होने का सिम्बल लग जाता है। केहर सिंह का उजड्ड एवं अक्खड़ बेटा जबरसिंह राजनीति में सफल होता है। राजा गम्भीर सिंह की लडकी धनवंत कुवेर के साथ इसका विवाह हो जाता है। अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शों में प्रवीण तथा भाग्य के बदौलत दस बीघे की खेती के साथ ऊपर उठता हुआ जबर सिंह प्रदेश का गृहमन्त्री बन जाता है।

तीसरे खण्ड में भावना का प्रतीक रामलोचन पाण्डेय है। पण्डित राम समुझ पाण्डेय राजा पृथ्वीपाल सिंह का विवाह ऐंग्लो इण्डियन लड़की से करवा कर जायदाद का तोहफा प्राप्त करते हैं और राजा की पदवी प्राप्त करते हैं किन्तु समय के साथ ही राज्य की ताल्लुकेदारी समाप्त हो जाती है और जमींदारी उन्मूलन के कारण रामलोचन पाण्डेय को अपने पूर्वजों की पायी सामाजिक प्रतिष्ठा से छिपकर नौकरी करनी पड़ती है। राजा महीपाल सिंह के माध्यम से रामलोचन का परिचय जबरसिंह से होता है और उसे पुलिस विभाग में नौकरी मिल जाती है। भावना का प्रतीक रामलोचन ईमानदारी और सिद्धान्त प्रियता जैसे गुणों से भरे हुए वह भ्रष्ट समाज में कानून का सच्चा रक्षक बनने का प्रयत्न करता है।

यह बुद्धि का कौशल, भाग्य की विडम्बना और भावना की उपलब्धि है कि एक परचूनी का पोता सफल उद्योग पति बन बैठा है एक डाकू का पोता गृहमन्त्री बन बैठा, एक ब्राह्मण का पोता पुलिस कोतवाल बन कर भी मन की पुकार की उपेक्षा नहीं कर पाता। इन तीनों कहानियों के माध्यम से उपन्यासकार ने भारतीय समाज, राजनीति तथा आर्थिक पहलुओ का यथार्थ चित्रण किया है। इसके पश्चात वर्मा जी ने तीनो कथाओं की अन्तिम पीढी चौथे खण्ड की कर्णधार के रूप में प्रस्तुत किया है।

चौथे खण्ड के इस 'उठा पटक' को जिसमें उपन्यासकार ने यह साबित करने का प्रयास किया है कि बुद्धि और भाग्य मिल कर उन्नति तो कर सकते हैं किन्तु भ्रष्ट भी हो सकते हैं किन्तु भावना तो अमूल्य है, उसे कोई खरीद नहीं सकता है।

चौथे खण्ड में तीनों कहानियो के नायक एक साथ उपस्थित होते हैं जिसमे उपन्यासकार यह दिखाने का प्रयास करता है कि एक को धन कमाने की लालसा है, दूसरे को अपनी सत्ता कायम करने की चिंता है, तीसरे को रोजीरोटी की फिक्र है। एक दूसरे के अपने कार्यों के द्वारा एक दूसरे के सम्पर्क में लाता है। तीनों को एक दूसरे की आवश्यकता होती है फिर भी बुद्धि एवं भाग्य लाख प्रलोभनों का सहारा लेकर भी भावना को खरीद नहीं सकती है क्योंकि भावना पैसों से नहीं खरीदी जा सकती। यही कारण है कि रामलोचन अब तक विजयी रहता है। यहीं पर वाह्य एवं आन्तरिक संघर्ष प्रारम्भ होता है और अपनी न्याय बुद्धि से प्रेरित होकर राम लोचन राधेश्याम को जबरसिंह की तमाम कोशिशों के बावजूद भी गिरफ्तार कर लेता है। भ्रष्ट उद्योगपति राधेश्याम अपने ही द्वारा खुदे खन्दक में गिर जाता है।

वहीं पर जबरसिंह को रामलोचन चुनाव में हरवाता है और यह सिद्ध होता है कि अच्छाई पर बुराई की विजय नहीं हो सकती है, जीत अच्छाई की ही होगी। यह 'उठापटक' आन्तरिक मनोभावों, बुद्धि भाग्य और भावना के संघर्ष तथा

दूसरी ओर राजनीति, सामाजिक, आर्थिक वाह्य सघर्षो को व्यक्त करने का एक अच्छा तरीका बना।

मानव मूल्यो के विघटन की कहानी 'सबहि नचावत राम गुसाई' में कही गयी है और इसके प्रभावशाली पन पर आश्चर्य नहीं व्यक्त किया जा सकता है।

उपन्यासकार ने इस कहानी को निरन्तर चलने वाली कहानी माना है। धाधली चलती रहेगी, मत्री बिकते रहेगे, ब्लैक मार्केटिंग का धधा जारी रहेगा। तो फिर यह कहानी खत्म कैसे हो सकती है? वर्मा जी कहते हैं 'कहानी पूरी हो गयी है' लेकन खत्म नहीं हुई। हमेशा यह समाज में प्रासगिक रहेगी।

प्रश्न और मरीचिका :

वर्मा जी का यह उपन्यास सन् 1973 ई0 में प्रकाशित हुआ। वर्मा जी का यह उपन्यास ''टेढेमेढे रास्ते'', 'भूले विसरे चित्र' और 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास की श्रृखला मे लिखा गया एक अन्य उपन्यास है। इसमें तत्कालीन भारत के वृहत चित्र-फलक को चित्रित किया गया है। यह उपन्यास भारतीय जनमानस के मोहभंग को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में स्वातंत्रयोत्तर भारत के जीवन मूल्यो के विघटन की कहानी सीधे और सहज ढंग से प्रस्तुत की गयी है। 'प्रश्न और मरीचिका' में लेखक ने इस प्रश्न का उत्तर जानने का भरसक प्रयत्न किया है कि जो समाज सम्पूर्ण विश्व को चकित कर देने वाले आदर्श-संयुक्त आन्दोलन को लेकर चला था वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के बाद क्यों वहक गया है? यह एक विचारात्मक प्रश्न है।

यह उपन्यास आत्म कथात्मक शैली मे लिखा गया है किन्तु यह एक व्यक्ति अथवा परिवार की कहानी नहीं है। इस उपन्यास का नायक ऊँचे तबके का व्यक्ति है। उपन्यास के पहले खण्ड में नायक उदयराज उपाध्याय के व्यक्तिगत जीवन की कथा है जो आगे के तीनों खण्डों में चित्रित हुई है जो कथानक के आधार पर कार्य करती है। उदयराज बम्बई से शिक्षा पूरी कर आजीविका के लिए

अपने पिता भारत सरकार के वाणिज्य मंत्रालय के ज्वाइंट सेक्रेटरी जयराज उपाध्याय के पास जाता है। राजनीति में प्रवेश करने के इरादे से वह काग्रेसी नेता प0 शिव मोचन शर्मा का सचिव बन जाता है और उन्हीं से तत्कालीन राजनैतिक वातारण से परिचय पाता है। इसी बीच मुसलमान लड़की सुरैया से प्रेम कर बैठता है लेकिन हिन्दू मुसलमान वैमनस्य के कारण उनके प्रेम का मामला भी साम्प्रदायिक रंग ले लेता है तथा साम्प्रदायिकता की आग के कारण अपनी प्रेमिका से अलग होना पड़ता है। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का विस्तार प्रथमखण्ड मे विस्तार से है। उपन्यास कार का मानना है कि देश का साम्प्रदायिक आधार पर बंटवारा नेहरू और जिन्ना के बीच सत्ता का संघर्ष था।

उपन्यास के दूसरे खण्ड में नायक उदयराज 'मार्निंगस्टार' के ख्यातिप्राप्त संवाददाता की हैसियत से अमेरिका से भारत लौटता है तो देखता है कि शर्मा जी जैसे कर्मठ और ईमानदार व्यक्ति को राजनैतिक मंच से हटाकर उनकी पत्नी रूपाशर्मा जैसी धनलोलुप सिद्धान्त विहीन महिला लखपति बन गयी है और राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना प्रभाव जमा रही है तथा देश की राजनीति नेहरू तक सिमट कर रह गयी है। ईमानदार नेहरू के पास बेईमान लोगों का जमघट लगा हुआ है। इन लोगों को चरित्रवान और कर्मठ बनाना, इन्हें स्वाभिमानी एव कर्मठ बनाना, बहुत बड़ी जिम्मेदारी है नेहरू पर, लेकिन इन चालीस करोड आदमियों की जयजयकार से वह आदमी अपनी जिम्मेदारी भूल गया है। अहम् और मरीचिका में पड़कर वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सबसे महान बनने का सपना देखने लगा है।[1]

वहीं पर मुहम्मद शफी जैसे तपे स्वतन्त्रता सेनानी देख रहे हैं कि इन चापलूसों के जमघट मे भाषा और धार्मिक कट्टरता बढती जा रही है, धनवान जाल साजी से धनवान हो रहा है। यह देख कर मुहम्मद शफी कुंठित हो जाते हैं।

---

1 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 135

आई0सी0एस0 आफिसर विश्वनाथ मदान की पुत्री प्रमिला से उदयराज का विवाह हो जाता है लेकिन प्रमिला नये जमाने की शिक्षित औरत होने के बाद भी परम्परागत सेवा परायण पत्नी है। विवाह के बाद अपने पिता और श्वसुर के प्रभाव से उदयराज को सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

तीसरे खण्ड में स्वतन्त्र भारत के बढ़ते हुए राजनैतिक सम्बन्धों तथा विरोधी पार्टियो के नेताओं की कुण्ठाओं को भी कथानक अपने में समेट लेता है। प्रेम मदान, मंजीत तथा मेजर अमरजीत और कान्ता की कथाओं के माध्यम से उच्च वर्ग की खोखली नैतिकता तथा धन लोलुपता सामने आती है।

हर तरह की आजादी मिली है लूटने की, अमीर बनने की, बेईमानी करने की, हर तरह की आजादी। तब कुछ इने-गिने अंग्रेजों के अधीन यह देश था, वह लोग खुद तो लूटते थे लेकिन आज हिन्दुस्तान का हर एक आदमी अपने को इस देश का मालिक समझता है, लूट में एक होड़ सी लग गयी है।''[1]

इस कथा में बिन्देश्वरी का चरित्र मूल कथा में कुछ सहायता नहीं करती यदि उसे राजनैतिक उठा-पटक की कहानी भी मान लिया जाए तो उसका और उदयराज का शारीरिक सम्बन्ध कहानी में थोपा हुआ सा लगता है। तीसरे और चौथे खण्ड तक चलने वाला लता और अंजनी कुमार का प्रकरण उपयोगी होने के बाद भी अपने भीतर छिपे सामाजिक सन्दर्भ को पूर्ण सफलता से उजागर नहीं कर सकता है। अंजनी कुमार के माध्यम से यह बात सामने आती है कि अयोग्य और ऊपरी प्रदर्शन में सफल व्यक्ति किस तरह स्वतन्त्र भारत में सरकारी क्षेत्रों मे अपना प्रभाव जमा लेते हैं।

अन्तिम खण्ड में सभी कथाओं को समेट कर मुहम्मद शफी और केशरवाई, भोलाराम, अंजनी कुमार आदि सभी की कथाओं को निचोडकर लेखक सामाजिक सन्दर्भ और दार्शनिक सन्दर्भ का अर्थ निकालने की कोशिश करता है। पतन के गर्त मे आकंठ डूबे समाज की किकर्तव्यविमूढता और वेबसी का चित्र

---

1 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-513

उपन्यास के अन्त में साकार हो जाता है। प्रजातान्त्रिक प्रणाली का भ्रष्ट रूप उपन्यास में सामने आता है। विद्यानाथ कहता है-उदय यह मतदान करने वाली जनता बेदिमाग, अपढ और भुलाओ मे भटकने वाले लोगों का एक समुदाय भर है। ये जितने चुनाव हैं सिद्धान्तों पर नहीं लड़े जाते। बेतहाशा रूपया खर्च होता है चुनावो पर-चाँदी का जूता चलता है और असली जूता भी चलता है। वोटो को खरीदने के लिए शराब भी पिलाई जाती है, झूठे नारों और झूठे वादों पर लोगों को गुमराह किया जाता है। कभी-कभी लाठी और जूतों का भी सहारा लेना होता है। मैंने भी यह सब किया है, तब जाकर कहीं मैंने चुनाव जीता है।''[1]

1962 के चीनी आक्रमण से उत्पन्न कुंठा और निराशा में डूबने के बाद भी देश वैसा का वैसा ही रह गया-''न लूटने वालों में किसी तरह की अंर्तनाद या विद्रोह नजर आ रहा था। रक्षाफड मे जो बेतहाशा रूपया या गहना मिला था, उसका क्या हुआ और वह कहॉ गया? न किसी ने इसका जवाब मांगा न किसी ने इसका पता दिया।''[2]

वर्मा जी का मानना है कि आदर्श, सुख, न्याय और स्वच्छ समाज की मरीचिका के पीछे व्याकुल होकर दौड़ने वाले ईमानदार और सजग व्यक्ति के सामने केवल प्रश्न रह गये हैं। उत्तरों का अभाव गहरे अवसाद को जन्म देता है। लेखक यह मानता है कि राजनीति, समाज शास्त्र, इतिहास इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते। उपन्यास का अन्त दार्शनिक मुद्रा में होता है और यह यात्रा मैं क्यो कर रहा हूँ? इस यात्रा का उद्‌देश्य क्या है? इस यात्रा की परिणति क्या है? मैं नहीं जानता। प्रश्न ही प्रश्न है और सामने और उत्तर में एक भटकाव; सीमाहीन और अनन्त।

---

2 प्रश्न और मरीचिका-भगवती चरण वर्मा, पेज-513

धुप्पल

भगवती चरण वर्मा की मृत्यु के पश्चात प्रकाशित 'धुप्पल' (1983 ई0) कथाकृति लेखक का लघु आत्म कथात्मक उपन्यास है। इसी कारण से उसका एक विशेष महत्व है। इस कृति में लेखक के निजी जीवनानुभव अनेक व्यक्ति चरित्रों को उकेरते हैं और साथ ही रचनाकार के नियतिवादी दर्शन की भी पुष्टि करते हैं। उपन्यास के रूप मे लिखी गई उनकी लघु आत्मकथा लेखक के चुटीले भाषा-शिल्प मे तथ्यात्मक एवं स्वाभाविक प्रस्तुति से एक युग को मुखरित करती है और सामाजिक परिवेश की दिशा से लेखक के जीवन-सघर्ष की उस कहानी को रूपायित करती है जिसमें मध्य वर्ग के कायस्थ परिवार का एक मातृ-पितृ विहीन बालक प्रगति की सीढिया चढता हुआ अपने उपन्यास भूले-बिसरे चित्र पर पांच हजार का साहित्य-एकेडमी का पुरस्कार प्राप्त करता है और भारत वर्ष की राज्यसभा का एक सम्मानित सदस्य (एम0पी0) भी राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है। उसे 'पद्मभूषण' की उपाधि से भी अलंकृत किया जाता है। लेखक के अनुसार यह सब धुप्पल की ही कृपा का फल है। रचना का प्रारम्भ निम्नलिखित शब्दो से होता है-

"दूर क्यो जाया जाय? मैं अपनी ही बात कह रहा हूँ। मेरी जिन्दगी धुप्पल की जिन्दगी है जिसे दूसरे क्या मैं स्वयं अभी तक नहीं समझ पाया और यह भरोसा भी नहीं है कि मैं इसे कभी समझ पाऊंगा। अनजान लहरो में डूबता-उतराता मैं निरन्तर बह रहा हू और इसकी मुझे कोई शिकायत भी नहीं है। शिकायत की भी जाय तो किसकी और किससे?

आप मुझसे पूंछ सकते हैं कि यह धुप्पल क्या कला है? इसके उत्तर में मैं आपसे प्रश्न करूगा कि आप खुद क्या कला है? मैं जानता हूं कि आप इस पत्र का उत्तर नहीं दे पायेंगे क्योकि आप मेरी ही भाति इस धुप्पल के एक भाग हैं।"[1]

---

1 धुप्पल, भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नयी दिल्ली-10002 प्रथम सस्करण, पेज 1

आगे चलकर लेखक अधिक स्पष्ट शब्दों में कहता है-

"यह जमना और उखडना मेरे हाथ में है कब? मेरे सामने जो कुछ है वह धुप्पल है।"[1]

लेखक के अनुसार आनन्द भी धुप्पल का एक भाग है-

"उपन्यास कहानी का अनूठा रूप है जिसमें अनगिनत कहानिया एक मे बधी होती हैं और वह सब एक जैसी दिखने का मजा देती हैं।"[2]

धुप्पल के बल पर ही लोगों के न चाहने पर भी लेखक, साहित्यकार के रूप में जमा हुआ है। मैं ना आस्तिक हूं न नास्तिक हूं, मैं नियति के हिलकोरे में डूबती, उतराती एक संज्ञा हूं जो कर्ता होने के दावा के क्रम में कर्म के रूप मे स्थित हूँ।"[3]

"अनिवार्य को रोक लेने की सामर्थ्य मुझमें नहीं थी।"[4]

"इतना सब हो गया धुप्पल के रूप में। मेरा कहीं कोई कदम योजनाबद्ध नहीं, और किसका योजनाबद्ध कदम सफल हो पाया है।"[5]

यह धुप्पल ही संस्कृति का एक मात्र सत्य है और इस धुप्पल में मुझे बडा मजा आता है।"

"मैंने व्यक्ति को उसके कर्मों के लिए दोष देना छोड़ दिया है, मनुष्य अपना कर्म जान बूझकर नहीं करता, वह उससे हो जाया करता है। कर्ता तो कोई और है, मैं उसे नियति कहू या शुद्ध रूप में धुप्पल कहूं-एक ही बात है।"[6] जहा तक अनिश्चय का चक्कर है वह तो मेरे जीवन का क्रम ही बन चुका है।[7]

---

1 धुप्पल, पृ0 9
2 धुप्पल, पृ0 11
3 धुप्पल, पृ0 18
4 धुप्पल, पृ0 20
5 धुप्पल, पृ0 36.
6 धुप्पल पृ0 44
7 धुप्पल पृ0 51

हम करना कुछ और चाहते हैं और हो कुछ और जाता है।[1] मैं तो हमेशा से जिसे खर-दिमाग आदमी कहा जाता है वही रहा हूं।''[2] ''भावना बुद्धि के क्षेत्र से ऊपर है।''[3] न जाने कितने उलझाव है मेरे चारों ओर जिनसे केवल एक ही ढंग से निकला जा सकता है वह ढ्ग है धुप्पल को स्वीकार कर लेना।''[4] हम सब भुलावे में ही जीते हैं भुलावे में ही मेरी स्थापना है।''[5] यह सब क्या हो रहा है? क्यो हो रहा है? कैसे हो रहा है? यह सब सोचने विचारने का मौका ही नहीं था। वह सब धुप्पल की कृपा थी।''[6] ''हरामखोरी और कामचोरी तो हम भारतीयों की प्राचीन परम्परा है।''[7] ''मैं यह मानता हूं कि यह युग कविता का नहीं है, लेकिन उपन्यास और कहानी का तो है ही।''[8]

जो कुछ होना है वह हो चुका है, कारण और कार्य की परम्परा मे यह स्थापित है, लेकिन हम उसे जानते भी नहीं, जान भी नहीं सकते। अगर जान जाये तो जिन्दगी जीने की चीज रह जाय।[9]

कहानी खत्म हो रही है यानी अब तक की कहानी। जो मैंने न सोचा था और न चाहा था वह हो गया, और जो हो गया उससे न मुझे किसी तरह का असन्तोष है न क्षोभ। एक तरह की शान्ति है मेरे इर्द-गिर्द।[10] कहने को हम सब कुछ कह डाले लेकिन सत्य बडा कठोर और कुरूप है, और उस कुरूप सत्य से मैं बार-बार अपना सिर टकरा रहा हूँ।''[11]

---

1 धुप्पल पृ0 63
2 धुप्पल पृ0 66
3 धुप्पल पृ0 44
4 धुप्पल पृ0 69
5 धुप्पल पृ0 64
6 धुप्पल पृ0 81
7 धुप्पल पृ0 83
8 धुप्पल पृ0 90
9 धुप्पल पृ0 99
10 धुप्पल पृ0 104
11 धुप्पल पृ0 108

चाणक्य .

सुविख्यात कथाशिल्पी भगवती चरण वर्मा की अंतिम कथाकृति 'चाणक्य' एक जीवनीपरक उपन्यास है। इस कृति में वर्मा जी ने चाणक्य की जीवनी के माध्यम से मगध–साम्राज्य में नंद वंश के पतन का विस्तृत चित्रण किया है। कृति का आरभ मकर सक्रान्ति के अवसर पर महापद्मनद द्वारा आयोजित दानपर्व पर आमत्रित नालन्दा विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य धर्मरक्षित और तक्षशिला के आचार्य विष्णुगुप्त की नाटकीय मुलाकात से होता है, द्वितीय परिच्छेद मे महापद्मनंद के दानपर्व में ही अपमान के पश्चात् आचार्य नन्दवंश के नाश के लिए ही अपनी शिखा बांधने का प्रण करते हैं। आचार्य के अपमान का कारण उनके द्वारा महापद्मनंद और उसके पुत्रो द्वारा प्रजा पर किये गए अत्याचारो की निदां थी। आचार्य विष्णुगुप्त द्वारा चन्द्रगुप्त के सहयोग से प्रारंभ नन्दवश के उन्मूलन का यह महाभियान युगान्तकारी सिद्ध हुआ जिसके द्वारा आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध हुए और मगध–साम्राज्य को चन्द्रगुप्त जैसा सुयोग्य उत्तराधिकारी प्राप्त हुआ।

'चाणक्य' ऐतिहासिक उपन्यास है, भगवतीचरण वर्मा ने इतिहास के विश्लेषण से प्राप्त उस ज्ञान को भी उपन्यास में समाहित किया है जो समाज के लिए आज भी प्रासंगिक है राज्य व्यवस्था में कालान्तर में ऐसी विकृतियां आ जाती हैं जो राज्य को मूल्य–स्तर पर खोखला बनाकर एक विशाल साम्राज्य को नष्ट कर देती है।

भगवतीचरण वर्मा ने चाणक्य के कठोर संघर्षशील जीवन मे उनके सुहृदयता एव सद्गृहस्थता का भी चित्रण किया है अन्यथा चाणक्य के संघर्षपूर्ण जीवन का ही चित्रण प्रमुख रहा है, इस प्रकार उनके चरित्र को वर्मा ने समग्रता प्रदान की है। वस्तुतः प्रत्येक संघर्षशील प्राणी में कोमल भावनाओं का भी समावेश होता है परंतु वह अभिव्यक्त नहीं हो पाता है। इनके साथ–साथ वर्मा जी ने चाणक्य के सकल्पशील, स्वाभिमानी दूर द्रष्टा और अप्रतिम कूटनीतिक चरित्र को भी चित्रित किया है।

इस प्रकार यह कृति जीवनी इतिहास और उपन्यास का अद्भुत मिश्रण है जो पाठक को साहित्य–पाठन का सम्पूर्ण आनन्द प्रदान करता है।

अध्याय–3

आधुनिकता बोध–एक स्पष्टीकरण

इतिहास विच्छेद की सहवर्ती स्थिति ने आधुनिक बोध का आरम्भ किया सूत्र रूप में आधुनिकता' समाज सस्कृति की समूहालकनात्मक विचार विधि माना जा सकता है–जो विशिष्टतम राष्ट्रीय संस्कृति में जन्मती है। इसका प्रतिरोपण नहीं होता। इसमें अपेंक्षाकृत आधुनीकृत होते हुए समाज तथा सामाजिक सघर्षो के द्वारा, बदले हुए सामाजिक वर्गो की कई विचार दशाएं मिलती हैं। जो इस तरह से सामाजिक दशा का प्रतिविम्ब,, सामाजिक यथार्थता की सामाजिक रचना। प्रत्येक सामाजिक वर्ग की सांस्कृतिक स्थिति अन्तर्विरोध तथा सत्ताधारी वर्ग समूहों की विचार धारात्मक छायाएं। उक्त चहुमुखी अवयव आधुनिकता की धारणा प्रस्तुत करते हैं।

कहा जाता है कि 'आधुनिकता समय का नहीं बल्कि दृष्टिकोण का प्रश्न है। साधारण से साधारण व्यक्ति के लिए यह थोड़ी चौकाने वाली बात हो सकती है। अत बुद्धि में यह बात सरलता से नहीं उतरती। साधारण व्यवहार में आधुनिक साहित्य, आधुनिक कला, आधुनिक डिजाइन, आधुनिक चित्र, आधुनिक शिल्प जैसे प्रयोग कहने वाले की मानसिकता को प्राय समय से ही जोडते हैं, दृष्टिकोण से नही अतएव विशेषण से विशेष्य बनते ही इसमें कौन सी विशेषता उत्पन्न हो जाती है, इसे सूक्ष्मता से पकड़ने की अपेक्षा है।

पहली बात जो आसानी से समझी जा सके वह यह कि जब किसी विचार अथवा आदर्श को आधुनिकता से सम्बद्ध करते हैं तो हमें स्वय अनुभव होता है कि यह विचार और आदर्श तो बहुत ही पुराना है। जैसे 1975 ई0 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित करना। इसमें तो नारी की स्वतन्त्रता और अधिकार की बातें उठाई गई। यदि यह कोई कहना चाहे कि 1975 ई0 का वर्ष नारियों

के लिए आधुनिकता की मांग थी तो स्पष्ट ही इसे नकारा जा सकता है कारण यह कि जीवन मे स्त्री-पुरुष की साझेदारी और समझौते की बात बहुत पुरानी है।

तो सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि आधुनिकता क्या है? अत आधुनिकता को परिभाषित करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि "वह आदर्श की अन्तरात्मा से संशक्त है और उस आदर्श के प्राप्ति के साधन सामयिक सामाजिक सदर्भो और राजनीतिक परिस्थितियों से जुड़े हुए हैं यदि विचार विशेष इस चौखटे में उपयुक्त बैठे तब तो उसे आधुनिकता कहा जायेगा अन्यथा नहीं। यह तथ्य सभी प्रकार की प्रगति और अतीत की पुनर्व्याख्या को अन्तर्भुक्त करता है। जहां तक समय का सम्बन्ध है। आधुनिकता अल्पकालिक होती है क्योंकि आधुनिकता की आत्मा एक लम्बे समय तक चलती रहती है। जब तक कि लोग आधुनिकता के उच्चतम विन्दु का स्पर्श न कर लें।"[1] अर्थत्ता की दृष्टि से हम देखें तो महात्मागांधी का नैतिक शक्ति सम्बन्धी विचार उस समय तक सर्वोपरि है जब तक सारी मानवता पशुता से ऊपर उठकर सभ्य न हो जाय। गांधी प्रगति के राही आधुनिकता से हमारा कुछ ऐसा ही प्रयोजन है। यदि हम आधुनिक को प्राचीन से तुलना करते हैं तो हम पाते हैं कि आधुनिक प्राचीन की अपेक्षा अधिक विकसित स्थिति है। लेकिन आधुनिकता का सम्बन्ध हमारे दृष्टिकोण, विचार से हैं। मनुष्य के विचारो में अधिकांशत स्थिरता पायी जाती है। यहूदी सोचा करते थे कि मनुष्य का उद्देश्य ईश्वर की इच्छा के अनुसार कार्य करना है। ग्रीक सोचते थे कि मानव प्रकृति की उदात्तता उसका लक्ष्य है। मनुष्य की आध्यात्मपरक समस्याए हमेशा-हमेशा एक रही है। मानवता अपनी वेश भूषा तो बदलती है किन्तु उसकी प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं है। विज्ञान, टेकनॉलाजी, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि में बदलाव लक्षित किया जा सकता है किन्तु आदर्शो और मूल्यों में यथा स्थिति रहती है किन्तु आदर्शों और मूल्यों के विषय में हमारी समझदारी, हमारे विचार, दृष्टिकोण अवश्य बदलाता है और विकसित समझ द्वारा

---

1 अभिनव हिन्दी निबन्ध, डा० जगदीश प्रसाद जीवास्तव, भारत बुक डिपो इला०, प्रथम स० 1977-1978 पेज-1

हम श्रेष्ठतर परिणामों तक पहुँच जाते हैं। वर्तमानयुग में उन निष्कर्षों की स्वीकृति ही आधुनिकता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि आधुनिक शब्द के दो अर्थ है, एक सामान्य जिसमें लचीलापन है और जो समय सापेक्ष है वर्तमान हमेशा अपने पूर्ववर्ती समय की अपेक्षा आधुनिक कहा जाता है। दूसरा इसका विशिष्ट अर्थ है। अपने विशिष्ट अर्थ में इसे अनवरत गतिमान प्रक्रिया कहा जा सकता है। इस सतत प्रक्रिया के द्वारा ही वहाँ पहुँचा जा सकता हैं अतीत की ओर लौटने की बजाय आगे की तरफ कदम बढाना ही आधुनिकता है। कुछ वैसे ही समय चलता है, कहीं ठहरता नहीं। यह सही है कि मनुष्य अपने समझने के लिए काल को अतीत, वर्तमान तथा आगत में बाँट लिया है लेकिन काल कहीं कटता नहीं, कहीं टूटता नहीं। वह एक सतत् प्रक्रिया है। मनुष्य कोई पल ठहरा नहीं सकता और न व्यतीत पल को लौटा सकता है। इस दृष्टि से वर्तमान जैसा कुछ भी नहीं। वर्तमान फिसलने वाला है, अनवरत है। वह पकड में नहीं आता अतीत और आगत की चल छल सन्धि रेखा को वर्तमान कह सकते हैं। ऐसी ही कुछ बौद्धिक संचेतना आधुनिकता रेखा को वर्तमान कह सकते है। ऐसी ही कुछ वौकि संचेतना आधुनिकता है। तात्पर्य यह कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लगातार बिना रुके चलते रहना आधुनिकता है। इस गत्यात्मकता की प्रक्रिया में सजग रहना अथवा स्वचेतना आधुनिकता की अनिवार्य शर्त है।

आधुनिकता मुनष्य के आगे पीछे, दायें-वायें, ऊपर-नीचे सभी ओर विद्यमान है। इसके अन्तर्गत उपजना, विकसना, मिटना, पाना, खोना सभी कुछ है। मनुष्य न सब से प्रमावित होता है और फिर उसे अपने दृष्टिकोण से अपने स्वचेतन से अभिव्यक्ति देता है। इस अभिव्यंजना मे एक अनिर्वनीय सुख है भले ही अभिव्यक्ति में सुख-दुख, राग-द्वेष, शान्ति-संघर्ष कुछ भी हो। बढते रहने की यह क्रिया शीलता समाज, राजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था, साहित्य, कला, विज्ञान टेकनॉलाजी आदि सभी क्षेत्रों में उजागर होती रहती है। जिस प्रकार प्रकृति अपने को नित्य नई ससधज, नई भंगिमा के साथ प्रस्तुत करती है, उसी प्रकार

आधुनिकता की प्रमुख विशेषता दृष्टिकोण की नव्यता है।

सामाजिक विज्ञान और समाज शास्त्र वस्तु परक यर्थाथता का परीक्षण करते हैं और यह परीक्षण कोई ऐकातिक कार्य न होकर सास्कृति मूल्यो से रजित होता है। अत सामूहिक अवचेतन से अभिशाप केवल विशिष्ट सामाजिक अवस्था में ही चेतन होते हैं। एक ही सामाजिक अवस्था में विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों के कारण एक ही सास्कृतिक मूल्य एक किसान द्वारा एक कारीगर द्वारा, एक व्यापारी द्वारा, एक प्रशासक द्वारा तथा एक बुद्धजीवी द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रत्यक्षीकृत होता हैं। इस आधार पर आधुनिकता को किसी व्यक्ति या वर्ग के तात्कालिक बोध से बहुत व्यापक पूरी राष्ट्रीय संस्कृति की बहुधर्मी अभिव्यंजना तथा समाज एवं इतिहास की संयुक्त प्रगतिधर्मी कह सकते हैं। अत जीवन के विभिन्न सन्दर्भ व्याख्या के संदर्भो को परिवर्तित कर देते हैं। अत ज्ञान और अस्तित्व की परिभाषा करने में ऐतिहासिक समाज-शास्त्रीय सन्दर्भ अनिवार्य है ये सन्दर्भ चिन्तन और कर्म की कसौटी तय करते हैं। अत· विचार धारा की रचना समसामयिक परिस्थितियो के अनुसार ही करते हैं। तथा ज्ञान की प्रयोगिक स्थितियो का भी लेखा जोखा भी करते हैं।

इसके साथ-साथ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिक समाज मे केवल बुद्धिजीवी ही आधुनिकता के ऋषि तथा मुनि नहीं हैं वहुधा उनके मध्यवर्गीय अन्तर्विरोध है और वे सम्पूर्ण यथार्थता का आत्मनिष्ठ ग्रहण करने के आदी हैं। मूल बात तो यह है कि सामाजिक प्रक्रिया (सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक परिवर्तन) को केवल सन्दर्भहीन विचारधारात्मक 'अंध विद्रोह' के द्वारा ही नहीं पकड़ना बल्कि इतिहास वाद की प्रक्रिया में दर्शन की बुनियादों पर इन्हें धारण करना। यही आधुनिकता की पहचान का मूल पाठ है।

"आधुनिकता को वह विचार विधि माना जा सकता है जो क्लासिकल दर्शन के इतिहास में विच्छेद कराके नये दर्शन के इतिहास से गुंथती हैं, और दर्शनेतिहास के साथ-साथ सामाजिक इतिहास एवं समाज विज्ञान को भी अनुस्यूत

करने में समर्थ है। इस तरह आधुनिकता आधुनिक बाद कतई नहीं है। आधुनिकता विभाग में उपजे सूक्ष्म दार्शनिक प्रत्ययों पर भी आधारित नहीं है। आधुनिकता तो सामाजिक–सम्बन्धो तथा सामाजिक परिवर्तन की विचार–विधि है। आधुनिकता मानसिक प्रत्ययों तथा सामाजिक रहस्यों को समझने तथा विश्लेषित करने की विधि है ताकि विशेष देश काल के सन्दर्भ में मनुष्य सचेतन एव स्वतत्रा होकर परिवर्तन भी कर सके। आधुनिकता में सिद्धान्त एव व्यवहार का सयोग है जिससे यह अविवेकशील तथा अप्रतिबद्ध भी नहीं है प्रत्युत दार्शनिक एव कर्म निर्देशिक है।''[1] अत मनुष्य द्वारा समग्र मानवता के प्रति स्वचेतन दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है।

आखिर सवाल पैदा होता है कि साहित्य में आधुनिकता कैसी होती है। साहित्य मे आधुनिकता तब उपजती है, जब साहित्यकार इस अनवरत गत्यात्मकता को रचनात्मक स्तर पर अभिव्यंजित करता है। रचनात्मक धतातल पर एक ओर तो अनुभव का ताजगी पन होता है वहीं दूसरी तरफ प्रस्तुति का नया कोण तथा अभिनवता साहित्य से आधुनिकता को रूपापित करती है। यह आधुनिकता किसी अनुकरण के माध्यम और किसी दूसरे की रचना को तोड़–मरोड कर प्रस्तुत करने मे नहीं आ सकती क्यों कि वह स्वत्व के दृष्टिकोण से ही उद्भूत होती है। उदाहरण के लिए हम अमर राम कथा को ले, तो देखेंगे कि सैकडो हजारो रचनाकारो ने राकथा अपने–अपने ढग से प्रकट किया है, किन्तु वाल्मीकि, तुलसी अथवा मैथिलीशरण में जो बात है, वह विशिष्ट रचनात्मक भावभूमि पर प्रतिष्ठित करती है। कृष्ण कथा के कवियों में ऐसा ही कुछ जयदेव, विद्यापति सूर, मीरा, घनानन्द, रत्नाकर, हरिऔध जैसे कवियों में लक्षित होता है। राम अथवा कृष्ण कथा प्राय एक ही रही है किन्तु इन कवियों की स्वचेतनता कथ्य के प्रति भिन्न–भिन्न स्तरीय रही है। यहां आधुनिकता का रचनाकरों के आधार पर जो दृष्टिकोण है वह स्वचेतना में अनुभूति के कोंण ही अलग–अलग करते हैं उनमे कथा के चलते रहने का बोध रहा है। इस चलते रहने के अनुभव के कारण ये

---

1 आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, रमेश कुन्तल मेघ, पेज–314

रचनाकर एक साथ ही भूत, वर्तमान और भविष्य के मिलन बिन्दु पर अपने को जोड़ने में सामर्थ हो सके थे। दूसरे शब्दों में उनकी दृष्टि में काल, खंडों में कट कर नहीं, एक चल प्रकिया के रूप मे उभरता रहा है। इन रचनाकारो का कृतित्व इसीलिए कालातीत है। वह काल के प्रवाह के साथ सामयिक अथवा युग सन्दर्भ की सीमा का अतिक्रमण करता हुआ अपनी सार्थकता को अल्पाधिक बनाये हुए हैं।

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि आधुनिकता युग सन्दर्भ की व्यजना नहीं है। आधुनिकता में युग सन्दर्भ हो सकता है किन्तु उसके लिये मात्रा युग सन्दर्भ अपर्याप्त है। युग विशेष को आलोकित करने वाली रचना एक सीमा पर पहुँच कर चुक जायेगी। अतएव वह आधुनिकता की असमर्थ अभिव्यक्ति कही जायेगी। रचनाकर मानव-जीवन और चराचर जगत के विराट को स्वचेतना के कैमरे अन्तस के निगेटिव पर अक्स करता है, उतरता हैं और उसके उपरान्त उन चेतना-विम्बो को कुशल शिल्पी की कलात्मकता से रूप देता है और उसकी सृजनात्मकता को नब्यतर रूपों मे भावक के समक्ष उपस्थित कर अपने अन्दर घटित किन्तु जीवन-जगत के अधटित, आकस्मिक, नवीनतम आगत मूल्यो को शाश्वतता के शिखर पर आसीन कर देता है।

जैसा हम जानते हैं कि भावकत्व एक ही रूप में तीन स्तरो पर घट्ता है। भावत्व का तो प्रथम स्तर तो जीवन और जगत में, मानव और मानवेतर चराचर प्रकृति से जुडा होता है। जैसे अन्तरिक्ष यान की संरचना की बात को लें। सर्वप्रथम तो यह यान किसी मष्तिष्क में उपजा और इसके उपजाने की प्रक्रिया उस मष्तिष्क विशेष की अकुलाहट छटपटाहट थी जो उसमें आन्तरिक संघर्ष के रूप मे जनमी। शून्य में लटके हुए चांद सितारो तक पहुँचने या चलकर जाने की प्रेरणा-उन चाँद सितारो को उपलब्ध करने की अदमनीय जिज्ञासा मे अन्तरिक्ष यान के पुर्जे उसके मस्तिष्क में विखेर दिये। उस मस्तिष्क विशेष ने उन कल पुरजों को जोड़ जोड़ कर अन्तरिक्ष यान का रूप दिया। राकेट के माध्यम से यान को अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित किया गया। और यान चल पड़ा आज वह वाइकिंग 1,2 के कलेवर में मगल ग्रह पर जा पहँचा है। इस सम्पूर्ण प्रकिया से यह बोध होता है

कि जब किसी मस्तिष्क विचार ने एक नई दृष्टि दिया, नया दृष्टिकोण दिया तो उस समष्टि कोणो के भावकत्व में एक नवीन सृजनात्मत्कता को जन्म दिया और यही समष्टि का वोध ही आधुनिकता का बोध कराता है। राम कृष्ण ने कभी चन्द्र की कामना या जिज्ञासा की थी तो उन्हें दर्पण के द्वारा चन्द्रबिम्ब दिखाकर सन्तुष्ट कर दिया गया था। परन्तु आज का मानव चांद पर पहुँचकर भी सन्तुष्ट नहीं आज भी मानव के मन मस्तिष्क मे विचार का सघर्ष प्रतिध्वनित होता हुआ। दिखाई पड़ता है। वह अनवरत चलते रहना चाहता है। जो अनुपलब्ध है उसे मुट्ठी मे बन्द करना चाहता है। इस प्रकार अनंत आकाश में उडने और चाँदतारों को पकड़ने की भावना अैर विचार भावकता का पहला स्तर हुआ और अन्तरिक्ष यान की रचना दूसरा स्तर हुआ। जो अब तक असंभावना की कोटि मे था उसे उपलबध करने का सुख आज का मानव कर रहा है। यह भावकता का तीसरा स्तर है। अत इस समग्र शास्वत प्रक्रिया को ही तो आधुनिकता कहा गया है। जिससे हम एक गत्यात्मक नवीनता के अनुभव जन्य भावकता को आधुनिकता मानते हैं।

'साहित्य में इसी अनुभूति की व्यापकता को पात्रों, कवि और पाठ्क-श्रोता की साझेदारी के रूप में व्यायित किया गया है और इसे साधारणीकरण की प्रक्रिया और मूल्य की शाश्वतता के रूप में देखा गया है। इसी प्रकार आधुनकिता काल को काटने वाली रचनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति है।''[1] इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि इस चिरन्तन प्रक्रिया के कोंण मे आधुनकिता का भाव है।

''आधुनिकता राष्ट्रीय सस्कृति की बहुधर्मी अभिव्यंजना वह इतिहास एवं समाज की मिली-जुली प्रगतिशीलता का आयाम है। वह सस्कृति का मूल्य चक्र तथा विभिन्न वर्गो की चिन्तन पद्धतियों का अमूर्त पैटर्न है। पूरे समाज, इतिहास तथा दर्शन का विश्लेषण कर वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि का विकास करना आधुनिकता है।[2] अतः हमे यह कहने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए कि आधुनिकता में पूरी तरह से विवेकशीलता है। विवेकशीलता के साथ प्रतिबद्धता का संयोग होने से

1 अभिनव हिन्दी डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पेज-4
2 हिन्दी उपन्यास डा० सुरेश सिन्हा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद द्वि० स० 1972 पेज-116

मनुष्य में आस्था प्राप्त होती है और वह समाज को सचेतन रूप से परिवर्तित करने की दिशा में प्रयत्नशील होता है। शक्तिपरक मानवीय सृजनात्मकता तथा सार्वभौम मानवीय उत्तर दायित्व का संश्लिष्ट रूप ही आधुनिकता है।

अत यहा यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि आधुनिकता न तो कोई फैशन है, न कोई चमत्कार वह इतिहास और दर्शन से न तो विछिन्न होती है न समाज व्यवस्था से असम्पृक्त न तो वह समाज और मानव की उपेक्षा ही कर सकती।

इस प्रकार से संकटग्रस्त मानव को सामाजिक दर्शन और इतिहास बोध मे ही ही वे आयाम प्राप्त हो सकते हैं जिनमें जीवन की जटिल से जटिल समस्याओ का समाधान ढूंढ सकता है। जिससे वह वर्तमान शंकाओं एवं चिन्ताओं के निवारण की एक इतिहास दृष्टि भी निर्मित करता है यही इतिहास दृष्टि ही आधुनिकता बोध है।

कहीं-कहीं बड़ी भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि गांव से नगर जाना, नगरों से महानगरो तक पहुंचना आधुनिक साज सज्जा का होना, भौतिक सुविधाओ मे जीना, हिप्पी वेषभूषा में घूमना आदि आधुनिकता है दूसरे शब्दो मे वाह्य उपकरणों को भी आधुनिकता समझ लिया जाता है। जब कि वस्तु स्थिति यह नहीं है यह सब तब तो एक टेक्नॉलाजी का विकसित जीवन रूप है जो ठहराव का द्योतक है। यह एक गति के बाद रूक जाती है। फैशन और आधुनिक मे अन्तर होता है। फैशन अल्पजीवी होता है। वह केवल परिवेशन पर ही प्रभाव डालता है क्योकि परिवर्तनमात्र से आधुनिकता नहीं आ सकती है।

"जब व्यक्ति की वृत्तियों एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिवर्तन होता है, तभी आधुनिकता का जन्म होता है। उसके अर्न्तवाह्य में परिवर्तन के साथ ही परिवेश में वास्तविक नया स्वरूप उभरता है। आधुनिकता मूल्यों के प्रति सचेत दृष्टि अवश्य निर्मित करती है, पर यह स्वयं किसी मूल्य के रूप में नहीं स्वीकारी जा सकती। गतिशील चेतना और वृत्ति आधुनिकता है। मूल्यों की गतिशीलता के प्रति सचेत होना आधुनिकता हैं इस गतिशीलता से परिवेश में जिस प्रकार से परिवर्तन

आता है, उससे व्यक्ति में अनुभवों का अभिनव आलोक उत्पन्न होता है और वह सामाजिक सन्दर्भो एव जीवन के विविध आयामों मे नवीन अन्मेष तथा परिवर्तन की सार्थकता खोजता है। उसके अन्वेषण की वह प्रक्रिया ही आधुनिकता कही जायेगी।[1]

वैज्ञानिक और वौद्धिक दृष्टिकोंण से किसी सत्य की व्यर्थता या सार्थकता की व्यापक मानवीय सदर्भो में जाँच कर सकने की समर्थता ही व्यक्ति का अन्तर्विवेक है जो उसे आधुनिक बनाता है। आधुनिकता न तो अतीत जीवी, न तो आगत जीवी। किन्तु उसका अभिप्राय यह भी नही है कि आधुनिकता का सम्बन्ध वर्तमान यथार्थबोध या समसामयिक परिप्रेक्ष्य से है। वह क्षण जीवी भी नहीं है, जैसा कि फैशन के सन्दर्भ में जोडकर भ्रमवश स्वीकार किया जाता है। मानवीय सामर्थ्य और मर्यादा में विश्वास और उसकी प्रतिष्ठा के माध्यम से व्यक्ति की आन्तरिक चेतना को समझने का प्रयत्न आधुनिक दृष्टिकोण है।

मन मस्तिष्क में यह विचार कौंधता है कि आधुनिकता उपन्यास में क्या है ? कैसे, किस तरह है-यहीं पहला सवाल खड़ा हो जाता है आधुनिकता उपन्यास के बाहर भी हो सकती है साहित्य के बाहर भी हो सकती हैं यह एक जीवन बोध है जिसमे प्रश्न चिन्ह की निरन्तरा है, मध्यकालीन और रोमांटिक बोध का अस्वीकार है। इसके साथ दूसरा सवाल जुड़ा है जो यह कि क्या यह मूल्य है या प्रक्रिया। इतना साफ हो चुका है कि यह एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया मे स्वीकृत मूल्य अस्वीकृत हो जाने की गवाही देकर, फिर स्थापित होकर विस्थापित हो जाते हैं। इस आधार पर इसे मूल्यमयता या मूल्यहीनता मे आकना भी असगत जान पड़ता रहा है। एक और सवाल आधुनिकता के बारे मे उठाया गया है कि क्या पाश्चात्य बनाम भारतीय आधुनिकता में किसी मौलिक अन्तर को आंकना सही है ? यह ठीक है कि पाश्चात्य आधुनिकता के आधार पर भारतीय आधुनिकता की पहचान शायद आरोपित होने की गवाही दे सकती है। क्योंकि पाश्चात्य उपन्यासों में जो आधुनिकता की दृष्टि झलकती है। उस आधार पर

---

1 हिन्दी उपन्यास, डा० सुरेश सिनहा, लोक भारती प्रकाशन, द्वि०स० 1972 पेज–117

भारतीय आधुनिकता को परखना बेईमानी साबित होगा जो असंगत जान पड़ता है।

यदि आधुनिकता एक प्रक्रिया है तो इसके एक से अधिक तौर हो सकते है। जिनसे यह गुजर चुकी है। या गुजर रही है। हिन्दी उपन्यासों में या समकालीन हिन्दी उपन्यासों इसे किस तरह पहचाना जाय या किस कसौटी पर इसे परखा जाय? इस पर गहरा चिन्तन पश्चिम में किया गया है। यह चिन्तन कभी उपन्यास मे कभी अन्तर में बोध को लेकर है। तो कभी कला की अमानवीय कारण की समस्या को लेकर, कभी सम्बोधन या बाग्मिता को लेकर तो कभी चरित्र चित्रण की समस्या को लेकर कभी काल की समस्या को लेकर तो कभी देश की समस्या को लेकर। इस तरह का चिन्ता विदेश मे आधार बनाकर किया गया है। जिसका इतिहास लम्बा है और जिसकी परम्परा सम्पन्न है हिन्दी उपन्यास का इतिहास इतना लम्बा नहीं और न इसकी परम्परा इतनी सम्पन्न है अत आधुनिकता का बोध इसमें पश्चिम के आधार पर तलासना इतना सगत नहीं जान पड़ता और इतना इस लिए कि आधुनिकता का बोध नगरीकरण की प्रक्रिया से भी जुड़ा हुआ है। और उपन्यास की विधा किसी विशेष देश या विशेष भाषा तक सीमित न होकर सब देशों और भाषाओं की हो रही है इसी प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया सभी देशों में जारी है।

आज के अमानवीयकरण की परिस्थितियों में आधुनिकता का दावा करने वाले स्वतत्रचेता उपन्यासकार के लिए यह और भी आवश्यक हो जाता है वैयक्तिक स्वतंत्रता की स्थापना, जो व्यक्तिवाद के सन्दंर्भ में न हो, मानव गरिमा का अन्वेषण, धर्म को नवीन वैज्ञानिक दृष्टिबोध से युग की सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर उसके आन्तरिक संस्कारों को प्रतिष्टित करना ही आधुनिकता के सन्दर्भ मे है। जो आज के व्यक्ति और समाज को नये आयाम देते है।''[1] हम देखते हैं कि आज के उपन्यासों में जीवन के प्रति एक अभिनव एव सार्थक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण तथा विज्ञान के नये क्षितिज द्वारा नये उद्घाटन की जो प्रेरणा दृष्टब्य होती है वह आधुनिकता के प्रभाव के

1 हिन्दी उपन्यास, डा० सुरेश सिनहा, लोक भारती प्रकाशन, द्वि०स० 1972 पेज–117

कारण ही है। नये वैज्ञानिक आविष्कारों एव टेक्ननोलाजिकल प्रगति ने जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण परिवर्तित कर दिया है। यदि हम आइन्स्टीन को ले तो देखेगे कि ये वाह्यसत्ता के नवीनआयामों को स्थापित किया था और इसके विपरीत फ्रायड ने व्यक्ति की आन्तरिक सत्ता का उद्घाटन कर एक नया यथार्थ स्पष्ट किया है। इन दोनों ने कला के क्षेत्र में चिन्तन, अनुभूति और अभिव्यक्ति को नया स्वरूप दिया और उसी परिणाम स्वरूप उपन्यासों में जो नया आधुनिक व्यक्ति आया, वह निर्माण से अधिक अन्वेषण की प्रक्रिया में सलग्न है। सामाजिक स्तर पर मार्क्स का योगदान कमतर नहीं। उसने निश्चित रूप से आधुनिक सामाजिक चेतना को एक नई दिशा दी है। मानव व्यक्तित्व की पूर्ण प्रतिष्ठा के सामाजिक दर्शन मे ही आधुनिकता की सही अभिव्यक्ति हो पाती है।

सही मायने में देखा जाय तो आधुनिकता जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण है। वह सभ्यता की व्याख्या है। सभ्य होने के लिए प्रयत्नशील शोषण एवं परम्परा के रथचक्र में पिस रहे व्यक्ति का वह एक प्रकार से संघर्ष है। जीवन के प्रति सवेदनशीलता और सहिष्णुता आधुनिक बोध है जीवन की विसंगतियों के बीच अन्वेषण एव पुनरन्वेषण तथा प्रगति के आयामों को व्यक्ति एव समाज के सन्दर्भो में विश्लेषित करना आधुनिकता है।

"आधुनिकता कभी धारणा के स्तर पर है तो कभी सवेदना के स्तर पर इसी तरह आधुनिकता के बोध को चिन्तन के किसी बाड़े में सीमित करना भी असगत जान पड़ता है। यदि मानव की स्थिति पर अधिक बल दिया गया तो इतिहास के बोध को अधिक महत्व दिया गया है तो आधुनिकता का बोध एक तरह का है और यदि मानव के नियति को मरकज बनाया गया है, इतिहास की निरन्तरता को तोड़ा गया है तो यह दूसरा रूप धारण कर लेता है। इन दोनों मे तनाव और विरोध भी पाया जाता है। आधुनिकता का सवाल इतना सरल भी नही है कि इसे इस तरह के सूत्रों में बाधा जा सके या इसे किसी निश्चित परिभाषा में बाधा जा सके।"[1] क्योकि यह तो बौद्धिक स्वचेतना के अनवरत गतिशीलता का परिणाम है।

---

1 आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, इन्द्रनाथ मदान, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम सस्करण 1973 पेज 175

आधुनिकता एक ऐसी अवधारणा है जो कि कालक्रम में एक वर्ष से दूसरे वर्ष, दूसरे से तीसरे वर्ष मे विकसित होती चलती है। आधुनिक सम्बन्ध निश्चित रूप मे इतिहास और काल से है। जैसा कि हमें विदित है कि यह समयावधि 6 वर्ष का है तो हम यह मानकर चलते है कि 1930 से 2000 ई0 तक का काल हमारे साहित्य में आधुनिकता का है। इस काल में एक ओर व्यक्तिगत स्वतत्रता तो दूसरी ओर समाजवाद साम्यवाद के प्रति आकर्षण - यथा 'इस काल मे रहस्यावद नहीं है, बुद्धिवाद है, तार्किकता है, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में खुलापन है।' असल मे इसका कारण यह रहा है कि पहले की किसी साहित्यिक अवधारणा जैसे स्वच्छंदतावाद आदि की तुलना मे आधुनिकता की अवधारणा में अर्थगत परिवर्तन बहुरूपेण होता रहा है। इसका परिलक्षण हमें इसी से स्पष्ट हो जाता है कि आज के सदर्भ मे कबीर को तो हम आधुनिक मानते हैं लेकिन तुलसी को नहीं, निराला आधुनिक हैं लेकिन जयशंकर प्रसाद नहीं। अत यह इस प्रमाण का द्योतक है कि कोई नया बीज परम्परा को भी नया अर्थ प्रदान कर देता है। वहीं पर आधुनिकता के आगमन पर कबीर की प्रतिष्ठा बढ़ती गयी पर तुलसी एवं सूर की प्रतिष्ठा घटती गयी। हलाकि यदि देखा जाय तो कबीर में सिनिक या रहस्यावादी तत्व कहीं अधिक है। आधुनिकता में निहित शक्ति इस अनुभूति से जुड़ी है कि हम एकदम नये समय में रह रहे हैं, कि हम अतीत के नहीं वरन् अपने परिवेश और सांप्रतिकता की उपज हैं, यह कि आधुनिकता एक नई चेतना है, यह मनुष्य के मन की नई स्थिति है। यही कारण है कि यह साठ वर्षो का कालखण्ड एक नई धारणा है। यह आधुनिकता का काल है।

यह स्पष्ट हो गया कि "आधुनिकता एक गहन सांस्कृतिक काति है। इस सांस्कृतिक क्रांति का प्रभाव भाषा प्रयोग पर पडा, संरचना पर पड़ा, रूप के सयोजन पर पडा और इन सब से बढकर संरचनाकार के सामाजिक अर्थ पर पड़ा। विदित हो कि मुक्तिबोध ने यूँ ही नहीं लिखा कि 'अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होगे।"[1]

---

1 समकालीन सृजन– अक 21 प्रकाशन वर्ष 2002 पृष्ठ स० 39 (आधुनिकता और आधुनिकतावाद)

अब एक बार फिर भारतीय अधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में जो सवाल सामने उभर कर आ रहा है वह यह कि क्या भारतीय आधुनिकता पश्चिम का ही सस्करण है ?

भारतीय अधुनिकता बहुतो को पश्चिम का ही भारतीय सस्करण भले लगती हो, है नहीं। क्योकि यूरोपीय आधुनिकता में परम्परा के विस्मरण पर जोर है। जबकि भारतीय आधुनिकता में परम्परा के स्मरण पर। हाँ भारतीय आधुनिकता में कुछ चीजे ऐसी जरूर हैं जिनपर यूरोपीय आधुनिकता की छाप है। यथा सत्ता, समाज, साहित्य, सस्कृति पर एक औपनिवेशिक दबाव अब भी महसूस किया जा सकता है। बावजूद इसके अशोक बाजपेयी के शब्दो में ‘‘एक आधुनिकता, आप चाहे तो उसे भारत-केंन्द्रित आधुनिकता कह लें, हमारे यहां विकसित हुई और उसके प्रति जो हमारा मोह जागा, वह इसलिए कि उसमें हमारी जातीय स्मृति का कुछ पुनर्वास था, कुछ ऐसे प्रश्न और चिन्ताएँ थी, जो भारतीय मनीषा के प्रश्न और चिताए रही है।’’[1]

अत कहना न होगा कि भारतीय आधुनिकता यूरोपीय आधुनिकता के तमाम प्रचलित साचों को लगभग अस्वीकार करते हुए ठेठ अर्थो मे देशज है। उसका विकास साम्राज्यवाद से संघर्ष करते हुए हुआ। फलत हमारी राष्ट्रीयता का चरित्र साम्राज्यवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी हो गया, जो आज तक कायम है।

क्योंकि आधुनिकता अपने विशिष्ट रूप में भिन्न है यथा ‘‘आधुनिकता की पहली व अनिवार्य शर्त स्वचेतना है, आधुनिक दृष्टि आधुनिकता के बिना अकल्प्य है, क्योंकि अपने वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता का केन्द्रीय तत्व है।’’[2]

---

1 समकालीन सृजन--अक 21 प्रकाशन वर्ष 2002 पेज 111
2 हिन्दी साहित्यकोश (भाग 1) पारिभाषिक शब्दावली, धीरेन्द्र वर्मा, पेज 86-87

यदि हम उत्तर आधुनिकतावाद के जन्म को देखें तो इसका जन्म भी आधुनिकतावाद के प्रक्रिया के फलस्वरूप दिखायी पड़ता हैं यह आधुनिकतावाद की दृष्टि को नकारता है। और सर्वप्रथम एव सर्वाधिक रूप में इस बात पर बल देता है कि सत्य, सौन्दर्य और नैतिकता वस्तु परक यथार्थताए नहीं है। इनका वस्तुपरक अस्तित्व उनके सम्बन्ध में हमारे सोंचने, लिखने और बात चीत करने के परे और कुछ नहीं है। सामाजिक जीवन कोई ऐसी वस्तुपरक यथार्थता नहीं है जिसकी खोज सम्भव है। यह हमारी बात चीत की निरन्तर घाराओं अमूर्त्य प्रतिरूपों, कथाओ, और अन्य प्रतीकों को प्रकट करने वाले स्वरूप मात्र हैं यह परिप्रेक्ष्य मानता है कि विज्ञान के द्वारा सत्य की पहचान करके बेहतर विश्व की इच्छित रचना करने का प्रबोध काल का लक्ष्य मात्र एक छलावा है। यदि हम आधुनिकतावाद को ले तो देखेगे कि मानवीय सामाजिक जीवन की सम्भावनाओं और दिशाओ का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है जिसकी जड़े तार्किक एव वैज्ञानिक चिन्तन में गडी हुयी हैं। इसकी शुरूआत प्रबोध काल के साथ हुयी है आधुनिकतावादी प्ररिप्रेक्ष्यानुसार सत्य, सौन्दर्य और नैतिकता वस्तुपरक यथार्थताए हैं जिन्हे तार्किक एव वैज्ञानिक विधियो से जाना एवं समझा जा सकता है तथा जिनकी खोज संभव है। सामाजिक जीवन का यह दृष्टिकोण प्रगति को न केवल अपरिहार्य मानता है अपितु उन साधनो को भी इंगित करता है। जिनके द्वारा मानवीय दशाओं पर अधिकाधिक नियन्त्रण तथा व्यक्ति के लिए अधिकाधिक स्वतत्रता प्राप्त की जा सकती है।

इस परिप्रेक्ष्य मे हम देख सकते हे कि ''बुद्धिवाद और उपयोगितावाद के दर्शन पर आधारित सोचने समझने के एक ऐसे ढ्ग को आधुनिकता कहते हैं जिसमें प्रगति की आकांक्षा विकास की आशा और परिवर्तन के अनुरूप अपने आप को ढालने का भाव निहित होता है। तार्किक अभिवृत्ति, परानुभूति, वैज्ञानिक विश्वदृष्टि सार्वभौमिक दृष्टिकोण इसके विशेष गुण है।''[1]

जिस आधुनिकता की बात हम कर रहे हैं उसका युग अनोखे रूप से ऐतिहासिक है जिसका रूझान संकट-केन्द्रित एवं भविष्य सूचक है। आधुनिकता से

---

1 समाज शास्त्र विश्वकोष, हरिकृष्ण रावत, द्वि०स० 1998 पेज-237

पहले भी कला और साहित्य के इतिहास में विचार और संवेदनशीलता की क्रातियां हुयी थीं। प्रत्येक पीढ़ी के साथ सवेदनशीलता में बदलाव होता है और सौ-दो सौ वर्षो मे सवेदनशीलता मे जो गहन और व्यापक परिवर्तन होते हैं। उन्हे काल में वर्गीकृत किया जाता है, जैसे भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद और आधुनिकतावाद आदि। पर सवेदनशीलता के पिछले बड़े परिवर्तनों से आधुनिकता का आन्दोलन बुनियादी तौर पर भिन्न हैं एक प्रकार से यह परम्परा से विच्छेद है, अतरण है, कुछ लोग इसे विघटन या समापन भी कहते हैं। असल में रीति काल का भक्ति काल से जितना अतर नहीं था, द्विवेदी युग का रीतिकाल से जितना अन्तर नहीं था, उतना अतर आधुनिकता का छायावाद युग से है। प्रेमचन्द और बृन्दावन लाल वर्मा से अज्ञेय, यशपाल आदि की दूरी एक प्रकार का संपूर्ण विच्छेद हैं नई सोच नई संवेदनशीलता ने पुरानी सोचं, पुरानी संवेदनशीलता को पूरी तरह बदल दिया है। यह खाई राजनीतिक, धर्म, सामाजिक मूल्य, कला और साहित्य सब में बहुत बड़ी है। कहीं भी जो कुछ हमें नया दिखायी पड़ता है उसे ही हम साहित्य में आधुनिकता का रूप मानते हैं। यही कारण है कि इसके आयाम बिलकुल नये से प्रतीत होते हैं।

अब प्रश्न है कि, हिन्दी साहित्य के संदर्भ में इसका काल क्या है? साहित्यिक श्रोतों से ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1903 ई0 के आस-पास हिन्दी साहित्य मे एकदम नई संवेदनशीलता का आगमन होने लगा और उसी संदर्भ मे छायावाद का अन्त हो जाता है। यथा कवि (छायावादी) निराला ने अपनी कृति 'कुकुरमुत्ता' में छायावादी संवेदन शीलता के अन्त की काव्यात्मक घोषणा करते है। वहीं पर अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' में शशि से शेखर के नए संबन्ध की तलाश करते हैं, जिसकी चरम परिणति हमें 'नदी के द्वीप' में देखने को मिलती है। फलस्वरूप 'तारसप्तक' के द्वारा नये प्रयोगशील कवि सामने उभर कर आते हैं। दूसरी ओर 'अंधायुग' में भारती पुराण कथा को पूरी तरह आधुनिकता बोध की ध्वनि प्रदान करते हैं। प्रभाकर माचवे और देवराज नये प्रयोगशील उपन्यास की रचना करते हैं, इस प्रकार 1930 से 1965 ई0 तक का साहित्य नयी

नैतिकता नयी सोच और नयी भाषा से उत्क्रांत है।

'आधुनिक और आधुनिकता' सर्वथा प्रथक प्रथक विचारधारा है। आधुनिक मध्यकालीन से अलग होने की सूचना देता है। जबकि साहित्य का पिछला दशक (1960-70) आधुनिकता से विशेष प्रभावित है। 'आधुनिक' वैज्ञानिक अविष्कारो और औद्योगीकरण का परिणाम है जबकि 'आधुनिकता' औद्योगीकरण की अतिशयता, महानगरीय एकरसता, दो महायुद्धों की विभिषिका का फल है। यहा पर यह कहना अनुचित न होगा कि नवीन ज्ञान-विज्ञान, टेक्नोलॉजी के फल स्वरूप उत्पन्न विषय मानवीय स्थितियों के नये, गैर-रोमांटिक और अमिथकीय साक्षात्कार का नाम 'आधुनिकता' है।

आधुनिकतावादी साहित्य एक विशेष प्रकार का साहित्य है। "समसामयिकता का सम्बन्ध काल' से है तो 'आधुनिकता' का सम्बन्ध सवेदना, शैली और रूप से। आधुनिकतावादी अन्तर्यात्रा करता है, मूल्यों का मखौल उडाता है वह विद्रोही होता है। सयम की कमी, प्रयोग, साहित्य रूपों की तोड़-फोड़, शॉक देने की मनोवृत्ति, अक्रोश-शोभ-हिंसा की आकांक्षा आदि उसकी विशेषताएँ हैं।"[1]

आधुनिकता का यह बोध एक वास्तविकता है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता इस देश में इसे ले आने की बहुत कुछ जिम्मेदारी, हमारी भ्रष्टाचारी लोकतंत्र को है। पर 8वें दशक के प्रारम्भ में हमारे साहित्यकारों में इससे छुटकारा पाने की बेचैनी पड़ने लगी। सबसे पहले यह बोध कविता में दिखायी पडा। इन रचनाओं को हम नव-बामपन्थी रचनाएँ कह सकते हैं। वस्तुत नववामपंथी आन्दोलन 'न्यू लेफ्ट मूवमेंट' का अनुवाद है। इसलिए डर है कि कहीं तथ्य बनने के पहले आधुनिकता वादी निहिलिस्टों की तरह थे इतिहास की वस्तु न बन जाये।

----

1 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इति० (नवी सशोधित सस्करण) डॉ० बच्चन सिह पुनर्जागरण काल- पृ०स० - 38

अध्याय–4

भगवती बाबू के उपन्यासों में समाज, राजनीति, धर्म एवं दर्शन का विवेचन

समाज

उपन्यासकार और समाज का आद्योपान्त सम्बन्ध होता है। समाज से उपन्यासकार का जन्म होता है और उपन्यासकार समाज के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक, सास्कृतिक परिस्थितियों से प्रत्यक्षत या परोक्षत प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है जिसके प्रेरणा स्वरूप वह अपनी कृति का सृजन करता है। उस कृति के सृजन में उपन्यासकार समाज से ही प्रेरणा ग्रहण करता है, जो अन्यान्य जटिल रो जटिल समस्याओ को अपने गर्भ कोश मे छिपाये रहता है। इस स्थिति में समाज में व्याप्त प्राचीनता एवं नवीनता के सघर्ष के असन्तुलन का उपन्यासकार अपने उपन्यास के माध्यम से एक खाका खीचता है तथा समाज का मार्गदर्शन करता है। उपन्यासकार समाज के रूढिगत सामाजिक संस्कारो, जर्जर खोखली मान्यताओ या आदर्शो, राजनैतिक विद्रूपताओं, धार्मिक आडम्बरो पर कुठाराघात करता हुआ मानवता के धरातल का निर्माण करता है तथा अपने युग के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण टूटी-फूटी मान्यताओं, जर्जर आदर्शो को त्याग कर नये युग की मानवीय प्रवृत्तियो को सहज स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

किसी भी साहित्यकार के साहित्य को समझने के लिए उसके जीवन एव व्यक्तित्व से अच्छी तरह से परिचित होना अति आवश्यक है। साहित्य के सृजन मे साहित्यकार के सस्कार, पारिवारिक वातावरण, उससे मानस पटल पर अंकित प्रभाव तथा इस प्रभाव के द्वारा निर्मित विचारधारा और मान्यताओ का महत्वपूर्ण स्थान होता है।''[1]

---

1 साहित्यकार भगवती चरण वर्मा-डॉ इन्दू शुक्ला, चिन्ता प्रकाशन दिल्ली स0 1992, पेज-1

यही कारण है कि किसी भी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करते समय अध्येता के समक्ष सामाजिक घटनाएं एक खोज का विषय बन जाती हैं। साहित्य निर्मात्री परिस्थितियों व घटनाओ को खोज निकालने के लिए साहित्यकार के जीवन के विविध पक्षों का पर्यालोचन आवश्यक बन जाता है। साहित्यकार का जीवन तथा साहित्य, उसके संस्कार, अनुभूतिजन्य मान्यताओं एव विचारधाराओ के द्वारा अनुशासित व पल्वित होते हैं।"[1]

किसी उपन्यासकार का समाज से गहरा सम्बन्ध होता है। एक के बिना दूसरा अधूरा होता है क्योंकि लेखक किसी औपन्यासिक कृति को मात्र फोटोग्राफर की तरह हूबहू खींचकर नहीं रखता बल्कि अपने मस्तिष्क रूपी कैमरे से समाज के यथार्थ चित्र के साथ-साथ कल्पना रूपी कैंची चलाकर प्रस्तुत करता हैं। उपन्यासकार द्वारा प्रस्तुत चित्र संवेदना के धरातल पर आकर्षक बना कर प्रस्तुत किया जाता है।

मानव की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है- आनन्द की खोज। जिनमे साहित्य श्रेष्ट है और उस साहित्य में उपन्यास सर्वश्रेष्ठ है। उपन्यास मानव की आनन्दमयी चेतना का प्रतिरूप है जो विविध आवरणों में साकार हो कर प्रस्तुत होता है।"[2]

समकालीन समाज विभिन्न विघटनों एवं सृजन की सीढ़ियो को चढ़ता पार करता हुआ गतिमान हैं। हमारे समाज में तमाम तरह तरह की सामाजिक विसंगतियां हैं जिसमें संयुक्त परिवारो का टूटना, दाम्पत्य जीवन वैयक्तिक जीवन धारा में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, साथ ही हमारा भारतीय समाज इन विसंगतियों विषमताओं एवं कुरीतियों से निजात नहीं पा सका है। जिसमें वर्ग भेद, पूँजीपति वर्ग, सामन्तवर्ग, जातिगत भेद, धार्मिक आडम्बरों से कलुषता, अन्ध विश्वास, छुआ छूत, रूढिवादिता, अशिक्षा, अशिक्षित स्त्रियो की समस्या, दहेज की

---

1 भगवती चरण वर्मा के उपन्यास और युग चेतना, डॉ जवाहर लाल सिह, कला प्रकाशन वाराणसी, प्र0स0 2000, पेज 109

2 भगवती चरण वर्मा के उपन्यास और युग चेतना, डॉ जवाहर लाल सिह, कला प्रकाशन वाराणसी, प्र0स0 2000, पेज 110

समस्या, अनमेल विवाह की समस्या, भ्रष्टाचार आदि ने जीवन को अशान्त, अस्थिर एव असुरक्षित बना दिया है। देश के विभाजन के पश्चात, भ्रष्टाचार की सीमा, साम्प्रदायिकता की लहर, आदि को वर्मा जी ने उन दृश्यो को जीवन्त करने का सफल प्रयास किया है। जैसे एक प्रसग से-"बड़े बडे काफिले चल रहे थे हिन्दुओ के और मुसलमानो के फौजियो के सरक्षण में। देश के विभिन्न भागो मे मार-काट की खबरे आ रही थी। नित्य ही हजारो की सख्या में हत्याए हो रही थी स्त्रियो पर बलात्कार किया जा रहा था, लोगो से जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कराये जा रहे थे।"[1]

"प्रश्न और मरीचिका" में वर्मा जी देश के विगत इतिहास द्वारा सृजित परिस्थितियों मे मनुष्य की विवशता की करूण कहानी जनार्दन सिह के द्वारा बडी कुशलता से कहलवाई है। भारत के कुछ निवासी मजबूरी में मुसलमान बने और उनका धर्म छूटा, उसके पश्चात परिस्थितियों मे उन्हे ओढे गये धर्म के कारण अपना देश छोडने के लिए विवश कर दिया।"[2]

भगवती चरण वर्मा ने अपने उपन्यासों के कथानकों में सामाजिक यथार्थ को अपना विषय बनाया। वर्मा जी व्यक्ति को सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज के खाँचे मे रखकर उसकी समस्याओ का रेखा चित्र खींचते है। व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। वह सामाजिक जीवन के प्रवाह में प्रवाहित होता हुआ, उसकी समूची धारा में बहता हुआ दिखाई पडता है।

वर्मा जी ने समाज के रूढ़िग्रस्त जर्जर ढाँचे के प्रति विद्रोह को बडे व्यगात्मक अदाज मे लिया है। काव्य के क्षेत्र में आदर्शवादी विचारो के प्रति विद्रोह करते हुए अपनी स्वच्छन्द भावनाओ को खुलकर खेलने का अवसर देते हैं, और बच्चन की तरह जिनका जीवन दर्शन भोगवाद है, पश्चिमी शिक्षा तथा संस्कृति से प्रभावित होकर जो स्वच्छन्द प्रेम मे आस्था रखते है। जिनके जीवन मे अभाव

---

1 सीधी सच्ची बातें, भगवती चरण वर्मा, राजकमल, दिल्ली, दि0 स0 1970 पेज 643
2 प्रश्न और मरीचिका-भगवती चरण वर्मा, राजकमल दिल्ली, प्र0स0 1973, पेज-33, 34

निराशा, घुटन, असन्तोष तथा विद्रोह की भावना का आना स्वाभाविक है, जो अपने स्वप्नो को साकार नहीं कर पाते, समाज की उस स्थिति को रेखाकित करते हैं। दूसरे महायुद्ध के बाद मध्यवर्गीय समाज की आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थिति व्यक्तिवादिता को पुष्ट करने में सहायक सिद्ध हुई। नव युवक लेखकों का विद्रोही हो जाना तथा वर्तमान समस्याओ का वैयक्तिक दृष्टि से समाधान प्रस्तुत करना आधुनिकता बोध का आभास कराता है। व्यक्ति स्वातत्रय के आदर्श की स्थापना की कल्पना बाहरी बन्धनो के माध्यम से नहीं मानते बल्कि उसे आन्तरिक प्रेरणा के रूप मे स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वर्मा जी ने अपने उपन्यासो मे मानव जीवन की सम्पूर्ण झाँकी प्रस्तुत की है।

लेखक समाज मे रहते हुए किसी काल्पनिक लोक का वर्णन न कर ऐसे जीवन का वर्णन प्रस्तुत करता है जिसमें वह स्वय जीता है। उसकी समस्त समस्याए व भावनाएं ही उसमें व्यक्त हुइ है। उनके पात्र के चरित्र काल्पनिक न होकर पाठ्क वर्ग मे से ही लगते है।

वर्मा जी ने जिस समाज और समय मे जीया, देखा उसकी पृष्ठभूमि पर ही उन्होंने अपनी रचनाओं का सृजन किया है। भारतीय इतिहास के जिस काल खण्ड में वर्मा जी थे वह भारत के स्वाधीनता आन्दोलन का समय था। भारत का स्वाधीनता आन्दोलन विश्व को चकित कर देने वाली घटना थी। यह आन्दोलन जहाँ एक ओर राजनैतिक स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील था वहीं दूसरी तरफ सामाजिक समस्याओं से लड रहा था।

वर्मा जी की कुछ रचनाओ में सामाजिक समस्या के साथ महत्वपूर्ण राजनैतिक समस्या को बडे यथार्थ ढग से उठाया है जिसमें 'ढेढे मेढे रास्ते', 'भूले बिसरे चित्र' 'सीधी सच्ची बाते' मे स्वाधीनता प्राप्ति से पहले के भारतीय समाज का चित्रण हुआ है। तथा 'सवहिनचावत राम गोसाई' और 'प्रश्न और मरीचिका' में स्वाधीन भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी, बेइमानी, अवसरवादिता गंदी राजनीति, स्वार्थपरता, पदलोलुपता, सिद्धान्तहीनता आदि का मूल्यांकन हुआ है।

भगवती चरण वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में समाज के उच्चतर से लेकर निम्नतर वर्ग के प्रति अपनी दृष्टि डाली है। यद्यपि उनकी दृष्टि उच्चवर्ग और मध्यवर्ग की तरफ विशेष केन्द्रित रही फिर भी निम्न वर्ग की उपेक्षा नहीं की गयी है। उनके सभी पात्र भारतीय परिवेश के हैं। कौतुहलता का संचार किया है लेकिन कहीं पर भी भारतीय सभ्यता-सस्कृति की अवहेलना नहीं की है। वर्मा जी के समस्त उपन्यासों मे सामाजिक जीवन अपने समस्त सम्बन्धों, जटिल प्रश्नों और समस्याओ, आशा-आकाक्षाओं, अभाव-निराशा, असन्तोष तथा विद्रोह के साथ उभरा है, इसलिए उनके प्रात्र सामाजिक तथा वर्गीय पात्र है।

वर्मा जी ने समाज में फैली हुई अर्थव्यवस्था को ठीक से पहचाना है और उसने देखा है कि इसके परिणाम स्वरूप समाज आर्थिक विषमता से फटेहाल एवं परेशान है। इसलिए वर्मा जी ने अपने साहित्य में इस विषमता का रूप उजागर किया है। इनके उपन्यासों की प्रमुख विशेषता रही है कि वे उसमें न तो कहीं उपदेशक की भूमिका मे है न ही आदर्शवादी नेता। उन्होंने आदर्श को सिर्फ सामने रख कर समस्याओं का हल खोजने का प्रयास किया है। उन्होने सिर्फ आदर्शवादी यथार्थ की स्थिति से अवगत कराते हुए अच्छाई-बुराई, सुख-दुख का चित्रण कर मानव-मन अन्त मन को टटोल कर सामाजिक समस्याओं पर अपने उपन्यासों के कथ्य को गढा है।

वर्मा जी का प्रथम उपन्यास भारतीय इतिहास के उस काल खण्ड मे अकर्मण्यता एव विलासिता का चित्र खीचता है। सामाजिक और ऐतिहासिक रोमास की क्रोड मे सामाजिक परिवेश का चित्रण नगण्य है। बस इसमे यही प्रदर्शित हुआ है कि अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अलीशाह का घोर विलासी होना। उनके हरम मे स्त्रियों की दशा शोचनीय है। नवाब के राज्य की बिगडती दशा मे चारो तरफ भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी का बोलबाला था। नवाब का वजीर अली नकबी नवाब की जड़े खोद रहा था और नवाब साहब के नाम पर मनमानियाँ कर रहा था।

'चित्रलेखा' उपन्यास में उपन्यासकार सर्वप्रथम सफल सामाजिक परिवेश का चित्रण करता है। उपन्यासकार ने मौर्यकालीन चन्द्रगुप्त के दरबार को पटल पर रखकर तत्कालीन समाज में योग-भोग, पाप-पुण्य की समस्या, प्रेम-विवाह आदि समस्याओ को चित्रित किया है।

'भूले बिसरे चित्र' से लेकर 'प्रश्न और मरीचिका' तक सन् 1885 ई0 से सन् 1962 ई0 के चीनी आक्रमण तक की दीर्घावधि को परिवेश के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। 'भूले बिसरे चित्र' में देश में, साम्प्रदायिक झगडो और स्वदेशी आन्दोलनो का चित्रण लेखक ने बडी सूक्ष्मता से किया है। हिन्दूमुस्लिम झगडे किस प्रकार से व्यक्तिगत स्तर पर उतर आये?

तत्कालीन समाज में रखैल रखने की परम्परा थी जो 'भूले बिसरे चित्र' के छिनकी, जैदेयी, और संतो के साथ शिवलाल, ज्वाला प्रसाद और गगा प्रसाद के चरित्रों के माध्यम से दिखाया गया है। 'टेढे मेढे रास्ते' उपन्यास में 1930 के आस पास की ढुलमुल राजनीति और तत्कालीन समाज को एक पारिवारिक पृष्ठभूमि मे चित्रित किया गया है। किस प्रकार सामंतवादी परम्परा में परिवार पर पिता का आधिपत्य था और किस प्रकार से रामनाथ के पुत्रो पर उसका बुरा प्रभाव पडा? इसका विशद चित्रण मिलता है। अंग्रेज अधिकारी वर्ग तथा सामन्त वर्ग मिली भगत से किस प्रकार से गरीब जनता का शोषण करते है? उसका भी विशद चित्रण प्राप्त होता है। कारिन्दे सामान्य जनता का जीना मुश्किल किये थे, जिसमे जमीदारो के अत्याचार को वर्मा जी ने प्रस्तुत करते हुए देश का राजनीतिक आवरण हटा कर गाँधी और सुभाष का मनोमालिन्य उजागर किया है।

'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'सबहिं नचावत राम गोसाई' स्वातन्त्रयोत्तर भारत मे हो रहे पूजीवादी शोषण के नंगानाच का चित्रण कर वर्तमान भारत की गतिविधियो द्वारा सामाजिक पृष्ठभूमि की यथा तथ्य प्रतिछवि अंकित करते हैं। जबर सिह गृहव्यक्ति राधेश्याम पूंजीपति और राम लोचन पाण्डेय डी0एस0पी0 आज की शासन व्यवस्था के साकार रूप है। मत्रियों का आपसी संघर्ष और वैमनस्य जटाशकर बाजपेयी और जबर सिह के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है।

स्त्री स्वतत्रता आन्दोलन उस युग में चल रहे थे जिसकी झलक वर्मा जी के उपन्यास 'भूले विसरे चित्र' की विद्या के माध्यम से दिखाई पडता है। वह एक ही साथ ससुराल वालो के अत्याचार का विरोध करती है तथा सामाजिक व्यवस्था से विद्रोह करती है तथा राजनीतिक आन्दोलन में निर्भीक होकर भाग लेती है। 'प्रश्न और मरीचिका' मे सन् 1918 में सरोजनी नायडू, एनीबेसेन्ट तथा हीराबाई से सरकार के सम्मुख नारी के राजनीतिक अधिकारों की मांग से प्रेरित होकर माया शर्मा इसी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली नारी हैं जो स्त्री के समानाधिकारो की मांग करती हुई सत्याग्रह और स्वदेशी आन्दोलनो मे भाग लेती हुई जेल जाती हैं।

वर्मा जी के उपन्यासो में सन् 1885 से लेकर 1963 ई तक के अन्तराल का सामाजिक जीवन अभिव्यक्त हुआ है तथा भारत के नवोदित सामाजिक चेतना को एक नई अभिव्यक्ति दी गयी है। समाज के अतरग-बहिरग का बखूबी चित्रण, नैतिक मान्यताओ और यौन वर्णनाओ के परिप्रेक्ष्य में नारी-पुरुष के सम्बन्धो को देखना वर्मा जी की मौलिक विशेषता है। वर्माजी ने देश की दयनीय स्थिति खुली आंखो से देखी तथा भारतीय समाज की समस्त विशेषताओं और उसके परंपरागत गुणावगुणों का अनुभव स्वयं किया। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज को, युग को वाणी प्रदान की है। इस दृष्टि से उन्हें आधुनिकता बोध के संवाहक के रूप मे कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होनी चाहिए।

अत. वर्मा जी के उपन्यासों मे विभिन्न समस्याओं पर क्रम से विचार करना आवश्यक जान पड़ता है।

व्यक्ति और समाज की स्थिति :

भगवती चरण वर्मा ने अपने सभी सामाजिक उपन्यासों मे जहाॅ व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों के निर्वाह के सन्दर्भ पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है वहीं पर यह भी दिखाया है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व निजी मान्यताओं के

हिसाब से अपना अस्तित्व बनाए रखता है किन्तु उससे ऊपर उठकर व्यक्ति द्वारा समाज का सागठनिक ढाचा बरकरार रह सकता है।

'चित्रलेखा' मे जब बीजगुप्त यशोधरा से विवाह करने से इन्कार कर देता है, कारण कि वह चित्रलेखा से प्रेम करता है, तब मृत्युंजय उसे सामाजिक नियम की याद दिलाते हुए कहता है-"बीजगुप्त तुम्हारा कहना सम्भव है उचित हो पर जिस समय लोग तुमको अविवाहित कहते हैं उस समय तुम अविवाहित हो। रही विवाह न करने की बात, वहाॅ तुमसे मैं तुम्हारा ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता हूॅ कि विवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए होता है और इस लिए आवश्यक है। चित्रलेखा की सन्तान बीजगुप्त की सन्तान न होगी और न वह सन्तान बीजगुप्त की उत्तराधिकारी ही हो सकती है। कभी इस पर भी विचार किया है।"[1] इसी तरह की समस्या उनके अगले उपन्यास 'तीन वर्ष' में "अनेक पृथक अगो के होते हुए भी जिस प्रकार कुल के मिलने से एक व्यक्ति बनता है, इसी प्रकार अनेक व्यक्तियो के मिलने से एक जीवन अथवा एक विश्व बनता है। व्यक्ति के लिए पृथक अग की अवहेलना करना या व्यक्ति की अवहेलना करके पूर्ण को अथवा विश्व को समण्ने की कोशिश करना और उसी पूर्ण अथवा विश्व पर केन्द्रीभूत होना ही कला है।"[2]

प्रत्येक व्यक्ति अपना एक निजी विश्वास लेकर जीता है। व्यक्ति का यह विश्वास जितना दृढ होगा, उसके प्रति उसका आग्रह उतना अधिक होगा। व्यक्तियो के विश्वास यदि परस्पर संगठित न होकर, विपरीत दिशाओं में अग्रसर होंगे तो मानव जीवन की सुगठित, सामाजिक अभिव्यक्ति सम्भव न होगी। यदि व्यक्ति के विश्वास को उसके पागलपन की सज्ञा दे तो लोगों के 'पागलपन' के मध्य भी एक समझौते, सामजस्य की आवश्यकता है। 'टेढे मेढे रास्ते' मे मार्कण्डेय कहता है-तुम्हारा विश्वास तुम्हारा है दुनिया का नहीं। तुम्हारी भावना भी तुम्हारी है

1 चित्रलेखा - भगवती चरण वर्मा, पेज 68
2 तीन वर्ष - भगवती चरण वर्मा, पेज 44

विश्वास को उसके पागलपन की सज्ञा दे तो लोगों के 'पागलपन' के मध्य भी एक समझौते, सामजस्य की आवश्यकता है। 'टेढे मेढे रास्ते' मे मार्कण्डेय कहता है-तुम्हारा विश्वास तुम्हारा है दुनिया का नहीं। तुम्हारी भावना भी तुम्हारी है दुनिया की नहीं। तुम्हे यह स्मरण रखना पड़ेगा कि दुनिया में तुम्हारी ही भॉति हर एक आदमी का अपना निजी विश्वास है। अपनी निजी भावना है और यही तुम्हारा निजी विश्वास और निजी भावना दूसरो की नजर में पागलपन है, क्योकि दूसरो के विश्वास, दूसरो की भावना बिल्कुल दूसरी हैं   इसलिए समाज मे-''हॉ एक आदमी के पागलपन को दस आदमियों का अपना लेना, और शान्तिपूर्वक उसी एक पागलपन को सत्य मानकर रहना अधिक श्रेयस्कर होगा बनिस्पत इसके कि दस आदमी अपना-अपना पागलपन लेकर लडे-झगडे और अपनी जिन्दगी कलहपूर्ण बना ले।''[1]

व्यक्ति तथा समाज के कर्तव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण धर्मो के सामजस्य के विषय में 'भूले विसरे चित्र' के रामसहाय के कथनों द्वारा -''धर्म के दो रूप होते हैं एक सामाजिक दूसरा वैयक्तिक। दोनों धर्मो का पालन करना हर एक साधारण गृहस्थ का धर्म है। समाज छुआछूत को मानता है, समाज वर्गो मे ऊॅच-नीच का भेदभाव करता है, यह सब हमें स्वीकार करना पडेगा क्योकि हम सब समाज द्वारा शासित हैं, हम सब की रक्षा समाज करता है। इन सामाजिक नियमो को तोडा नहीं जाता, इन नियमों को केवल बदला जाता है, और इन्हे बदलने की क्षमता   यदि सामाजिक व्यवस्था के आगे हम सिर नहीं झुकाते तो हम अराजकता के पाप के भागी होते हैं, और सामाजिक प्राणी होने के कारण हम गृहस्थ लोग अराजक बन ही नहीं सकते।''[2]

वर्मा जी यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति की स्थिति समाज में ही सम्भव है पर इसके साथ ही वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि व्यक्ति की स्वतन्त्र

---

1 टेढेमेढे रास्ते - भगवती चरण वर्मा, पेज 53
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा पेज 16-17

सत्ता भी है- "व्यक्ति का साधारण जीवन समाज द्वारा परिचालित अवश्य है क्योंकि व्यक्ति समाज का भाग बन कर समाज में स्थिर रहता है और उसे समाज के साथ सामजस्य स्थापित करना ही पड़ता है, घर मे व्यक्ति की एक पृथक आधार भूत सत्ता मानता हूँ-समाज से हटकर।"[1]

वहीं पर फिर वर्मा जी कहते हैं कि-"जहा तक मेरा मत है, मैं व्यक्ति को समाज द्वारा निर्मित नहीं मानता, केवल व्यक्ति को समाज द्वारा प्रभावित मानता हूँ।"[2]

व्यक्ति के महत्व को लेखक ने चित्रलेखा और बीजगुप्त की भेंट के प्रसग मे बड़ी स्पष्टता से स्वीकार किया है। जिस समय चित्रलेखा बीजगुप्त से यह कह कर भविष्य में मिलने से इन्कार कर देती है कि उसके जीवन मे 'व्यक्ति' का कोई महत्व नहीं है, वह केवल 'समुदाय' से मिलती है, तब बीजगुप्त कहता है "व्यक्ति से ही समुदाय बनता है, समुदाय की प्यास उसके प्रत्येक व्यक्ति की प्यास है, फिर यह भेद क्यों ?" जब चित्रलेखा व्यक्ति के महत्व को मानने से इनकार कर देती है तब वह यह कह कर वापस लौट जाता है कि "व्यक्तित्व जीवन मे प्रधान है और व्यक्ति से ही समुदाय बनता है जब व्यक्ति वर्जित है तो उस व्यक्ति का समुदाय का भाग बनना अपना ही अपमान करना है।"[3] यहॉ पर वर्मा जी ने व्यक्ति की स्वतन्त्रता का घोर समर्थन किया है।

आलोचकों ने इस बात को स्वीकार किया है कि "वर्मा जी व्यक्तिवादी है पर उनके व्यक्तित्व मे गतिशीलता है।"

'प्रश्न और मरीचिका' के सभी पात्र विशेषकर जयराज उपाध्याय अपने परिवार अपने समाज के प्रति अधिकाधिक खिंचाव अनुभव करते हैं। वर्मा जी यहा यह कहना चाहते हैं कि व्यक्ति अपने वातावरण को बिना चाहे नहीं रह सकता। उसके हृदय की अनजानी प्रक्रिया उसे वातावरण को प्यार करने के लिए बाध्य

---

1 साहित्य की मान्यताए, भगवती चरण वर्मा, पेज 3
2 साहित्य की मान्यताए, भगवती चरण वर्मा, पेज 3
3 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 12-13

करती है। वर्मा जी व्यक्ति एव समाज को एक केन्द्र बिन्दु पर मिलाना चाहते हैं। 'सीधी सच्ची बाते' में इस मत की पुष्टि इस प्रकार की गई है-मनुष्य के हरेक वर्ग के मूल मे एक प्रेरणा रहती है, लेकिन क्या यह प्रेरणा वैयक्तिक है, या यह प्रेरणा सामाजिक है? व्यक्ति से समाज बनता है-यह सत्य है, लेकिन समाज मे ही तो व्यक्ति का अस्तित्व है, व्यक्ति समाज का अविछिन्न मात्र है। जो व्यक्ति समाज से छिटक जाता है वह अपराधी होता है। हरेक वैयक्तिक प्रेरणा का सामाजिक पहलू होना अनिवार्य है। इस वैयक्तिक प्रेरणा का सामाजिक प्रेरणा से विलयन ही मानव समाज है और इसके लिए मानव को सतत् प्रयत्नशील होना पडेगा।''[1]

वर्मा जी व्यक्ति और समाज दोनों को एक दूसरे पर आश्रित मानते हैं, दोनो को एक सिक्के के पहलू की भाति एक दूसरे के पूरक मानते हैं, दोनों को अटूट सम्बन्धी स्वीकार करते है-लेकिन व्यक्ति के सम्मुख औद्योगिक अर्थव्यवस्था की जटिलता, संघर्ष तथा अन्य समस्याएं थी इस लिए अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उसे पुन वर्गीय संस्थाओं से संयुक्त होना पडा और वर्ग विशेष की सामूहिक विचारधारा उसे स्वीकार करनी पडी। समाज से कटकर व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा में असमर्थ रहा और उसे अपने अस्तित्व-रक्षार्थ समाज से समझौता करना पड़ा चाहे वह वर्ण-प्रधान समाज रहा हो, चाहे आज का पेशेवर वर्गीय समाज हो, वह अलग न हो सका क्योंकि सामाजिक प्राणी होने के नाते हम समाज के सन्दर्भ में ही जिन्दा है। मेरा अनुभव तो कहता है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कोरी कल्पना है।[2]

इसमे दूसरे सन्दर्भो में भी व्यक्ति और समाज पर वर्मा जी के उपन्यासो मे एक समग्र दृष्टि का उद्घाटन हुआ है। जिससे व्यक्ति का समाज मे और समाज का व्यक्ति से पारस्परिक सम्बन्धों का चित्रण दिखाई पड़ता है।

---

1 सीधी सच्ची बातें, भगवती चरण वर्मा, पेज 302
2 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 208

''अछूत समस्या –अस्पृश्यता, जिससे विश्व के अधिकाश देश मुक्त हो चुके हैं, उनसे भी भारत का जनमानस आज तक अपना पीछा नहीं छुड़ा पाया है।'' देश में सदियों पहले ऋषि मुनियो ने वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना सामाजिक ढाचे को खडा करने हेतु बनायी गयी थी जिससे समाज मे एक सुव्यवस्थित अनुशासन कायम हो और यह व्यवस्था कर्मों के आधार पर बनायी गयी थी किन्तु आगे चलकर वर्ण के निर्धारण मे कर्म के स्थान पर जन्म के आधार को मान्यता मिल गयी जिससे हिन्दू धर्म की एक स्वस्थ परम्परा में कोढ शुरू हो गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णों के माध्यम से ऊँच–नीच की भावना प्रबल हो गयी। एक आराम से मस्ती करता था तो दूसरा उसकी सेवा मे पिसता जा रहा था। हिन्दू धर्म की ऐसी विगलित दशा हो गयी थी कि इन्सान की वेबसी, गरीबी और शोषण को एक सामाजिक सत्य के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है।[1] 'सीधी सच्ची बातें' में भी इसी प्रकार की दृष्टि दिखाई पड़ती है, ''गरीबी और बेबसी वहीं होती है, जहा जुल्म होता है, शोषण होता है। समाज ने ऐसे नियम बना दिये कि शोषण और जुल्म को इस देश मे खुली छूट मिल गयी।''[2] इस प्रसग से विदित होता है कि हमारे समाज के ऊँचे वर्ग के लोग किस प्रकार से निम्नवर्ग पर अत्याचार करते थे यह किसी से छिपा नहीं है। हमारे समाज के शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले लोग भी जाति पाति और छुआ–छूत के कलुष से अछूते नहीं रहे हैं। छुआ–छूत की इसी भावना ने हमारे देश की एकता को हमेशा तोड़ने का कार्य किया। ऊँच–नीच की भावना ने समाज मे एक प्रकार से जहर फैलाने का कार्य किया है। वर्मा जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से ऐसे लोगों की विचारधारा को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है–''समाज छुआ–छूत को मानता है, समाज वर्गो में ऊँच–नीच का भेदभाव करता है, वह सब हमे स्वीकार करना पडेगा, क्योकि हम सब समाज द्वारा शासित है,

---

1 भगवती चरण वर्मा की उपन्यास चेतना, पेज 73
2 सीधी सच्ची बातें–भगवती चरण वर्मा, पेज 256

हम सबकी रक्षा समाज करता है। इन सामाजिक नियमों को तोड़ा नहीं जाता इन नियमो को केवल बदला जाता है और इन्हे बदलने की क्षमता महान त्यागियों और तपस्वियो मे मिलेगी, हम जैसे साधारण गृहस्थो में नहीं।''[1] इस प्रकार की समस्याओ को उपन्यासकार ने अपने अन्य उपन्यासों में भी उजागर किया है। वर्ण व्यवस्था के प्रति 'पतन' उपन्यास मे लेखक ने ''भारत वर्ष में दुर्भाग्यवश सामाजिक सगठन बडा असुविधाजनक है। शायद जब समाज बना था, वे नियम अच्छे रहे हो पर आगे चलकर वे दूषित हो गये। एक मनुष्य वह चाहे जितना श्रेष्ठ क्यो न हो, यदि निम्न श्रेणी का है, तो समाज में उसका सदा अपमान होगा। प्रकाश चन्द का भी यही हाल था। वह गणित और ज्योतिष का भारी विद्वान था। वह पटवारी का पुत्र होने के कारण कायस्थ समाज में अपमानित होता था। यह अपमान उसको असह्य था, पर वह कर ही क्या सकता था? कुलीन अभिमानी लोग गर्व से अपना मस्तक ऊँचा करके प्रकाशचन्द के सामने उसका अपमान करते थे। प्रकाश चन्द उस अपमान पर हॅस देता था, एकाधबार उसे क्रोध आया और उन अवसरों पर उसे उसके क्रोध का पुरस्कार यथेष्ट रूप से मिल गया।''[2] यहॉ पर प्रकाशचन्द इस व्यवस्था मे जीना अपनी नियति ही मान लेता है।

आगे चलकर वर्मा जी की वर्णव्यवस्था के पारम्परिक स्वरूप के प्रति आस्था समाप्त दिखाई पडती है। उन्होने अपने विचारों को रूढ़िवादी समाज के प्रति व्यंग्य पूर्ण तथा हास्यास्पद रूप मे चित्रित किया है। वर्मा जी वर्णव्यवस्था की अमानवीयता का विरोध करते हैं उनका यह दृष्टिकोण प्रगतिशील एवं आधुनिक है। 'आखिरी दॉव' की चमेली विजातीय होने के कारण रामेश्वर का खाना पकाने के लिए झिझकती है तो उस समय रामेश्वर चमेली से कहता है-''हूँ। तो तू समझती है कि मैं तेरे हाथ का पकाया खाऊॅगा नहीं।'' देख, बम्बई मे खाने-पीने

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवतीचरण वर्मा, पेज 480
2 पतन भगवती चरण वर्मा, गगा पुस्तक माला, लखनऊ, सप्तम स0 1970, पेज 110-

के मामले में सिर्फ एक जात होती है-वह है आदमी की।''[1] यहाँ रामेश्वर के कथन से आभास होता है मानवीयता ही प्रमुख है।

वर्मा जी ने यह भी दिखाया है कि जॉति-पॉति की भावना सिर्फ ब्राह्मणो मे ही नहीं थी, बल्कि प्रत्येक वर्ग अपने थोथे अभिमान में फूला न समाता था। ''भूले बिसरे'' चित्र में बचई के माध्यम से वर्मा जी ने यह दिखाया है कि निम्न वर्णी बचई भी अपने को कामरेड मारीसन से पवित्र एव उच्च समझता है। मारीसन के रसोई में घुसने से वह घर से बाहर चला जाता है और अपने मालिक से कहता है-''अब न होई सरकार ई किरिस्तानी व्यापार हमसे न चली। तौन अंग्रेज रसोईघर में घुस जाय सरकार हमार हिसाब किताब कर दे।''[1] इस प्रकार से इस उपन्यास के माध्यम से जहॉ ब्राह्मणो के उच्च वर्गीय अहकार को व्यग्य की नजर से देखा वहीं बचई जैसे निम्नवर्णी दकियानूसी पात्र भी उनकी दृष्टि से नहीं छुप पाये हैं। इसी उपन्यास लेखक ने वर्ण व्यवस्था के जड सस्कारो एवं जाति व्यवस्था के विघटन का चित्रण किया है। इसमें लेखक ने जहॉ छिनकी के माध्यम से निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर हिन्दू वर्ण व्यवस्था की आडम्बर प्रियता पर भी करारा व्यंग्य प्रहार किया है। छिनकी दलित वर्ग की ही भावना से ग्रस्त है। धर्म भीरू होने के कारण उसमें परम्परागत सस्कारबद्ध मूल हैं कि निम्न वर्ण के व्यक्तियों के हाथ का भोजन करने से उच्च वर्ण के लोगों का धर्म नष्ट हो जाता है। इसीलिए वह मुशी शिवलाला का खाना बनाने में भयभीत होकर कहती है-''राम-राम। हम कच्ची रसोइयां में कैसे जाई? कलपवास कर रहे हो, तौन धरम-करम का तो ख्याल राखौ। चौका मां हमारे जाए से चौका छूत हुई जइहे न? ''शिवलाल के विशेष आग्रह पर वह बडी विनम्रतापूर्वक कहती है,'' तुम्हारे हाथ जोडित हन, ई पाप हमसे न कराओ-हम चौका मा न घुसब। तुम्हार पर लोक हमरे हाथ न बिगडे।''

रसोई बनाय के इन्हें खिलाई तौ इन केर धरम जाय और न बनाई तो

---

1 आखिरी दॉव, भगवती चरण वर्मा, पेज 25

कलपै और हम पर मार पड़े ऊपर से।"[2]

यहाँ पर वर्मा जी में दिखाया है कि जिस औरत के साथ भोग-विलास करने से उच्च वर्ण का धर्म नष्ट नहीं होता, उसी के हाथ का बना भोजन करने से उसका लोक परलोक दोनों ही बिगड जाता है। इससे बढकर और क्या विडम्बना हो सकती है? किन्तु शिवलाल उस युग का प्रगतिवादी दृष्टिकोण का व्यक्ति है उसके कथन के द्वारा वर्मा जी ने जड़ होती हुई जाति व्यवस्था पर आघात कराया है। वह राधे लाल की पत्नी से कहता है-"मैं समझता हू इसने मेरा खाना बना दिया तो इसने पाप नहीं किया और मैंने इसके हाथ का खाना खा लिया तो मैंने भी कोई पाप नहीं किया।"[3] यह आवाज युगीन प्रगतिवादियो की है जो वर्ण व्यवस्था के जड़ रूप को बदल डालने के हिमायती थे। यहां पर वर्मा जी के आधुनिकता बोध की दृष्टि झलकती है। वर्मा जी ने वर्णव्यवस्था के धार्मिक पक्ष पर बाबाराघव दास का शिष्यत्व शिवलाल द्वारा ग्रहण करने पर तात्कालीन सामाजिक परिदृश्य पर व्यंग्य किया है।

'अपने खिलौने' में वर्मा जी ने, चमड़ा छूना केवल चमार जाति का निम्न वर्ण काम है जैसे ब्राह्मणत्व के आडम्बर पूर्ण संस्कारों पर प्रहार किया है तथा रूढिवादी हिन्दू समाज की यह मान्यता थी कि विदेश जाने से अन्य जातियो के सम्पर्क में आने के कारण व्यक्ति का धर्म नष्ट हो जाता है। वह अपने धर्म की रक्षा नहीं करता है, वह अशुद्ध हो जाता है। अत उसे हिन्दू धर्म तथा समाज से निष्कासित करना चाहिए अन्यथा वह प्रायश्चित करे। वर्मा जी ने वर्ण व्यवस्था धर्म के इस कुत्सित रूप को पहचाना और समाज बहिष्कार तथा प्रायश्चित विधान का विरोध किया है। 'टेढेमेढ़े रास्ते' उपन्यास में वर्मा जी ने उमानाथ द्वारा प्रायश्चित विधान में सम्मिलित होना अस्वीकार कराके उच्च वर्ण के ब्राह्मणों के थोथे अभिमान पर करारा व्यग्य किया है।

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 101
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 102
3 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 104-

इसी प्रकार से –'सबहिं नचावत राम गोसाई' उपन्यास के राम सजीवन, उमानाथ की भाँति विदेश से लौटते हैं। उनके साथ अग्रेज युवती मार्था भी रहती है राम सजीवन के पिता राजाराम समुझ तथा माता नन्दिनी देवी जो अभिजात कुल के हैं, वे मार्था को म्लेच्छ समझ, बहू रूप में स्वीकार नहीं करते। इन सामाजिक रूढियो के पालन के प्रति रानी नन्दिनी देवी का अत्यधिक आग्रह मातृत्व की प्रेम भावना को दबा देता है। लेकिन नन्दिनी देवी के बिना जाने ही उनके अन्दर सब कुछ बुरी तरह टूट जाता है। एक ओर उनका धर्म–कर्म दूसरी ओर अपने पुत्र के प्रति उनकी ममता जिसमें पुत्र की ममता ने उन पर विजय पायी और वह मार्था को बहू स्वीकार कर लेती है परन्तु धर्म कर्म के भ्रष्ट होने के भय ने उनके प्राण ले लिये। क्योकि मार्था उनकी दृष्टि में म्लेच्छ है, म्लेच्छ से विवाह करना अधर्म है।"[1]

आगे वर्मा जी रामसजीवन के द्वारा पिता राम समुझ पर व्यंग्य करवाते हैं–"म्लेच्छ और विधर्मी सिल्वेनिया जोजेफ भी थी जिसे आपने शुद्ध करके हिन्दू बनाया और उनका नाम शैलजा रख कर उसका विवाह राजा पृथ्वी पाल सिह से कर दिया था। इसलिए तो आप को पॉच गाँव दिये थे, राजा पृथ्वीपाल सिह ने और आज आप ताल्लुकदार राम समुझ पाण्डेय हैं।"[2] जिससे ब्राह्मणो की खोखली मान्यताओं पर प्रहार करवाते दिखते हैं। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' में वर्मा जी मानव जीवन की जिन प्रमुख प्रवृत्तियों–बुद्धि, भाग्य और भावना के माध्यम से बनिया, क्षत्रिय, ब्राह्मण के यथार्थ स्वरूप की अभिव्यजना की है क्योकि ऐसा लगता है कि यहा तक आते–आते वर्ण व्यवस्था के पारम्परिक रूप के प्रति वर्मा जी की आस्था समाप्त हो गयी है।

'प्रश्न और मरीचिका' के जयराज उपाध्याय का यूरोपीय युवती से विवाह से खान–पान से वचित होना, हिन्दू वर्ण व्यवस्था की ही विडम्बना दिखाई देती है

---

1 सवर्हिं नचावत राम गोसाई, भगवती चरणवर्मा, पेज 115-116
2 सवर्हिं नचावत राम गोसाई–भगवती चरण वर्मा, पेज 114

तथा 'भूले बिसरे चित्र' के बाबू वटेश्वरी एडवोकेट का विदेश से लौटने पर जाति बहिष्कृत होना तथा ज्ञान प्रकाश का विलायत से लौटने पर गाँव नहीं जाना, इसी आडम्बर हीन व्यवस्था का द्योतक है।

'भूले विसरे चित्र' उपन्यास में वर्णव्यवस्था की कट्टरता समाप्त होती दिखाई देती है। निम्न जाति के लोग भी शिक्षित एव सभ्य होकर समाज का नेतृत्व करते हैं। इसी उपन्यास का गेदालाल जागरूक नेताओं के रूप में दल का प्रतिनिधित्व करता है। वह ज्ञान प्रकाश से कहता है-''जी अभी सहयोग कीजिए, स्वराज लीजिए लेकिन हम लोगो को जिन्दा रहने दीजिए। हम लोग तो आप लोगों की गुलामी करने के लिए ही पैदा हुए हैं।''[1] इस प्रसग से ऐसा लगता है कि यह हिन्दुओं की घृणा के प्रतिकार का अछूत वर्ग द्वारा प्रथम प्रयत्न था लेकिन यह तो सैद्धान्तिक ज्यादा लग रहा है व्यावहारिक रूप से अभी भी जाति भेद की कमजोरी दिखाई पड़ रही है। क्योंकि शूद्र वर्ग में अभी खाना-पीना, उठना-बैठना, बराबरी के हिसाब से नहीं हो रहा है।

अछूत समस्या और समाधान :

वर्णव्यवस्था का आधार शुरू मे कर्म पर था बाद में उच्च वर्णो की कुत्सित मानसिकता ने इस व्यवस्था को बिगाड़ कर कर्मणा से जन्मना कर दिया। इसी संकीर्णता से अस्पृश्यता की समस्या समाज में प्रवेश की। हिन्दू समाज के सबसे निचले स्तर का व्यक्ति समस्त समाज की सेवा करने वाला सभी अधिकारो से वचित रहा। यहा तक कि सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक अधिकारों से वचित कर दिया गया। वह नाम मात्र का हिन्दू रह गया। समाजशास्त्रियो के अनुसार अस्पृश्यता की समस्या तीन रूढिवादी मान्यताओ पर आधारित है। खान पान सम्बन्धी नियम, विवाह का सम्बन्ध, मन्दिर तथा धार्मिक उत्सव। अछूत के साथ भोजन करना, दूर रहना, उसके छूने मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते थे। उसका मन्दिर तथा धार्मिक उत्सवों में प्रवेश वर्जित था। पशुओं से भी

अधिक घृणित व्यवहार किया जाता था। वह समाज के उच्च वर्णों के लिए सेवा का कार्य करता था फिर भी उसे जीवन जीने का समान अधिकार नहीं था। यहाँ तक कि उसकी छाया से भी परहेज था। 'टेढेमेढे रास्ते' में वर्मा जी ने निम्न वर्ण का जो वर्णन किया है वह युगसत्य ही मालूम पड़ता है। रामनाथ तिवारी जो ताल्कुकेदार हैं उनकी दृष्टि में शूद्र पशु से भी गया गुजरा है-''अबे ओ कलुआ के बच्चे-सोने लगा। साले मारे हन्टरो के खाल उधेड़ दूगा।''[1] कलुआ फिर चौंक कर पखा झलने लगता है।

जाति व्यवस्था के इस रूढि को वर्मा जी ने भूले बिसरे चित्र के माध्यम से विरोध दर्ज किया। उस समय ऊँच-नीच की भेदभावना इतनी प्रबल थी कि चमार, ब्राह्मण के कुएँ से पानी तक नहीं भर सकता था। इस जड होती हुई समाज व्यवस्था मे भी हमीरपुर के मुशी रामसहाय जैसे प्रगतिशील मानवीय विचारो वाले हैं, जो अपने कुएँ के आधे हिस्से का पानी चमारो के उपयोग के लिए देते हैं, पर इस प्रकार के प्रगतिशील प्रयत्नो को तत्कालीन मध्यवर्ग में सदैव विरोध का भी सामना करना पड़ता था। विद्रोह का कारण यह था कि क्या जिस कुए से चमार पानी भरते हैं उस कुएँ से ब्राह्मणो के पानी लेने से ब्राह्मणो का धर्म बच सकेगा? ब्राह्मण उस कुए से तभी पानी ले सकते हैं जब चमारो को उससे पानी भरने को मना कर दिया जाय।''[2] एक तरफ से राम सहाय के ऐसा न करने से ब्राह्मणो के घृणित व्यवस्था का विरोध तथा दूसरी ओर प्रगतिशील विचारों का समाज मे उदय होता है।

वर्मा जी ने अछूत समस्या का चित्रण 'सीधी सच्ची बाते' मे इस प्रकार से उजागर किया है-''यह ब्राह्मण अपने को देवता कहता है, यह क्षत्रिय अपने को राजा कहता है, यह बनिया अपने को धनपति कहता है और फिर आता है शूद्र, यह अपने को सेवक कहता है अपने को गुलाम कहता है, अपने को परजा

1 टेढेमेढ रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 175
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 356

कहता है। यह पतित हैं, यह कायर है, यह निर्धन है। इसके बाद आते हैं अछूत-धानुक, चमार, पासी। इनसे भी नीचे हैं चाण्डाल। इन लोगो को छुआ तक नहीं जाता।''[1] इसलिए इन्हे अछूत कहते हैं इस समस्त विभेद का कारण, मनुष्य के शारीरिक सामर्थ्य एव बौद्धिक बल है। इस समस्या को युगों-युगों से लाया जा रहा था। जिसे वर्मा जी ने निर्भीक होकर अपनी लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की।

उच्च वर्णो के अभिमान पर वर्मा जी ने 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास के जसवत कपूर के माध्यम से करारा व्यग्य किया है।

''हमारे समाज का बौद्धिक नेतृत्व ब्राह्मण के हाथ मे है अधिकाश ब्राह्मण निरामिष भोजी हैं, हमारा आर्थिक नेतृत्व बनिये के हाथ मे है और देश का बनिया निरामिष भोजी है। ब्राह्मण सामाजिक शोषण का प्रतिनिधि है, बनिया आर्थिक शोषण का प्रतिनिधि है। यहॉ धार्मिक ढोंग, आडम्बर, जातिवाद, छुआछूत आदि ने मनुष्य को पशुओं से भी गया बीता बना दिया है- कितनी भयानक हिंसा है इस सबमें। तुम गाय की पूजा कर सकते हो गोबर से अपनी रसोई लीप सकते हो, तुम कुत्ता बिल्ली अपने घरों में पाल सकते हो, तुम हिरणो को आश्रमो मे प्रश्रय दे सकते हो, लेकिन मनुष्य को तुमने अछूत बना दिया है, उसके स्पर्श मात्र से तुमको नहाना पड़ता है, तुम्हे अपने को शुद्ध करना पडता है, यह तो है ब्राह्मणों की अहिंसा। तुम मदिर बनवा सकते हो, धर्मशालाए बनवा सकते हो, तुम उदाब्रत बॉट सकते हो, तुम भिक्षा दे सकते हो, लेकिन तुम सूद पर सूद मे मनुष्य का रक्त चूस सकते हो, लम्बे मुनाफे के लिए तुम समाज मे अभाव और दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा कर सकते हो, यह है बनिये की अहिसा।''[2] इस कथन से वर्मा जी ने यह चित्रित किया है कि समाज मे बौद्धिक एवं आर्थिक हिसा ने अहिसा का लबादा ओढ कर निम्न वर्णो के शोषण द्वारा देश के

---

1 सीधी सच्ची बातें, भगवती चरण वर्मा, पेज 34
2 सीधी सच्ची बातें, भगवती चरण वर्मा, पेज-35

प्रकाश कहता है-"यह क्या बक रहे हो गंगा? मैंने इनको बुलाया है, इनसे बात करने के लिए। इस आन्दोलन में हमारे देश के अछूतों का कोई योग नहीं है और देश मे अछूतो की कुल सख्या छ करोड़ है, इन लोगो का सहयोग हमें चाहिए।"[1] ज्ञान प्रकाश स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए अछूतों का सहयोग वाछनीय मानते हैं। वह गेंदा लाल से कहते हैं-'अरे बैठिये भी। किसी बात का ख्याल न कीजिए। हम लोग छुआछूत का भेदभाव मिटा चुके हैं। महात्मा गाधी ने इस बात का बीडा उठा लिया है।"[2] गेंदालाल व्यग्यात्मक रूप में कहता है-"जी, यह आन्दोलन इसके बारे में भला मेरा क्या ख्याल हो सकता है ये सब तो आप लोगों की चीजें हैं। हम अछूतों को भला इस सबसे क्या करना? हमें तो जनम-जनम तक आप लोगों की गुलामी ही करनी है।"[3] ज्ञान प्रकाश जहाँ पर प्रगतिवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करता है वहीं पर गगाप्रसाद एक दकियानूसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। गगा प्रसाद के शब्दो मे-"चमार! तुम यहाॅ इस कमरे में कैसे घुस आये? निकलो यहाॅ से, निकलो।"[4] इस प्रकार की सामाजिक उपेक्षाओं से अछूत वर्ग दो विचारों में बंट गये; एक तो स्वतन्त्रता प्राप्ति में अपनी शक्ति देखता था दूसरा इस सामाजिक शोषण और घृणा से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले ही मुक्ति चाहता था। जिसका फायदा अग्रेजी सरकार ने उठाया।

आधुनिक युवा वर्ग में जाति एव वर्ण-व्यवस्था के प्रति विद्रोह तीव्र रूप मे आगे बढता हुआ अस्पृश्यता को वैधानिक ढग से अपराध घोषित कराया। राजनीतिक क्षेत्र में गाधी जी ने हरिजनों के उद्धार के लिए विविध रचनात्मक कार्य किये। खान-पान, शादी-विवाह, मन्दिर-प्रवेश, धार्मिक उत्सव मे समानता के व्यवहार प्रस्तुत किये।

वर्मा जी के "सबहिं नचावत राम गोसाई" उपन्यास में रघुराजसिंह काग्रेसी विचारधारा का प्रतिनिधि है। वह अपने को काग्रेसी कहता है, जाॅत-पांत

---

1 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-379
2 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-378
3 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-378
4 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-379

में विश्वास नहीं करता है। 'सीधी सच्ची बातें' का जगत प्रकाश गाधीवादी है, वह सवर्ण-असवर्ण सबके यहां भोजन करता है। बाबू राम गांधी को देवता मानता है और कहता है कि गांधी आदमी थोड़े हैं वह तो देवता हैं। यह छुआछूत तो मनुष्यों पर लागू होते हैं देवताओ पर थोडे।

'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में वर्मा जी ने चौधरी सुखलाल और शिवदुलारी का विवाह आर्यसमाजी ढंग से सम्पन्न करवाया है तथा उस दावत में जयप्रकाश, जमील अहमद, बाबूराम मिश्र आदि काग्रेसियों द्वारा भाग लेना महात्मा गाधी के हरिजनोद्धार योजना का प्रायश्चित रूप दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार से अछूत समस्या पर समग्र दृष्टि डालने पर वर्मा जी के उपन्यासों मे अछूत समस्या के प्रति काफी स्वस्थ एव प्रगतिवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है।

समाज मे नारी का स्थान और उसकी विविध समस्याएं :

किसी भी समाज में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण है। कारण कि सामाजिक सरचना में परिवार रूपी संस्था का अपना महत्व है जिसकी परिकल्पना स्त्री एवं पुरूष के संयोग से विवाह, विवाह से सन्तान की उत्पत्ति होती है। इन सब के सम्मिलन से परिवार एव समाज का निर्माण होता है। अत सामाजिक दृष्टि से स्त्री का अपना महत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। किसी भी समाज की उन्नति एवं अवनति उस समाज में स्त्री की स्थिति पर आधारित होती है।

उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा ने पुरूषों की भाति नारी पात्रों का विविध वर्गो से चुनाव कर अपने उपन्यासों मे सजीव चित्रण किया है। ये पात्र समाज में व्याप्त कुरीतियो, विकृतियों, जटिलताओं को प्रस्तुत करने के कारण; विभिन्न क्रिया-कलापों तथा स्वभावों से युक्त होने के कारण अनेक रूपों में मुखरित होकर आकृष्ट करते हैं।

"वर्मा जी प्रगतिवादी चेतना के कलाकार हैं, नूतन को ग्रहण करने तथा अनुपयोगी पुरातन को परित्याग करने की उनमे जन्मजात प्रवृत्ति है।"[1] इस प्रवृत्ति के कारण उन्होने समाज मे नारी की बिगड़ती दशा को देख कर अपने उपन्यासो का विषय बनाया और उनकी समस्याओं को विस्तृत धरातल पर चित्रित किया है। इसे निम्न रूपो मे देखा जा सकता है-विवाह समस्या, प्रेम एव यौन समस्या, पारिवारिक समस्या, नारी सम्बन्धी अन्य समस्याए।

विवाह समस्या - विवाह सस्था समाज निर्माण की प्रक्रिया मे प्रथम एव अनिवार्य पहलू है। यौन सम्बन्धो से उत्पन्न उत्तरदायित्व को सही दिशा प्रदान करने के लिए सम्भवत विवाह संस्था का जन्म हुआ। यौन स्वेच्छाचार को विवाह ने एक सीमा तक नियन्त्रित किया। कालान्तर में विवाह को धर्म से सयुक्त कर कामसिद्धि का आधार माना गया। इस प्रकार परिवार का जनक होकर भी विवाह एक पारिवारिक-सामाजिक मूल्य बन गया। लेकिन धीरे-धीरे विवाह के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण निरर्थक हो गया है। विवाह को आत्माओं का पुनीत मिलन, जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध, स्त्री-पुरूष का स्थायी बन्धन आदि जैसी धारणाए क्षीण हो चुकी हैं। आज कमोबेश विवाह एक समझौता अथवा मैत्री सबंध के रूप मे स्वीकार किया जाने लगा है।

वर्तमान अर्थव्यवस्था, औद्योगिक क्रान्ति, नारी जागरण और शिक्षा के प्रभाव ने वैवाहिक मूल्यों को नवीन आयाम दिये हैं। स्वच्छन्दता की भावना एव व्यक्तिवादी जीवन दर्शन ने विवाह की परम्परागत धारणा को आमूल परिवर्तित कर दिया है। वैवाहिक जीवन में तलाक के प्रवेश से परम्परागत वैवाहिक मूल्यों को आघात पहुचा है। प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, आदि के प्रति मूल्यगत धारणा विकसित हो रही है।

उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा का प्रतिपाद्य लम्बे समय को आत्मसात करता है, एक तो परम्परावादी जो सनातनी विवाह प्रणाली को महत्व देता है तथा

---

1 भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पेज 99

दूसरा विवाह का महत्व प्रेम में स्वीकार करता है और प्राचीन नारी –विवाह व्यवस्था की आलोचना कर अपेक्षित स्वतंत्रता चाहता है। अत वर्मा जी के साहित्य मे पुरातन एवं नूतन दोनों विचार धाराओं के पात्र हैं, जिनके चरित्र–चित्रण में लेखक अपने को तटस्थ बनाये रखने मे सफल रहा है।

वर्मा जी विवाह को एक सामाजिक बन्धन स्वीकार करते हैं। 'पतन' उपन्यास मे प्रतापसिह स्वभावत षडयन्त्रकारी एव कामुक व्यक्ति है। वह स्त्रियों को भ्रष्ट करने में प्रकाश से कहता है–"यही नहीं समझे? जानते हो, मनुष्य का क्या स्वभाव है? वह सदा नयी वस्तु ढूढा करता है। मनुष्य प्राय अपनी स्त्री से बाद में उतना प्रेम नहीं करता, जितना वह पहले करता है यही इसका कारण है। जब तक मनुष्य की इच्छा तृप्त नहीं होती, तब तक वह स्त्री को चाहता है। विवाह करने के बाद उसकी इच्छा तृप्त हो जाती है। फिर वह और आगे बढता है, समझे। दूसरी स्त्री में जो आकर्षण है, वह अपनी स्त्री में इसलिए नहीं होता। विवाह बन्धन दैवी नहीं उसका निर्माण समाज ने किया है। उसका एक मात्र लक्ष्य वासना को वशीभूत करने का है पर एक चीज जो प्राकृतिक है, उसका नाश नहीं हो सकता। फिर भी विवाह बन्धन बडे काम का है। शायद वह आवश्यक है, क्योकि वह समाज को जीवित रक्खे है।"[1] समाज में अराजकता से बचने तथा सुव्यवस्थित जीवनक्रम व्यतीत करने के लिए विवाह–व्यवस्था को नितान्त आवश्यक मानते हैं।

उपन्यासकार यह मानता है कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक संगठनों मे योग देना उसका कर्त्तव्य है। विवाह न करके वह कर्त्तव्य से विमुख हो कर अराजकता को प्रश्रय देता है। 'चित्रलेखा' में चित्रलेखा कहती है–"स्त्री अबला है, प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह एक अबला को आश्रय दे? . एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है उससे तुम विमुख होते हो"[2]

1 पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज–19
2 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पेज 124

विवाह के दो पहलू हैं- प्रथम आत्मिक सम्बन्ध, प्रेम और ममता, जिसका उल्लेख आवश्यक है, दूसरा आर्थिक पहलू है जिसे किसी भी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वर्मा जी के उपन्यासों में दोनों पहलू का चित्रण हुआ है। बीज गुप्त विवाह के आत्मिक पक्ष को महत्व देता हुआ कहता है-''स्त्री पुरूष के चिर स्थायी सम्बन्ध को ही विवाह कहते है''[1] किन्तु कुमारगिरि विवाह शब्द को समाज द्वारा निर्मित बताते हैं। शास्त्र स्त्री और पुरूष के सम्बन्ध को पवित्र बना कर समाज मे मान्य करा देता है। बीजगुप्त तुम अर्धसत्य की शरण ले रहे हो।''[2]

वर्मा जी के 'तीन वर्ष' उपन्यास में अजितकुमार के माध्यम से वैवाहिक उद्देश्य को अभिव्यक्त किया गया है, जिसका उद्देश्य दैहिक न होकर लैकिक है। लेकिन प्रारभिक उपन्यासकारो से चित्रित मात्र वह आगे बढने को तैयार नहीं और न उदारवादी दृष्टिकोण ही अपनाता है-''स्त्री को आश्रय देना उसकी रक्षा करना, यह पुरूष का कर्त्तव्य है। इसलिए प्रत्येक पुरूष का कर्त्तव्य समझा गया है कि वह एक स्त्री को आश्रय दे साथ ही उस स्त्री को अपना कर अपने को पूर्ण बनाये। फिर कामवासना का भी प्रश्न स्त्री और पुरूष के साथ होने से हल हो जाता है, इसलिए विवाह का जन्म हुआ।''[3] विवाह सम्बन्धी गम्भीर मामलों में माता-पिता की अनुमति एवं सुझाव वर्मा जी नितान्त आवश्यक मानते है। इसी अभिप्राय से रमेश के वैवाहिक दृष्टिकोण का खंडन अजित द्वारा करके अपनी मान्यता को 'तीन वर्ष' में स्थापित करते हैं।

वहीं पर 'तीन वर्ष' की नायिका प्रभा स्वच्छन्द विचारों की होने के कारण विवाह को स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध को भावना पर आधारित न होकर आर्थिक सुविधाओं पर आधारित बताती है, जो विवाह को आर्थिक समझौता मानती है। आगे वह कहती है ''मैं तो विवाह को वह संस्था मानती हूँ जिसके द्वारा पुरुष स्त्री के भरण-पोषण तथा उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है, काम वासना

---

1 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पेज 67
2 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पेज 67
3 तीन वर्ष, भगवतीचरण वर्मा, पेज 50

का प्रश्न बाद में उठता है।"[1] वह बिना विवाह किये ही अपने विश्वविद्यालय के दिनों के दोस्त रमेश से अवैध काम-सम्बन्ध स्थापित करती है; भावुकता, प्रेम, नैतिकता, मर्यादा आदि को वह बकवास समझती है। व्यावहारिक, स्वच्छन्द तथा उन्मुक्त होकर ऐश्वर्य और काम-भोग को ही वह जीवन का लक्ष्य मानती है।

'टेढे मेढे रास्ते' उपन्यास में उमानाथ का दाम्पत्य जीवन माता-पिता की इच्छा से बधने के कारण असफल है "मैंने अपनी पहली पत्नी से अपनी इच्छा के अनुसार विवाह नहीं किया, वह मेरे गले में जबरदस्ती मढ दी गयी है। मैं उससे प्रेम नहीं करता, कर भी नहीं सकता, वह मेरे लिए त्याज्य है।"[2]

विवाह के आर्थिक पक्ष पर जोर देते हुए उमानाथ अपनी पत्नी हिल्डा से कहता है "स्त्री पुरूष समान अधिकारों के भागी हैं, इनका सम्बन्ध, सुख-दुख व्यक्तिगत है, आर्थिक सम्बन्ध ही सम्बन्ध को बरकरार रखता हैं।" वहीं उमानाथ विवाह के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष को दोनों के पूर्ण विकसित सम्बन्ध का आधार मानता है।

"आखिरी दाँव" उपन्यास में रामेश्वर अपने स्वानुभूत जीवन में आर्थिक पहलू को स्वीकार करता हुआ कहता है-"गृहस्थी और गरीबी में बैर है। गृहस्थी अमीरों के लिए वरदान हो सकती है, लेकिन गरीबो के लिए वह अभिशाप है। गृहस्थी तभी जमाई जा सकती है, जब पास में सम्पत्ति हो, रूपया-पैसा हो।"

"भूले बिसरे चित्र" में विद्या अपने भाई नवल से विवाह के सम्बन्ध में कहती है कि असमान परिवारों में विवाह संभव नहीं, अगर होता है तो परिणाम भयानक होते हैं।

"सामर्थ्य और सीमा" में रानी मानकुमारी विवाह के आर्थिक पक्ष पर जोर देती है और मानसिक और आत्मिक सम्बन्धों को केवल एक समझौता ही मानती है। 'थके पाँव' में विवाह को "माया" नरक की जिन्दगी मानती है। वह स्वच्छन्द रहना ज्यादा श्रेयस्कर समझती है, जो आधुनिक नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती

---

1 तीन वर्ष-भगवती चरण वर्मा, पेज-50
2 टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज-90

है। ''थके पाँव'' के नवम् परिच्छेद में लेखक विवाह समस्या को प्रस्तुत करता हुआ कहता है 'माया ने विवाह करने से इनकार कर दिया – विवाह नहीं करेगी तो क्या करेगी? हर एक मध्यमवर्ग का आदमी अपनी लड़की का विवाह करने की बात सोचता है, लेकिन लड़की का विवाह करने वाले मध्यवर्गीय व्यक्ति को अत्यधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। मध्यवर्ग वाले व्यक्ति के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण सम्पत्ति का मोह होता है। उच्चवर्ग के पास पैसे की कमी नहीं, निम्न वर्ग के पास पैसे नहीं, लेकिन वहाँ दहेज की माँग नही है।''

विवाह का एक पक्ष यौनिक है, क्योंकि यौन-सम्बन्ध शारीरिक आवश्यकता है। अत अनमेल विवाह का रूप 'रेखा' उपन्यास के रेखा एव प्रभाशंकर के वैवाहिक जीवन से झलकता है। इस बात की पुष्टि ज्ञानवती और शिवेन्द्रधीर के विवाहोत्सव के समय होती है और रेखा को अपनी गलती का आभास होता है-''एक अनजाने पुरुष और एक स्त्री में केवल यौन-सम्बन्धों के कारण ही सामीप्य हो सकता है-उसके बाद उसकी सन्तानों के रूप में उन दोनों के हित एक हो जाते है।''[1]

'रेखा' उपन्यास में वर्मा जी ने स्वच्छन्द प्रेम तथा वैवाहिक चुनाव का सवाल प्रभाशंकर और देवप्रिया के वर्तालाप के माध्यम से उठाया है-''माता जी! आधुनिक युग में लड़कियाँ तो स्वयं अपना पति चुना करती हैं, आप चिन्ता करना छोड़ दे।''[2] यहाँ पर बदलते जीवन मूल्यों एवं मान्यताओं का आभास होता है।''

'भूले विसरे चित्र' के मुंशी हरसहाय गुशीहर सहाय पारम्परिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हुए विवाह को एक दैवी बन्धन स्वीकार करते हैं।

वर्मा जी युगीन आधुनातन मान्यताओं को नकारते हैं और उनका विचार है कि विवाह-सम्बन्धी गम्भीर मामले माता-पिता की अनुमति एव सुझाव से ही हल हों। ''प्रश्न और मरीचिका'' के जयराज उपाध्याय अपनी पुत्री लता का विवाह

---

1 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज-193
2 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज-52

स्वेच्छा से करने की छूट देते हैं। वह अपनी पत्नी से कहते है-"लता के योग्य वर तो मुझे अपनी जाति और समाज में कहीं दिख नहीं रहा है। फिर वह खुद समझदार है, अपने लिए स्वय वर ढूढ सकती है। सामाजिक मान्यताएँ बड़ी तेजी से बदल रही हैं।"[1] इन स्वच्छन्द विचारो के वशीभूत होकर 'रेखा' उपन्यास की रेखा की तरह लता का भी विवाह असफल हो जाता है, पारिवारिक सुख नष्ट हो जाता है। प्रभा, लता और रेखा के चरित्र से यह स्पष्ट होता है कि वैवाहिक स्वतंत्रता का समर्थन कर लेखक ने आधुनिक नारी की सृष्टि की है। लेखक का दृष्टिकोण स्वच्छन्द प्रवृत्ति का आधुनिक नारियों के चित्रण में अन्य समकालीन उपन्यासकारो से भिन्न उनके विकृत सामाजिक दृष्टिकोण तथा पाश्चात्य सस्कृति के अंधानुकरण और मूल्यहीन, आस्थाविहीन जीवन-दर्शन का पर्दाफाश करना रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वर्मा जी भारतीय सस्कृति एवं आदर्शों के अनुचर हैं, जिससे वे अपने पात्रों के साथ न्याय करने में असमर्थ हैं। इस प्रकार से यह देखा जा सकता है कि वैवाहिक समस्याओं का सामाजिक दृष्टिकोण के विविध परिवर्तनों को वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में उठाया है।

दहेज की समस्या :

भगवतीचरण वर्मा के कई उपन्यासो में विवाह तथा दहेजप्रथा की समस्या का चित्रण हुआ है। 'पतन' उपन्यास में वैवाहिक समस्या सुभद्रा के माध्यम से स्पष्ट की गयी है। सुभद्रा के पिता की मृत्यु बचपन में हो जाती है। माता की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण सुभद्रा का विवाह तत्कालीन बाल विवाह की प्रथा के अनुरूप बचपन मे नहीं हो पाता। यथेष्ट धन न होने के कारण सुभद्रा का विवाह बाल्यकाल में नही हो सका। बाद में हिन्दू समाज के नियमों के अनुसार वह विवाह के अयोग्य हो गयी। सुभद्रा और रणवीर का प्रेम भी विवाह मे परिणत नहीं हो सका क्योंकि प्रताप सिंह ने प्रकाशचन्द्र की सहायता से सुभद्रा को वाजिद अली शाह के महल मे भिजवा दिया। सामाजिक लांछनों से

---

1 प्रश्न और मरीचिका भगवतीचरण वर्मा, पेज 382

भयभीत होकर सुभद्रा की माँ आत्महत्या कर लेती है। मध्यवर्गीय समाज के अभावग्रस्त परिवारों में सुभद्रा जैसे अनेक चरित्र मिल जायेंगे।

मध्य वर्ग की विवाह तथा दहेज प्रथा की समस्या विद्या के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है। गंगा प्रसाद की पुत्री का विवाह सिद्धेश्वरी प्रसाद से होता है जो एक पी0सी0एस0 अफसर है। विवाह में दहेज लेने के लिए ज्वाला प्रसाद तथा नवलकिशोर को बीस हजार रूपया खर्च करना पडता है। ज्ञानप्रकाश सिद्धेश्वरी के पिता को अर्थ पिशाच कहकर उनके परिवार की निन्दा करता है और चाहता है कि उस परिवार में विद्या का विवाह न हो लेकिन नवल अपने मृत पिता के वचन को निभाकर अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहता है। इसलिए विवश होकर विद्या का विवाह सिद्धेश्वरी प्रसाद से कर देता है। विद्या नई पीढ़ी के नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। पति तथा सुसराल वालों के दुर्वव्यवहार पर रूष्ट होकर वह पति से सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है और नौकरी करके आत्मनिर्भर जीवन बिताना चाहती है।

विद्या एक ऐसी युवती है, जिसमें समाज की कुरूपताओं से विद्रोह करने का साहस ही नहीं दुस्साहस भी है। वह अपने ससुराल वालों को मुँहतोड जबाव देकर चली जाती है। जिस समय विद्रोह की आग उसके दिल में भड़कती है उसे छोटे बड़े का ध्यान नहीं रहता। अवसरानुकूल वह मारपीट पर भी उतारू हो जाती है, क्योंकि अपना अपमान उसे सह्‌य नहीं है। बिन्देश्वरी प्रसाद जो विद्या के श्वसुर हैं-जब अपमान जनक शब्द कहते हैं, तो वह शैतान कहीं का कहकर चप्पल लेकर उसकी ओर दौड़ती है। इस प्रकार वर्मा जी ने उच्च वर्ग के सरकारी अफसरों की दहेज प्रथा की प्रियता एवं उनके नृशंसतापूर्ण व्यवहार की कहानी 'भूले-बिसरे चित्र' में साकार की है। इन अफसरों की दृष्टि में लडकी के पिता की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का ही मूल्य होता है लड़की का नहीं। जज किस प्रकार स्वयं न्याय की तराजू लेकर रिश्वत लेता है, इसका उदाहरण विन्देश्वरी प्रसाद डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशंस जज है। विन्देश्वरी बाबू की अर्थलोलुप दृष्टि

का परिणाम विद्या को भुगतान पड़ता है और आठ हजार का दहेज देकर भी विवाह के थोड़े दिनों बाद विद्या को पितृगृह वापस जाना पड़ता है।

'थके पाँव' मे तीन साल तक लगातार फेल होने के बाद गोपीनाथ (बाकेलाल का पुत्र) चुगी का चालीस रूपये का इन्सपेक्टर बन सका था और इसी के विवाह के लिए केशव के पिता को 5000 का दहेज जुटाना था। मध्यवर्गीय परिवारो मे तो विवाह तय हो जाता है पर दहेज की मूल समस्या बनी रहती है। जिस पर प्रकाश डालता हुआ लेखक कहता है-रामचन्द्र ने उनकी बात स्वीकार कर ली लेकिन मामला दहेज का बडा टेढा था। बाबू बॉके लाल पॉच हजार का दहेज मॉगते थे, रामचन्द्र तीन हजार का दहेज देना चाहते थे, क्योंकि उनके लड़के केशव को तीन हजार का दहेज मिला था। इस प्रकार मध्य वर्ग में दहेज प्रथा वंश परम्परा अनुकूल चलती प्रतीत होती है। जो न कभी समाप्त होती है और न समाप्त करने के ईमानदारी से प्रयत्न किये जाते हैं।

बिगडती हुई आर्थिक दशा के कारण ही माया का विवाह विधुर डाक्टर से तय किया जाता है। जिसके पहली पत्नी से तीन बच्चे भी हैं। डाक्टर और माया की आयु मे पूरे-पूरे ग्यारह वर्ष का अन्तर है। इसी क्षण माया का विद्रोह रूप हमारे सामने आता है। वह विवाह प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है और पिता की क्रोध पूर्ण भावना का उत्तर देती हुई कहती है- "आप मेरे प्राण लीजिए, आप को पूरा अधिकार है क्योंकि आपने मुझे जन्म दिया है लेकिन जो न्याय की बात है, जो सत्य है, उसे कहने से आप मुझे नहीं रोक सकते। मैं अनुचित बात नहीं कह रही हूँ, मुझे विवाह नहीं करना है। अन्तिम बार कह देती हूँ।" माया आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो शिक्षा प्राप्त कर लेने के कारण अपने वर्ग और संस्कारों से उपर उठना चाहती है। वैसे केशव की मजबूरी ही है, जो वह विधुर डाक्टर से अपनी लड़की का विवाह करना चाहता है, क्योंकि अच्छे विवाह के लिए मोटी रकम दहेज के रूप में चाहिए वह उसके पास में नहीं। अत. वह किसी तरह अपनी कुमारी लड़की के हाथ पीले करना चाहता है। मध्य वर्ग के

माता-पिता विवाह में पुत्री की स्वेच्छा पसन्द नहीं करते इसीलिए मध्यवर्गीय विवाह-व्यवस्था का विरोध करती हुई माया हठस्वर में कहती है'' आप ने मुझे पढा लिखाकर मनुष्य बनाया है तो मेरे साथ आप मनुष्यता का व्यवहार कीजिए। मैं जानवर नहीं हूँ, जिसके साथ चाहा उसके साथ मुझे बाँध दिया, मैं सम्पत्ति नहीं हूँ जिसे चाहा उसे दे दिया। मुझमे भी भावना है, मुझमें भी व्यक्तित्व है, मैं अपना हित-अहित समझ सकती हूँ।''

हमारे लिए यह चिन्ता, क्षोम, शर्म व आश्चर्य का विषय है कि भारत मे आज भी दहेज का अजगर पसर कर बैठा हुआ है। सुनते हैं इस देश में एक पुनर्जागरण का काल आकर व्यतीत हो चुका है, दहेज को लेकर बीसियों कलाकृतियों वाहवाही लूट चुकी हैं। मगर हमारा समाज कुछ ऐसे ठाठ का बना है कि इस पर बहुत जल्दी असर नहीं होता न साहित्य का और न सुधार का। ऐसी गम्भीर परिस्थिति में इसका क्या निदान हो सकता है? यह किसी भी संवेदनशील नागरिक के लिए चिन्ता का विषय हो सकता है। भारत की अनेक पीढियॉ इसका निदान खोजते-खोजते बूढी हो गई। हिन्दुस्तान का औसत आदमी बूढा होते होते अपने को असुरक्षित महसूस करने लगता है और उम्र के साथ उसका लालच बढता जाता है, उसे फिर समझाना कठिन हो जाता है। चाहे वह पिता हो या ससुर, हमारे यहॉं औरतों को बुनियादी स्वतंत्रता ही उपलब्ध नहीं। जन्म से ही रूपा का पिता उसकी शादी की चिन्ता में घुलने लगता है और किसी भी संवेदनशील युवती के लिए यह एक ऐसा शाप है जिससे वह जीवन पर्यात मुक्त नहीं हो सकती। दहेज की इस शर्मनाक व्यवस्था का अन्त युवा पीढी ही करेगी। इतना तो अब कहा जा सकता है परिस्थितियों में परिवर्तन आ रहा है किन्तु रफ्तार चींटी की है। हमारे यहॉं आज भी ऐसा माहौल पैदा नहीं हुआ कि लडके-लडकियॉ अपनी शादी खुद तय करे। जहॉं-जहॉं युवा पीढी ने शादी का निर्णय स्वय लिया है वह न केवल सौदेबाजी से मुक्त रही है, बल्कि दहेजरहित वातावरण का निर्माण करने में भी योग दिया है।

आज यह बहुत जरूरी हो गया है कि युवा पीढी अपने माता पिता के हाथ से शादी तय करने का गौरव या अधिकार छीन ले और अपना भाग्य स्वयं निर्मित करे। यह तभी सभव है जब युवा पीढी वर्जनाओं में जीवन अस्वीकार कर दे और अपने अन्दर आत्मनिर्भर होने की योग्यता अर्जित करे।

भगवतीचरण वर्मा के चरित्रो में 'सीधी-सच्ची बातें' का जगत प्रकाश दहेज प्रथा को समाप्त करने के प्रति दृढ सकल्प है और उसके माध्यम से वर्मा जी इस प्रथा के विरूद्ध जनमत तैयार करने में बहुत सफल रहे हैं। जगत प्रकाश न केवल राजनीतिक क्षेत्र मे गांधीवादी तथा राष्ट्रीयतावादी है वरन अपने वैयक्तिक जीवन में भी वह सामाजिक रूढियों का विरोध करता है।

इलाहाबाद के प्रतिष्ठित वकील मिस्टर बंसगोपाल उसके यहॉं बरीक्षा का सारा समान लेकर जाते हैं "चपरासी ने चॉंदी की एक थाली मेज पर रख दी और उसने एक हजार चॉंदी के सिक्के उस थाली में सजा दिये। नारियल का एक गोला, फल और मिठाई उसने ट्रे में सजाकर ट्रे भी थाली के बगल में रख दी।"[1] साथ ही बंसगोपाल जगत प्रकाश से कहते हैं, "तुम्हारी बहन ने पहले ही माता प्रसाद की लड़की के साथ तुम्हारी शादी तय करके गलती की थी। भला वह कितना दहेज दे सकते थे, मैं दस हजार रूपया नकद दहेज में दूँगा, अगर तुम डॉक्टरेट के लिए विलायत जाना चाहो तो तुम्हारा सारा खर्चा बर्दाश्त करूँगा। मैंने तुम्हारी बहन को सब बातें लिख दीं हैं।"[2] एकाएक जगत प्रकाश का मुँह तमतमा उठा-"मेरी बहन मुझे बेच नहीं सकती है और मैं बिकने को तैयार नही हूँ।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में दहेज समस्या 'भूले-बिसरे चित्र' की विद्या, 'थके पॉंव के केशव और 'सीधी-सच्ची बाते' की यमुना के माध्यम से व्यक्त हुई है। काफी पैसा दहेज में देने के बाद भी विद्या को ससुराल मे सुख नहीं मिलता और वह दु:खी होकर सदा के लिये अपने

---

1 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा, पेज-239

2 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा, पेज-239

3 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा, पेज-239

मायके वापस आ जाती है। केशव के पिता अपनी पुत्री के विवाह में उतना ही दहेज देने के लिए तैयार है। जितना उनको केशव के विवाह में मिला था और पैसों का प्रबन्ध न हो सकने के कारण यमुना जगत प्रकाश के जीवन से बहुत दूर चली जाती है। जगत प्रकाश द्वारा यह पूछने पर कि "क्या तुम्हारी रूपलाल से शादी हो गयी है।"

एकाएक यमुना फूट पड़ी। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे और जैसे वह अपना भार स्वय न सम्भाल सकती हो, वह जमीन पर बैठ गयी। "यह क्यों पूँछ रहे हैं देख नहीं रहे हैं, आप मुझे। यहाँ आप की तरफ से अम्मा निराश हो गयी थीं, चाचा जी निराश हो गये थे और सब लोगों ने मेरा विवाह कर दिया। मेरे रोने-कलपने की कोई परवाह नहीं की किसी ने, स्त्री कितनी बेबस होती है। फिर बाबू जी के बीस हजार रूपये भी पास थे। इन्होंने वह सारी रकम अम्माँ को दे दी, न देते तो इनसे कोई ले भी नहीं सकता था। अम्मा ने बस्ती में जमींदारी खरीद ली है। और वहीं चली गयी है, मैं तब से यहाँ हूँ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान भारतीय समाज आज भी इस दहेज प्रथा से मुक्त नहीं हो पाया यद्यपि विद्या और माया सदृश आधुनिक पढी लिखी नागरियाँ तथा जगत प्रकाश जैसे शिक्षित नवयुवक इस कुत्सित प्रथा का विरोध कर रहे हैं लेकिन समाज में इस तरह के बहुत कम लोग हैं, इनकी गिनती सौ में पाँच ही है। आज भी दहेज-प्रथा एक ज्वलंत समस्या बनी हुई है। वर्मा जी ने "भूले-बिसरे चित्र" में नारी-विक्रय की समस्या को भी उजागर किया है। इस प्रकार से वर्मा जी ने समस्याओं के पीछे बाल-विवाह, अनमेल विवाह आदि को दहेज प्रथा एवं क्रय-विक्रय की समस्या माना है। जो एक सभ्य समाज के लिए अभिशाप है।

दाम्पत्य जीवन एवं वैचारिक सामंजस्य की समस्या .

दाम्पत्य जीवन स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी के पारस्परिक सह-सम्बन्धों पर आधारित है। यह दाम्पत्य जीवन भारतीय धर्म और संस्कृति में पवित्रता के उच्च शिखर पर आरूढ है। स्त्री-पुरुष दोनों परिवारों के मूल हैं। दोनों के संयोग से

ही जीवन की धारा प्रवाहित होती है परन्तु धर्म की आड़ में पुरूष समाज अपने अह के कारण स्त्रियों पर अत्याचार किये हैं क्योंकि वह पति परमेश्वर है। पुरूष समाज ने स्त्री को असहाय और अबला बना दिया था। एक पत्नी के होते हुए भी पुरूष दूसरी पत्नी रख सकता है। वहीं पत्नी को इस अधिकार से भी वंचित रखा गया कि विधवा होने पर भी वैधव्य जीवन ही व्यतीत करे। पत्नी-धर्म के शाश्वत रूप में कभी भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पति से उसे चाहे सम्मान,प्रेम और आदर मिला, चाहे दासी और सेविका का सा शासन और निरादर, पत्नी अपने सत्य धर्म से कभी विचलित नहीं हुई।

किन्तु समय का रूख बदला, बींसवी सदी की आधुनिक नारी जागरूक होकर विद्रोह कर उठी और समाज में पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चलने की कोशिश की और समाज में गौरव शाली पद प्राप्त किया। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि, आद्योगिक युग, आर्थिक सम्बन्ध के बीच में आज की नारी भी दाम्पत्य सम्बन्ध को यथार्थ धरातल पर रखकर विचार करने लगी है। इस परिवर्तन से परम्परागत मानवीय सम्बन्धों में भी अन्तर्विरोध आने लगा। अत पति-पत्नी मे वैचारिक सामंजस्य का नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ। बीसवीं सदी के संक्रमण काल ने पति-पत्नी के पारिवारिक जीवन और दाम्पत्य जीवन को विविध रूपों में प्रभावित किया, जिसका चित्रण भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में भी काल क्रमानुसार परिवर्तित विचारधाराओ के आधार पर हुआ है।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में सामाजिक मान्यता के आधार पर पति-पत्नी के सम्बन्धों में परम्परागत स्वरूप एवं उसमें परिवर्तन की स्थिति दोनों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। पति-पत्नी के सम्बन्ध में एक स्थिति यह है कि प्रति शिक्षित आधुनिक विचारों से युक्त तथा पत्नी अशिक्षित, संकुचित, सकोची विचारो की होने पर मानसिक स्तर पर सामंजस्य नहीं बन पाता है। 'टेढे-मेढे रास्ते' उपन्यास में उमानाथ और महालक्ष्मी का सम्बन्ध ऐसा ही हैं। उमानाथ विदेशी युवती हिल्डा से विवाह कर महालक्ष्मी के लिए सौत लाता है। फिर भी महालक्ष्मी पति परायणता के तहत उमानाथ की दासी, नौकरानी, पैर की जूती

बनने के लिए तैयार है। जो कि एक पुरातन विचारों वाली आदर्श भारतीय नारी का चरित्र प्रस्तुत करती है। 'टेढे-मेढे रास्ते' की राजेश्वरी, महालक्ष्मी, 'भूले-बिसरे चित्र' की यमुना, सब पति की छाया मात्र हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' में वैवाहिक जीवन के बाहर प्रेम या शारीरिक सम्बन्धों का चित्र मुशी शिवलाल तथा झिनकी का, ज्वाला प्रसाद तथा जैदेई का जीवन-चित्र इसी ओर इगित करते हैं। ज्वाला प्रसाद की पत्नी यमुना इस सम्बन्ध को सहनशील हिन्दू नारी की भाँति स्वीकार करती हुई पति परायणता का परिचय देती है। वह विवाह को एक अटूट सम्बन्ध मानते हुए कहती हैं-"नम्बरदारिन का मोह कि वह तुम्हें मुझसे छीन सके। इस घर की मालकिन तो मैं हूँ। तुम नम्बरदारिन के साथ हँस-खेल भले ही लो, लेकिन रहोगे मेरे, हमेशा, हमेशा के लिए।"[1]

राजेश्वरी का देश-प्रेम तथा उदात्त चरित्र पति परमेश्वर की भावना का ही परिणाम है। वह पति से कहती है-'मुझको उसी में सुख है, जिसमें तुमको सुख है।"[2] वहीं आगे श्वसरु के द्वारा पति को घर से निकालने पर रामनाथ को लज्जित करती हुई कहती है-"जब वे आप द्वारा त्याज्य हैं तब भला मैं कैसे आप की हो सकती हूँ? जिस घर में मेरे स्वामी का अपमान और निरादर हो वहाँ मैं आदर पाऊँ, वहाँ मैं सुख से रहूँ, यह मेरे लिए लज्जा की बात है।"[3] सहचरी बन कर कांग्रेस जुलूसों में भी सक्रिय भाग लेती हैं।

इन सन्दर्भो से ऐसा स्पष्ट दिखाई पडता है कि वर्माजी के अधिकांश नारी पात्र पतिपरायण, पति परमेश्वर की भावना से ग्रसित हैं। लेखक का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण इतना पिछड़ा हुआ दिखाई पडता है कि अंग्रेज युवती साम्यवादी हिल्डा के सम्बन्ध में-"लेकिन उसके अन्दर वाली नारी-वह नारी, जो पुरुष का आलम्बन चाहती है, जो उससे रक्षा चाहती है, जिसका जीवन सेवामार्ग में अर्पित है, वह नारी विवाह और प्रेम के इस विकृत रूप को सहन न कर सकी।"[4]

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा – पेज–15
2 टेढे–मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा – पेज–29
3 वही – पेज–139
4 वही – पेज–101

सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में साम्यवादी युवती कुलसुम कावसाजी के स्वगत कथन द्वारा अपने विचार -"करूणा और समर्पण यही स्त्री के गुण हैं। यदि स्त्री से उसकी करूणा और उसका समर्पण ले लिया जाय तो सृष्टि का क्रम ही रूक जायेगा।"[1] कुलसुम का विवाह उसकी इच्छा के बिना होता है फिर भी वह भारतीय नारी की तरह सुखी दाम्पत्य जीवन बिताती है।

'प्रश्न और मरीचिका' की रीवा मदान, प्रमिला, मंजीर कौर और कान्ता सभी आधुनिक युग की स्त्रियाँ हैं, परन्तु सनातनी नारियों का प्रतिनिधित्व करती हुई पति को परमेश्वर मानती हैं। 'सामर्थ्य और सीमा' की मानकुमारी 'थके पाँव' की माधुरी तथा 'सबहिं नचावत राम गुसाई' की धनवन्ति कुंवर और गंगादेवी आदि पति-परायण नारियाँ हैं।

पति परायण नारी प्रत्येक स्थिति में पति के विचारों से किसी न किसी रूप में समन्वय स्थापित कर लेती है और दाम्पत्य जीवन की कटुता को बचा लेती है। वहीं पर प्रगतिवादी चेतना से मुक्त नारी नति के विचारों से असहमति रखती है और जीवन में दुखी रहती है। इस प्रकार के तमाम उद्धरण वर्माजी के उपन्यासों में देखने का मिलता है। उपन्यासकार ने 'चित्रलेखा' उपन्यास में एक नवीन स्थिति को पाठ्क के मानसिक पटल पर रखा है जहाँ पर बीजगुप्त और चित्रलेखा बिना विवाह के ही एक दूसरे के साथ रहते हैं। कारण कि उनके लिए प्रेम ही सब कुछ है, दोनों एक दूसरे के सच्चे सहृदयी हैं। बीजगुप्त कहता है -"स्त्री-पुरुष के चिरस्थायी सम्बन्ध को ही विवाह कहते हैं।"[2]

बीजगुप्त अपने दाम्पत्य सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए मृत्युजय से कहता है "आर्य। मैंने कहा था कि मेरा विवाह शास्त्रानुसार नहीं हुआ है, इसको स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। लोक की दृष्टि में मैं अविवाहित हूँ, पर मैं वास्तव में विवाहित हूँ। चित्रलेखा मेरी पत्नी है। यद्यपि चित्रलेखा का प्राणि-ग्रहण मैंने

---

1 सीधी सच्ची बाते भगवती चरण वर्मा, — पेज-135

2 चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा

शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमों के अनुसार भी नहीं कर सकता हूँ, फिर भी मेरा और चित्रलेखा का सम्बन्ध पति और पत्नी का सा है। मैं प्रेम मे विश्वास करता हूँ-और ऐसी स्थिति मे मेरा अब विवाह करना असम्भव है, क्योंकि मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी ऐसी नहीं हो सकती।''[1]

किसी भी दाम्पत्य-जीवन मे यदि किसी तीसरे व्यक्ति का प्रवेश हो जाय तो वह नरक बन जाता है। 'पतन' उपन्यास की सरस्वती एक पतिव्रता नारी है, उसका पति भावशून्य तथा स्वार्थी है लेकिन वह फिर भी प्रेम करती है। लेकिन पति-पत्नी के बीच भवानीशंकर के आ जाने से दाम्पत्य सम्बन्ध बिगड़ जाता है। वह भवानी शंकर की तरफ आकर्षित होती हुई पतन के गर्त में गिर जाती है।

'अपने खिलौने' उपन्यास में केरा चित्रकार तथा पति पीतमकोमल सगीतज्ञ के विचारो में सामंजस्य नहीं। केरा युवराज चित्रकार के आकर्षण में पड़कर अपने पति-पत्नी के सम्बन्ध खत्म कर लेती है।

'भूले-विसरे चित्र' के विन्देश्वरी और सिद्धेश्वरी की अर्थलोलुपता के कारण विद्या को दाम्पत्य जीवन निरा बकवास लगने लगता है क्योंकि दाम्पत्य-जीवन के बीच धनलोलुपता आनी ही नहीं चाहिए।

पति की यौन दुर्बलता एवं नपुंसकता के कारण स्त्री-पुरूष सम्बन्धों में तनाव एव कटुता 'रेखा' उपन्यास में आई है। पति से असन्तुष्ट वह पर पुरूषों के पास भटकती फिरती है। शरीर के संतरंगी नागपाश और आत्मा के उत्तरदायी संयम के बीच हिलोरे खाती हुई अन्त में पागल-सी दिखाई देती है।

दाम्पत्य-जीवन आर्थिक विपन्नता के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। उपन्यासकार ने 'आखिरी दाँव' में इसका बडा ही मार्मिक चित्रण खींचा है। अर्थ पिशाच, चमेली और रानी श्यामल को पतिब्रता नारी नहीं बनने देता। वह दर-दर की ठोकरें खाती हुई दाम्पत्य-सुख से अनभिज्ञ रह जाती हैं। रामेश्वर और जीवन

---

1 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज 18

राम जीवनभर अपनी पत्नी को अपना बनाकर नहीं रख पाते। रानी श्यामला ज्ञानचन्द्र से कहती है-''ऐसा न कहिए ज्ञानचन्द्र जी! इस दुनिया में रूपये किसे नहीं चाहिए? आज की दुनिया का सत्य और अस्तित्व ही यह रूपया है। इस रूपये के कारण जीवनराम ने मुझे खो दिया, मैंने जीवनराम को खो दिया। मैं जीवन राम की हमेशा रहूँगी। इस रूपये के बदले वह मुझे आप के हाथों सौप गया था, वह मुझे अपने से जुदा कर गया था। लेकिन मैं फिर कहती हूँ मैं सिवा जीवनराम के और किसी की नहीं हो सकती। आप अपना रूपया सँभाल लीजिए, मेरा जीवनराम अपने कर्ज से मुक्त हो गया है।'' इस प्रकार से इस उपन्यास के माध्यम से वर्मा जी के उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन के प्रति जो प्रतिबद्धता दिखाई देती है वह भारतीय नारी के पत्नी के उत्कृष्ट रूप का साकार करती है।

पर्दा प्रथा .

इतिहास को खगालने पर ऐसा लगता है कि भारत में पर्दा-प्रथा का प्रचलन पहले नहीं था। विद्वानो का मानना है कि इस कुप्रथा का प्रचलन मुस्लिम आक्रमण और शासन की ही देन है। समाज में उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओ में यह एक प्रमुख समस्या है। इससे नारी की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है जिससे स्त्री अधिकारों से वंचित होती है। समाज-सुधारकों ने अथक परिश्रम करके इस कुप्रथा को समाप्त कराकर स्त्री को चहारदीवारी से मुक्त कराया। प्रेमचन्द्र पूर्वयुग में यह प्रथा फैली हुई थी। प्रेमचन्द्र युग में इसका विरोध मुखरित हुआ। अन्य रूढ़िगत परम्पराओं के साथ इस प्रथा पर भी करारा प्रहार हुआ। वर्मा जी ने भी अन्य कुप्रथाओ की तरह अपने उपन्यास में इस प्रथा पर करारा व्यंग्य किया जिसका चित्र वर्मा जी के उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' में कई पात्रों द्वारा समर्थन तथा विरोध में दिखता है। इस उपन्यास की यमुना,रूक्मणी, जैदेई मुक्त नहीं हो सकी। विद्या के अधिवेशन में जाने पर यमुना कहती है-''बहू, विद्या को रोको लाहौर जाने से उन्नाव वाले क्या कहेंगे, उनसे बनने की जो थोड़ी

बहुत आशा है, वह भी टूट जायेगी। भले घर की लड़की बेपरदा होकर देश-परदेश घूमे, मर्दो से मिले जुले, बातचीत करे। यह तो बड़ा खराब है, दुनिया थूकेगी।''[1]

यही नहीं यमुना एक अन्य स्थान पर रुक्मणी का उत्तर देती हुई कहती है-''राम-राम तुम्हारे साथ दिल्ली घूमने पर लोग क्या कहेंगे? दो हाथ का घूँघट काढ तुम्हारे साथ चलूँगी तो लोग हसेंगे नहीं।''[2] उसके इस कथन पर गगा प्रसाद विरोध मे कहता है-''अरे घूँघट काढने की क्या जरूरत है? यह सब पुराना दकियानूसीपन छोड़ो भी।''[3]

इसी प्रकार से 'थके पाँव' में भी इस प्रथा को देखा जा सकता है। केशव अपनी पुत्री माया को बाजार जाने से रोकता हुआ कहता है-''मैं लिये आता हूँ। ये सब लडकियों का बार-बार जाना अच्छा नहीं लगता।''[4] वहीं आगे 'केशव' पुत्र की बीमारी के समय नौकरी का विरोध करते हुए भी अपनी पुत्र-वधू को नौकरी करने की स्वीकृति दे देता है, जिससे सिद्ध होता है कि परिवर्तित युग के साथ मानव के विचार भी परिवर्तित होते हुए युगबोध का आभास दिलाते हैं।

इस कुप्रथा के प्रचलन तथा तिरस्कार दोनों का स्वरूप वर्मा जी के उपन्यासो मे दिखाई पड़ता है। नारियों का प्राचीन एव रूढिगत मान्यताओं के प्रति विद्रोह दिखाकर, साथ ही अनुपयोगी और प्रगति के मार्ग में बाधक मानते हुए त्यागने की प्रेरणा भी प्रदान करते हैं।

स्त्री शिक्षा .

आज के भौतिकवादी युग में पुरातनपंथी मान्यताओं की नींव ढहती जा रही है जिससे समाज की हर दिशा बदल रही है। इस परिवर्तन का प्रभाव हर व्यक्ति पर पड़ा है। समाज-सुधारकों ने भिन्न-भिन्न आन्दोलनों से समाज में फैली

---

1 भूले विसरे चित्र भगवती चरण वर्मा- पेज-202
2 भूले विसरे चित्र भगवती चरण वर्मा- पेज-202
3 भूले विसरे चित्र भगवती चरण वर्मा- पेज-202
4 थके पॉव भगवती चरण वर्मा- पेज-202

कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया तथा इन कुरीतियों को त्यागने की प्रेरणा दी, और इस प्रभाव से नारी भी अछूती नहीं रहीं। शताब्दियों की परतन्त्रता से मुक्त हुई। धीरे-धीरे वे सार्वजनिक सेवा में प्रवेश कर घर की चहारदीवारी लाँघ राष्ट्र, जाति, धर्म व समाज आदि के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझीं। युगों-युगो से बाधित अपने कार्यक्षेत्र के अधिकारों को पहचाना। वह घरों के बाहर निकल कर परम्परागत सीमाओं को तोड़कर समाज में अपने महत्वपूर्ण योगदान द्वारा नवीनता को प्रतिस्थापित किया। पाश्चात्य प्रभाव के द्वारा स्वतत्र अस्तित्व की नवीन चेतना को प्रतिस्थापित किया। युगों से पुरूषों तले दबे अधिकारों को चुनौती दी। शिक्षा ने ही उसमें आत्मसंचार किया। आज की नारी पुरूष के विस्तृत अधिकार क्षेत्र की प्राचीरों को तोडने मे प्रयासरत है तथा अपने अनुसार व्यक्तित्व निर्माण की ओर अग्रसर है।

भगवती चरण वर्मा ने नारी शिक्षा पर सर्वप्रथम जोर दिया, उसका समर्थन किया। शिक्षा के द्वारा ही उसमें अपने अधिकारों के प्रति ज्ञान, कर्तव्यों के प्रति सजगता, एव आत्मविश्वास की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। उनके उपन्यासों में शिक्षा के विरोधी एवं समर्थक दोनों तरह के पात्र दिखाई देते हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' में जयराज उपाध्याय की पत्नी एवं 'थके पाँव' की माधुरी दोनों ही अपनी पुत्रियों कमश लता और माया के शिक्षा ग्रहण का विरोध करती हैं। माया बी0ए0 के बाद एम0ए0 करना चाहती है परन्तु आर्थिक विपन्नता के कारण नहीं कर पाती है। शिक्षा के विरोध में जीवन राम एवं उसकी पत्नी के विचार सर्वथा प्राचीन हैं। वह कहता है-"उसकी माँ ठीक कहती थी कि उसे पढाओ-लिखाओ नहीं, नहीं तो लौंडिया हाथ से निकल जायेगी। उसी की बात सच निकली।"[1] परन्तु 'भूले-बिसरे चित्र' की विद्या तो विवाह तय हो जाने पर भी भाई से पढाई पूरी करवाने का वायदा लेती है। शिक्षा द्वारा उसके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। शिक्षा की बदौलत विद्या आत्मनिर्भर बन जाती है तथा किसी पर बोझ नही बनती। 'थके

1 थके पॉव भगवती चरण वर्मा- पेज-113

पाँव' की सुशीला भी माया को आर्थिक स्वतंन्त्रता की शिक्षा देती है। माया की भाभी सुशीला जब अकेले पति को अस्पताल ले जाने लगती है तो उसका विश्वास इन शब्दो मे फूट पड़ता है-'इतनी शिक्षा पायी है मैंने किस दिन के लिए।'' पति का इलाज कराकर कुशलतापूर्वक लौटना तथा आर्थिक सघर्ष दूर करने के लिए सौ रूपये प्रतिमाह शिक्षिका की नौकरी करना, उसकी कर्त्तव्यों के प्रति सचेतता एवं वैचारिक आधुनिकता सिद्ध करती है।

शिक्षा के प्रभाव स्वरूप स्त्री ने जहा आर्थिक स्वाधीनता एवं आत्मविश्वास का भाव प्राप्त किया वहीं उसने नये सिरे से सोचने की क्षमता प्राप्त की। इसी कारण 'तीन वर्ष' की प्रभा विवाह को एक आर्थिक सम्बन्ध कहकर अपनी बौद्धिकता का परिचय देती है और गरीब रमेश के विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती। नारी के वैवाहिक दृष्टिकोण में भी अब परिवर्तन आने लगा है। वैवाहिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो गयी। 'प्रश्न और मरीचिका' की लता तथा 'रेखा' की रेखा-दोनों ने वैवाहिक स्वतंत्रता का परिचय देते हुए स्वेच्छा से विवाह किया। उन्होर्ने माता-पिता की स्वीकृति को आवश्यक नहीं समझा। आज नारी वैचारिक दृष्टि से इतना स्वतत्र हो गयी है कि आत्मनिर्भर होने पर वह विवाह करना आवश्यक नहीं समझती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्माजी ने पक्ष एवं विपक्ष दोनों पात्रों की सरचना करके शिक्षा के प्रभाव तथा उसकी आवश्यकता को ही अभिव्यक्त किया है। यह यथार्थ परिवर्तन नारी की दशा में शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त हुआ है।

विवाह विच्छेद की समस्या :

किसी परिवार के स्थायित्व में पति-पत्नी के भावनात्मक एवं वैचारिक सम्बन्ध ही महत्वपूर्ण होते हैं। परिवार का केन्द्र पति-पत्नी का सम्बन्ध ही होता है। जीवन मे सुख, समृद्धि, सम्पन्नता एवं स्वाभाविकता इन दोनों के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव पर आधारित होते हैं। पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता के सम्पर्क,

शिक्षा के प्रसार, आर्य समाज के सुधार आन्दोलनो एव कतिपय समाजिक परिवर्तनों ने स्त्री–पुरूष को समान अधिकार प्रदान कर वैवाहिक व्यवस्था की सनातनी प्रवृत्ति को प्रेम–विवाह में बदल दिया। जिसने हमारे समाज में पारिवारिक व्यवस्था को जर्जर कर दिया। वहीं पर पुरूष–समाज समान अधिकारों की वजह से, अपने अह के कारण स्त्री को बराबरी पर न देखने की मानसिकता ने भी इस सम्बन्ध में दरार पैदा कर दी। इस प्रकार से दाम्पत्य कटुता का परिणाम विवाह विच्छेद के रूप में आया जो ` लिया जो सभ्य समाज के लिए घातक है।

इस प्रकार की समस्या को वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में भी उठाया है। जिसमें स्त्रियॉ कटु दाम्पत्य के प्रति तो विद्रोह करती हैं लेकिन पति को तलाक देने पर सहसा तैयार नहीं हो पाती लेकिन विशिष्ट परिस्थितियों में ऐसा करने पर मजबूर होकर तलाक ले लेती है। "सामर्थ्य और सीमा" उपन्यास का ज्ञानेश्वर राव जब यूरोप में एक पोलिश युवती से दूसरा विवाह कर लेता है तो उसकी पहली पत्नी तलाक लेकर दूसरा विवाह करती है। जो आधुनिक युग में प्रगतिशील नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

'प्रश्न और मरीचिका' की गियोवान अपने पति जयराज उपाध्याय के द्वारा हंटरों से मार खाने पर पति–पुत्र को छोड इंग्लैण्ड चली जाती है और पति को तलाक देकर स्वतंत्र जीवन–यापन करने लगती है।

तथापि वर्मा जी आदर्शवादी दृष्टिकोण एवं भारतीय परिवार व्यवस्था के पुरातन संस्कारों के कारण तलाक जैसी गम्भीर समस्या को उठाने में कोताही करते हुए लगते हैं।

अनमेल विवाह की समस्या :

अनमेल विवाह की समस्या समाज में एक कोढ की तरह है जो समाज में वैचारिक स्वतत्रता, दहेज प्रथा, भौतिकता वादी सोच, आर्थिक विपन्नता के कारण समाज मे प्रचलित हुआ। जिसकी परिणति समाज में दुखद ही होती है। ऐसे विवाहों में स्त्री का आन्तरिक असन्तोष भले ही खुल कर समाने न आता हो लेकिन अन्दर ही अन्दर वह घुटन को महसूस करती है। अनमोल विवाह में किशोरावस्था की युवती का किसी उम्रदराज से विवाह उसके तमाम युवावस्था के अरमानों पर पानी फेर देता है जो आँसुओं के सहारे जीवन काटती है।

वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'रेखा' में रेखा और उसके प्रति प्रभाशंकर के अनमेल विवाह पर पूरा जीवन चित्र ही खींच डाला है। जिसमें जीवन में कटुता, दुखी दाम्पत्य-जीवन, नारीधर्म, पतिधर्म, मानवधर्म, सदेहास्पद जीवन, आदि गम्भीर मुद्दों पर प्रकाश डाला है।

माता पिता के विरोध करने पर भी रेखा स्वेच्छा से प्रौढ एवं वयस्क प्रो0 प्रभाशंकर से प्रेम विवाह कर लेती है। प्रेमभावना के प्रवाह में वशीभूत होकर श्रद्धावश तन-मन की जैविकीय आवश्यकता को दरकिनार कर दिया। जिसका अभिशाप मृत्यपर्यत दोनों को भोगना पड़ा। इस प्रकार रेखा अनमेल विवाह से ग्रस्त, सेक्स अतृप्ति से झकझोरित, कामोन्माद में पागल, नियति की हिलोरों में बहती हुई असाधारण नारी है। कभी-कभी पर पुरूषों से अपने शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर सन्तोष पाती है, तो कभी-कभी अपराधबोध की पीड़ा से ग्रसित दिखती है। जिससे उसके जीवन का सन्तुलन बिगड़ जाता है। अन्त में विक्षिप्त रूप में दिखाई पड़ती है।

प्रभाशंकर कहते हैं-''रेखा तुम्हारे कारण मैंने बहुत सहा है, लेकिन तुम्हे दोष नहीं देता। मेरे कारण शायद तुमने इससे भी अधिक सहा है, तुमसे विवाह करके मैंने तुम्हारे प्रति बड़ा अन्याय किया है, शायद एक तरह से तुम्हारे जीवन

को नष्ट कर दिया   आत्मा के धर्म के साथ शरीर का भी तो कोई धर्म है। अपने शरीर की भूख तो मैं जानता था, लेकिन तुम्हारे शरीर की भी कोई भूख हो सकती है यह मैं भूल गया था।''[1]

'आखिरी दाँव' की चमेली ससुराल वालों के अत्याचार के कारण रतनू के साथ भाग जाती है। फिर रतनू उसका सर्वस्व लूट कर उसे छोड़ कर भाग जाता है। ऐसी परिस्थिति में रामेश्वर ने उसे सहारा दिया। दोनों पति-पत्नी की तरह रहते हैं, उम्रदराज रामेश्वर को पाकर चमेली बहुत खुश दिखाई देती है कारण कि दोनो एक दूसरे को बहुत प्रेम करते हैं- यहाँ अनमेल विवाह है लेकिन समस्या नहीं-''चमेली रामेश्वर से प्रेम करती है। स्त्री का प्रेम आत्मसमर्पण का होता है, प्रथम बार चमेली को प्रेम मिला था और चमेली का सारा अस्तित्व रामेश्वर के अस्तित्व में लय हो चुका था। रामेश्वर और चमेली की उम्र में बहुत अधिक अन्तर था, लोगो को आश्चर्य होता था कि चमेली जैसी नौजवान और चचल स्त्री किस प्रकार एक अधेड आदमी से प्रेम कर सकती है, आश्चर्य करने वाले लोग यह न जानते थे कि चमेली जीवन के कटु और कठोर अनुभवों के बीच से गुजरने के बाद प्रेम की महत्ता को समझ गयी है। उसने प्रेम के रूप को देख लिया है, वह वासना से बहुत ऊपर उठ चुकी है, वह वासना का मजाक उड़ा सकती है।''[2] यहाँ पर ऐसा लगता है कि शरीर से तृप्त, प्रेम से अतृप्त चमेली का जीवन इस अनमेल विवाह में समस्या नहीं पैदा करते हैं।

विधवा समस्या :

हिन्दू समाज में विधवा प्रथा अनेक सामाजिक दोषों को आत्मसात करती हुई व्यक्ति और समाज के लिए कठोर समस्या है। पति की मृत्यु के पश्चात विधवा पत्नी दु:खसागर के बोझ को ढोती है। प्राचीन सामाजिक दृष्टिकोण इतना दुरुह था कि उसका उठना-बैठना, खाना-पीना, चलना-फिरना आदि सब समाज

---

1 रेखा भगवतीचरण वर्मा, पेज 148
2 आखिरी दाँव, भगवतीचरण वर्मा, पेज 105

की नजर में आलोचना के विषय थे। ऐसी स्थिति में पति के साथ सती होना आसान माना जाता था। नारी की इस दशा पर समाज सुधारकों की नजर गयी तथा इस प्रथा को समाप्त करने की कोशिश की गई। विधवा-विवाह सतीप्रथा के प्रतिरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ। जो अच्छे समाज के हित में था क्योंकि किसी भी विधुर एव विधवा को दूसरा विवाह करने का अधिकार होना चाहिए जिससे स्वस्थ्य समाज का जन्म हो।

देश मे स्वाधीनता के समय से समाज सुधारकों ने इस विसगति को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। विधवा नारियां भी परम्पराओं के बन्धनों को तोड़ कर नई मानसिकता जन्य चेतना से आक्रान्त हुई।

वर्मा जी ने भी अपने उपन्यासों में विधवा की समस्या के मूल कारणों का विशद विवेचना किया है। अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'पतन' में वर्मा जी ने सुभद्रा की विधवा माँ का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है- सुभद्रा की माता को जिस समय अपनी कन्या की अनुपस्थिति का पता लगा, उस पर मानो बज्रपात हुआ। पडोसियों ने कल्पनाएं की और समाज के मुखियों ने निश्चय किया कि सुभद्रा भाग गई। चारों ओर से सुभद्रा की माता को ताने मिलने लगे। एक ने कहा-"सयानी लड़की भला घर में कब तक रह सकती है।" दूसरे ने हाँ में हाँ मिलाते हुए योग दिया-"और घर में रणबीर जैसे जवान लड़के की पैठ हो। फलत बेबस सुभद्रा की माता को गंगा में डूबकर आत्म हत्या करनी पड़ी।"[1]

वर्मा जी ने अपने उन्यास 'चित्रलेखा' में चित्रलेखा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। चित्रलेखा एक ब्राह्मण विधवा है। "पति की मृत्यु के बाद उसका संसार अंधकार मय हो गया। उसे अनुभव हुआ की उसकी साधना तथा तपस्या, ये सब व्यर्थ गये। उसने कभी-कभी आत्महत्या तक की बात सोची, पर आत्महत्या महान पाप है, वह यह जानती थी, उसे बताया गया था कि तपस्या जीवन का प्रधान अंग है और विधवा का कर्त्तव्य है कि संयम-युक्त साधना।

1 पतन भगवतीचरण वर्मा, पेज 102

चित्रलेखा ने यह भी किया, परन्तु वह उसके लिए कठिन था। जिस समय तक पति जीवित था, वह पूजा कर सकती थी, तपस्या कर सकती थी और साधना में रत रह सकती थी क्योंकि इन सब का एक केन्द्र स्थित था-एक आधार उसके पास था- केन्द्र के टूट जाने पर उसकी तन्मयता विचलित हो गयी, विश्वास अपना आधार न पाकर डिग गया।''[1] चित्रलेखा अपने जीवन में चार व्यक्तियों से जुडी और उसका जीवन बराबर सघर्ष और विषम परिस्थितियो में डूबता-उतराता रहा। अन्त में उसे बीजगुप्त का स्थायी सहारा मिल गया।

''अपने खिलौने'' उपन्यास में अन्नपूर्णा बसल एक धनी विधवा स्त्री है जो आधुनिक समाज की प्रसिद्ध नारी है, उसमें ढलती जवानी के साथ धन का आकर्षण है, उपन्यासकार ने अन्नपूर्णा को अधिकतर हास्यास्पद ही दिखाया है। आधुनिक विचारों की होने के कारण वह रामप्रकाश और उसके बाद युवराज विशेश्वर प्रताप की ओर आकर्षित होती है पर उसका ऐसा जीवन नहीं लगता कि उसे समस्या के रूप में लिया जाय।

'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में जैदेई का वैधव्य एक मात्र ज्वालाप्रसाद की प्रेमवासना की पूर्ति के लिए ही नहीं किया गया है बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों में ठाकुर-बनिये के प्रबल संघर्ष का 'हत्या-आत्महत्या में परिणत होना, अंग्रेजी राज्य के प्रारिम्भक दिनों में मध्यवर्गीय सरकारी अफसर मे कर्तव्य एव भावना के अर्न्तद्वन्द द्वारा न्याय-अन्याय के पहलू में न्यायोचित उत्तर दायित्व का निर्वाह होना और इसी के मध्य निराश्रित विधवा नारी के जीवन की दु ख में डूबी कहानी उभरती है।

विधवा जैदेयी का एक मात्र उद्देश्य यह है कि वह अपने स्वर्गवासी पति की अभिलाषाओं को पूर्ण करें। पति के हत्यारे बरजोर सिंह को सजा दिलाने के लिए जैदेई नायब तहसीलदार ज्वाला प्रसाद की सहायता लेती है। बरजोर सिंह कानून के भय से आत्म हत्या कर लेता है। बाद में वही जैदेई ज्वाला प्रसाद से

---

1 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज 12

सहायता के अतिरिक्त अपनी प्रेमवासना की कसक मिटाकर उसे अपना बना लेती है। जैदेई के पास आर्थिक सुदृढता का अभाव न था, परन्तु परिस्थितियों की विवशताओं का सामना करने के लिए पौरूष-सम्पन्न पुरूष की आवश्यकता थी। जैदेई की मार्मिक पीड़ा का विश्लेषण करती हुई यमुना कहती है-"औरत सदा सहारा ढूढ़ती है। लम्बरदार के चले जाने पर लम्बरदारिन ने तुम्हारा सहारा चाहा। क्योकि तुम सहारा देने को तैयार थे, तो उसे तुम्हारा सहारा मिल भी गया। लेकिन तुम कहीं भाग न खड़े हो, उसे सहारा देना बन्द न कर दो, इसलिए लम्बरदारिन ने तुम्हारे सहारे का मोल चुकाया, धन से, मन से, तन से।"[1]

इस प्रकार वैधव्य की निरीहता ही उस अनैतिकता का कारण है, जिसका चित्रण जैदेई ओर ज्वालाप्रसाद के माध्यम से हुआ है। ज्वालाप्रसाद की कर्त्तव्य भावना के संघर्ष को चन्द्रभूषण के द्वारा-"आपने सौ अशर्फियां देकर बरजोर सिह की वेवा को उसकी खुदकाश्त वापस करा दी? बड़ा विशाल हृदय पाया है, आपने नायब साहब। बरजोर सिंह के प्राण लिए आपने उसके खिलाफ अपना वयान देकर और बरजोर सिंह की बेवा और अनाथ बच्चों को सौ अशर्फिया दे दी कि वे भूखों न मरने पावे। विश्वास नही होता नायब साहब, जरा भी विश्वास नहीं होता।"[2] ज्वाला प्रसाद एक साथ दोनों विधवाओं (जैदेई और बरजोर सिंह की विधवा) को सामाजिक और आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं।

'सामर्थ्य और सीमा' नामक उपन्यास विधवा समसया पर आधारित दिखाई पड़ता है। रानी मानकुमारी को पति की मृत्यु के पश्चात विदेश से लौटने पर पता चलता है कि राज्य दीवान खुशवतराय सारी अचल संपत्ति सरकार को सौंप कर राज्य सभा के सदस्य बन गये हैं। पति-वियोग में दु खी रानी को सरकार की कठोर नीति का सामना करना पड़ता है। एक ओर तो पति और पुत्र को खोकर मानसिक कुंठाओं का शिकार होती है तो दूसरी तरफ-जमींदारी के वैभव लुप्त होने

1 भूलेविसरे चित्र, भ्पगवतीचरण वर्मा, पेज 81
2 भूलेविसरे चित्र, भ्पगवतीचरण वर्मा, पेज 138

पर सामाजिक अवमानना सहती हुई घुट सी जाती है। कुठा सत्रास के सिवा कुछ नहीं मिलता। जीवन की महत्वाकांक्षा मातृत्व की प्रबल कामना और आदर्शो की जडता ने विधवा मानकुमारी को तोड़कर रख दिया।

'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास में यह दिखाया गया है कि हिन्दू समाज की निरीह विधवा नारी की घुटती जिन्दगी का सच्चा चित्र है। जिसे समाज सहयाता देना तो दूर, उलटे उसकी असमर्थता का लाभ उठाना चाहता है। मकोला, देवलकर, मसूर, शिवानन्द शर्मा आदि सभी आर्थिक संकटों से मुक्ति देने का आश्वासन देकर मानकुमारी के सुन्दर तन, निष्कलुष मन का भोग करना चाहते हैं, लेकिन उनकी मौन व्यथा में लहराते हुए अतृप्त सागर की उर्मियों के स्पन्दन का अनुभव कोई नहीं कर पाता।

इसी प्रकार 'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में अनुराधा के सात्विक विधवा जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। अनुराधा अपने विधवा जीवन को बडे ही साहसिक एवं सात्विक ढ्ग से निर्वाह करती हुई अपने छोटे भाई जगतप्रकाश को सबसे ऊँचा अफसर बनाने के सपने सजोती है। और अंत में अंग्रेजों की गोलियों से निहत्थे ग्रामवासियों को बचाते हुए स्चयं गोलियों से भून उठ्ती है।

इन प्रसंगों का अवलोकन करने पर ऐसा लगता है कि वर्मा जी में विधवा समस्या के मूलभूत कारणों को तो उठाया है पर इस समस्या का कोई समाधान नहीं प्रस्तुत कर सके हैं।

अवैध प्रेम की समस्या :

समाज मे मान्य पति-पत्नी के अलावा किसी से भी यौनिक सम्बन्ध हो वह अवैध ही माना जाता है तथा वह व्यक्ति समाज में दुश्चरित्र, की कोटि में आता है तथा पाप का भागी होता है। जिस समाज में शादी-विवाह व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा पर निर्भर नहीं अपितु, परिवार के कठोर नियंत्रण तथा समाज के अनेक अवरोधों के दमन में सम्पन्न होता है, तो इस दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप

अवैध प्रेम की समस्या स्वाभाविक होगी। वर्मा जी के अधिकांश मध्यमवर्गीय एव स्वतत्रा आधुनिक विचारों वाले पात्रों में प्रेम एव यौनिक कुठा विद्यमान है। वर्मा जी के कई उपन्यासों में अवैध प्रेम की समस्या दिखाई पड़ती है।

'पतन' उपन्यास की सरस्वती अपने पति प्रकाशचन्द्र से असन्तुष्ट होकर भवानी शकर की तरफ आकृष्ट होती है जिसकी अवैध प्रेम में परिणति होती है। दोनो जितना ही अपनी प्रेम भावना को दबाना चाहते हैं, उतना ही वह उग्र होना चाहती है। सरस्वती भवानीशकर से कहती है-''ठीक कहते हो भवानी बाबू। पर इसमें दोष किसका है? तुम्हारा? तुमने मुझे नीचे गिराया, तुमने मुझे पाप-मार्ग का यात्री बनाया। तुम्हारे पहले मैं अनजान थी, कभी-कभी हृदय उस पशु से, जो मेरा स्वामी है, हटने का प्रयत्न करता था, पर मैं उसे रोका करती थी। पर जब से तुम आये हो, हृदय वलवान हो गया, अन्तरात्मा कमजोर पड़ गई। कर्तव्य की याद तुमने पहले क्यों नहीं दिलाई? बोलो।''[1]

'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा एक विधवा नारी है जो कृष्णादित्य से प्रेम करती है। तदुपरान्त प्रेम और वासना के सम्मिलन से वह गर्भवती होती है। समाज का लांछन न सह पाने के कारण कृष्णादित्य आत्महत्या कर लेता है। चित्रलेखा निराश्रित हो जाती है, तब उसके जीवन में एक निष्ठ प्रेमी बीजगुप्त आता है। अपने जीवन में चित्रलेखा चार पुरूषों से प्रेम करती है।

''तीन वर्ष' में रमेश और प्रभा का प्रेम एक युवती-युवक का प्रेम है, जो केवल शरीर की भूख मिटाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है इसे भी अवैध प्रेम ही कहा जायेगा।

'रेखा' में रेखा और योगेन्द्रनाथ मिश्र का सम्बन्ध हार्दिक है किन्तु रेखा एक पत्नी भी है तथा इसके पहले भी रेखा अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए तमाम पुरूषो से अवैध सम्बन्ध बनाती है तथा देवकी और प्रभाशंकर का सम्बन्ध भी अवैध है क्यों कि देवकी एक शादी शुदा स्त्री है।

---

1 पतन भगवतीचरण वर्मा- पेज-69

वर्मा जी ने अवैध प्रेम की समस्या 'भूले-बिसरे चित्र' में एक परिवार की तीन पीढियों में चित्रित किया हैं। अवैध सम्बन्ध का पहला रूप पहली पीढी में छिनकी और शिवलाल के बीच चलता है। अवैध प्रेम का दूसरा रूप दूसरी पीढी के ज्वाला प्रसाद और विधवा जैदेई में स्थापित होता है। तीसरी पीढी में गगा प्रसाद और सन्तो के बीच चलता है। हलाकि गगा प्रसाद विलासी प्रवृत्ति का है, जो स्वछन्द विचारों का है वह और अन्य स्त्रियों (मलका) से भी अवैध सम्बन्ध स्थापित करता है, किन्तु नवल और उषा के बीच का प्रेम सात्विक रूप में चित्रित हुआ है।

'वह फिर नहीं आई' की रानी श्यामला पहली ही भेंट में ज्ञानचन्द्र के कमरे में घुस कर उसके साथ रात बिताती है किन्तु अपने पति जीवनराम के प्रति सम्पूर्ण हृदय से समर्पित है। यहॉं तक कि वेश्या वृत्ति स्वीकार करने के बाद भी अपनी आत्मा को जीवनराम के प्रति समर्पित बतलाती है।

'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास की सुषमा मनोवाछित व्यक्ति के साथ विवाह न होने पर विवाह नहीं करती। अविवाहित रहकर मनचाहे पुरुषो से अवैध सम्बन्ध बनाती है। सुषमा जगतप्रकाश से कहती है-"अब मेरा विवाह होगा भी नहीं, क्योंकि विवाह करने को मैं तैयार नहीं। अब मैं किसी बन्धन में नहीं बंधना चाहती हूॅं। विवाह के लिए मुझमें कोई प्रवृत्ति नहीं है, शायद मैं किसी एक पुरुष की होकर रह नहीं सकती।"[1]

'प्रश्न और मरीचिका' में ऐसे अनेक सम्बन्धों का वर्णन है जो भ्रूण हत्या तक पहुॅंच गये हैं।

मजीत शादीशुदा प्रेममदान से प्रेम करती है और गर्भधारण कर लेती है। यह अवैध सम्बन्ध समाज के लिए कम, उसके स्वयं के पवित्रतावादी नैतिक मूल्यों के सामने एक प्रश्न चिन्ह सा बन जाता हैं। जनार्दन सिह से विवाह करने के बाद उसकी आत्मा को तब तक शान्ति नहीं मिलती जब तक वह प्रेममदान द्वारा धारण किये हुए गर्भ का गर्भपात नहीं करवा देती।

---

1 सीधे सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा-पेज 299

'सबहि नचावत राम गोसाईं' में भमरी और ढोंगी साधु का संसर्ग भी अवैध यौन सम्बन्ध को इगित करता है।

वर्मा जी स्वच्छन्द यौनाचार के समर्थक नहीं हैं किन्तु वह यौन सम्बन्धों को पुरानी दृष्टि से भी नहीं देखते हैं। मनुष्य की देह की भूख को उन्होनें अत्यन्त स्वाभाविक माना है। यह भूख ऐसी है कि उसके सामने कभी भी कोई भी परास्त हो सकता है। रेखा जैसी अतृप्त स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध को वे अनैतिक नहीं मानते। वे नारी के पतन के लिए कहीं न कहीं से पुरूष को दोषी मानते हैं, क्योंकि पुरूष नारी-शरीर का अधिक भूखा होता है और साथ ही नारी की भूख का फायदा उठाने में सिद्धहस्त खिलाड़ी भी होता है। ऐसी दशा में पवित्रता एवं नैतिकता की बात केवल नारी-शरीर के साथ जोडना उचित नहीं। मरती हुई जैदेई का अपने अवैध सम्बन्धों को पाप न मानना इस बात का द्योतक है। यहाँ पर लेखक का यह विचार बदलते युग के साथ एक प्रकार से सहमति ही है। जो आधुनिकता की ओर इंगित करता है।

भारतीय समाज में तमाम ऐसी कुरीतियाँ एव कुप्रथाएं व्याप्त थीं जिसमें विवाह विच्छेद की समस्या, विधवा विवाह की समस्या, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह की समस्या, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी विवाह की समस्या आदि के साथ निरीह एवं निराश्रित नारी को जीवित रहने के लिए तथा समाज में आर्थिक स्वालम्बन प्राप्त करने के लिए शरीर-व्यापार करने के लिए मजबूर हो जाना था कहीं न कहीं से इस समाज में कोढ है। पति की मृत्यु हो जाने पर विधवा नारी आर्थिक दृष्टि से निराश्रित, परिवार द्वारा उपेक्षित, समाज से लांक्षित, पीड़ित तथा प्रताड़ित परिवार की सीमित सीमा से निकल कर समाज की व्यापक सीमा में गोते लगाने के लिए मजबूर हो जाया करती थी। वहाँ तरह तरह के पैशाचिक कुदृष्टि के लोगों के वहकावे के जाल में फंस जाती है और इस असुरक्षा की भावना से बचने के लिए गलत हाथ में पड़कर गलत कार्य करने को मजबूर हो जाती है।

वेश्या समस्या के मूल कारणों में आर्थिक आधारहीनता ही रही है। इसके साथ ही साथ आर्थिक विषमता, सास्कृतिक गतिरोध, भौतिक सस्कृति का विस्तृत रूप, नैतिक मूल्यों का क्षरण आदि तत्व किसी भी नारी को वेश्या बनने को मजबूर करते हैं।

वर्मा जी अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से अलग यथार्थविन्षी दृष्टि से वेश्या समाज को बड़ी ही सहानुभूति के साथ मौलिक ढग से सामने लाने का प्रयास किया, जो कि उनके उपन्यास 'चित्रलेखा' की केन्द्रीय पात्र चित्रलेखा के जीवन में ही दिखाई पडता है।

प्रेमचन्द्र ने "सेवा सदन" में वेश्या समस्या को उठाकर उसका निर्मूलन एक उपदेश भरे व्याख्यान से किया है परन्तु भगवतीचरण वर्मा ने वेश्या समस्या का निर्मूल उपदेश न देकर चित्रलेखा के सबल व्यक्तित्व मे प्रेम और त्यागमय शक्ति से किया है किन्तु योगी और तपस्वी की तरह साधना में अनुरक्त उस नर्तकी को समाज में कोई स्थान दिया जाता, उसे अनुरंजन की चलती फिरती वस्तु समझ कर समाज ने उसके साथ न्याय नहीं किया।

चित्रलेखा के लिए जीवन एक बन्धन या स्थिति नहीं है, उन्मुक्त क्रीड़ा या गति है। समय आने पर उन्मुक्त क्रीड़ा को त्याग में परिणत करती है।

चित्रलेखा के प्रथम पति के मृत्यु के पश्चात उसके जीवन में तीन पुरूष आते हैं जो उसे प्रेम करते हैं बीज गुप्त से प्रथम भेंट में वह कहती है-"नहीं मैं व्यक्ति से नहीं मिलती। मैं केवल समुदाय के सामने आती हूँ। व्यक्ति का मेरे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं।"[1] चित्रलेखा के जीवन का दृढ परिचय यही पर मिल जाता है वह देह को बेंचती नहीं है, वह भावनात्मक प्रेम की प्यासी है।

अत यह कहा जा सकता है कि चित्रलेखा का कर्तव्य और त्यागमयी वृत्ति आदर्श है। उसका प्रेमी सहृदयी है सिर्फ भोग विलासी नहीं है। वह कहती है .
"यह याद रखना बीजगुप्त कि मैं तुम से सदा प्रेम करती रहूँगी। क्या प्रेम का प्रधान अंग भोग-विलास ही है, क्या बिना भोग-विलास के प्रेम असम्भव है? मैं

---

1 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज 12

तुमसे इस समय केवल शारीरिक सम्बन्ध तोड़ रही हूँ, इसकी अपेक्षा हमारा आत्मिक सम्बन्ध दृढ हो जायेगा।''[1]

कुमारगिरि के आश्रम से लौटने के पश्चाताप वह पश्चाताप की अग्नि में जलती हुई बीजगुपत को सब कुछ बता देती है कि वह कुमारगिरि की वासना की साधन बन चुकी है इसलिए वह अपने को अपवित्र, पतिता और पापिनी समझती है और बीजगुप्त से क्षमा मागती है। उस समय वीजगुप्त कहता है-''चित्रलेखा तुमने बहुत बड़ी भूल की प्रेम स्वय एक त्याग है, विस्मृति है, तन्मयता है। प्रेम के प्रागण मे कोई अपराध ही नहीं होता, फिर क्षमा कैसी, फिर भी यदि तुम कहलाना ही चाहती हो तो कहे देता हूँ- मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।''[1]

बीज गुप्त के इस सहृदयता के माध्यम से वर्मा जी ने वेश्या समस्या का निर्मूल किया है।

'तीन वर्ष' की वेश्या समाज के माध्यम से वर्मा जी ने वेश्या जीवन के प्रति ज्यादा ही सहृदयता दिखाई है। वर्मा जी ने समाज द्वारा वेश्याओं के प्रति उपेक्षित व्यवहार को अनुचित माना है। लगता है कि वे वेश्या सुधार के प्रति काफी जागरूक हैं। आधुनिक नारी प्रभा का सृजनकर उसे वेश्या सरोज से भी पापित माना है।

प्रभा जो सभ्य और शिक्षित है, सुसंस्कृत है, सम्पन्न तथा समाज में प्रतिष्ठित है, वह हृदय से वेश्या है, और सरोज जो वेश्या-जीवन जीती है, वह निष्कलुष एवं पूजनीय है क्योंकि उसमें वेश्यापन का सर्वथा अभाव है किन्तु वेश्या पुत्री होने के कारण सभ्य समाज उसे नहीं अपनाता है। 'प्रभा' प्रेम को शारीरिक भूख मिटाने को विलास मानती है क्योंकि प्रभा अर्थ को माध्यम बना कर प्रेम करती है। प्रभा रमेश से कहती है-''रमेश, एक साधारण मनुष्य के लिए जो चीजें भोग विलास हैं, वे ही मेरे लिए आवश्यक हो गयी है। तुम जानते ही हो कि मैं आलीशान बगले में रह रही हूँ, तुम जानते ही हो कि पापा के करीब बारह

---

1 चित्रलेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज 146

नौकर हैं, पाँच छ कारें हैं। ये मेरी आवश्यकताए बन चुकी हैं।''[1] यहाँ प्रभा के द्वारा यह पता चलता है कि स्त्री पुरूष का सम्बन्ध भावनात्मक प्रेम नहीं आर्थिक सम्बल है। वहीं पर समाज के द्वारा वेश्या घोषित सरोज रमेश से कहती है-''रमेश बाबू! क्या तुमने मेरे प्रेम को रूपयो का गुलाम समझा था, कि मैं तुम्हारे रूपयों के कारण तुमसे प्रेम करती थी-तुमने बहुत बड़ी गलती की, रमेश- और इस गलती का मूल्य मेरा प्राण था। समझे।''[2]

जहाँ प्रभा का प्रेम रमेश को शराबी एवं वेश्यागामी बना देता है वहीं सरोज जीवन का बलिदान करती हुई सारी सम्पत्ति उसके नाम करती हुई उससे कहती है कि-''तुम शराब पीना छोड दो और पढना फिर से आरम्भ करो क्योंकि तुम्हारा स्थान बहुत ऊँचा है-तुम दुनिया में बहुत बड़ा काम करने आये हो।''[3]

प्रतिष्ठित समाज की प्रभा और वेश्या समाज की सरोज के जीवन चित्र से यह प्रदर्शित होता है कि भद्र समाज की प्रतिष्ठित नारियों की अपेक्षा वेश्याएं कहीं अधिक चरित्र वाली हैं। उसने रमेश पर अपना तन,मन, धन सब कुछ समर्पित कर दिया। दूसरी तरफ प्रभा रमेश के पास चार लाख रूपये का बैंक ड्राफ्ट देखती है तो शादी के लिए तुरन्त तैयार हो जाती है-''अब तो विवाह में कोई बाधा नहीं।''[4] तब रमेश कहता है-''तुम पुरूष का धन लेती हो पुरूष को अपना शरीर देने के बदले में- है न ऐसी बात और यह वेश्यावृत्ति है-प्रभाजी नमस्कार।''[5] इस उपन्यास में वर्मा जी के दो उद्‌देश्य रहे हैं एक तो वेश्या के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना तथा दूसरा सभ्य समाज का ढिंढोरा पीटने वालों की कुत्सित मानसिकता का बोध कराना। यहाँ पर लेखक को अभीष्ट पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने ''भूले-बिसरे चित्र' में मलका के माध्यम से 'सीधे-सच्ची बातें' मे शबनम सैलाब और सादुल्ला खाँ के माध्यम से तथा 'सबहिं नचावत रामगोसाई' में रशीदा, हमीदा के माध्यम से वेश्यावृत्ति की समस्याओं का अद्‌भुत चित्रण किया है।

---

1 तीन वर्ष भगवतीचरण वर्मा- पेज 109
2 तीन वर्ष, भगवतीचरण वर्मा- पेज 109
3 तीन वर्ष, भगवतीचरण वर्मा- पेज 204
4 तीन वर्ष, भगवतीचरण वर्मा- पेज 207
5 तीन वर्ष, भगवतीचरण वर्मा- पेज 208

'भूले बिसरे चित्र' का सत्यव्रत शर्मा वेश्या मलका से विवाह करता है और वह मलका 'माया शर्मा' बन जाती है वह स्वय सेविका भी है। वह गगा प्रसाद से कहती है–"आग लगे इस नेतागिरी में। मुझे अपने बच्चों से ही कहाॅ फुरसत मिलती है। घर गृहस्थी से जो थोड़ा बहुत वक्त मिलता है उसमें कुछ चरखे वरखे का काम कर लेती हूँ। यहाॅ पर लगता है कि लेखक का वेश्या समाज को उद्धार करने का प्रयास भी दिखाता है, जिससे सत्यव्रत शर्मा मलका को वेश्या से एक आदर्श गृहिणी बना देता है।

वर्मा जी के सभी उपन्यास सुधारवादी सामाजिक सस्थाओं के प्रगतिशील विचारों से प्रभावित रहे, इसी से युग चितेरा कहलाने का गौरव केवल उन्हीं को प्राप्त हो सका है ताकि बीते हुए कल के विस्मृत इतिहास के शुष्क प्राणों में नवीन रक्त का सचार 'भूले-बिसरे चित्र' को 'सीधी सच्ची बातें' द्वारा अभिव्यक्त कर अतीत की बहुमुखी छवि को साकार कर दिया है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर बीसवीं शताब्दी के विगत दशक तक का कालक्रमानुसार बहुरगी जीवन्त चित्र वर्मा जी का साहित्य प्रस्तुत करता है। वर्मा जी समाज सुधारक का जामा धारण किये बिना प्रगतिशील विचारो द्वारा जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था पर प्रहार करके उसे ध्वस्त करते रहे हैं।

वर्माजी के उपन्यासों मे राजनीति :

हिन्दी कथा-साहित्य में जिन स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने राजनीतिक चिन्तन को अपने उपन्यास का विषय बनाया या उनकी कृति युग के राजनैतिक पहलू से अछूती नहीं रही, उनमें वर्मा जी का अद्वितीय स्थान है। वर्मा जी ने अपने उपन्यासो के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक परिवेश का सर्वागीण रूप से बोध कराया।

एक तरफ तो संक्राति कालीन भारत अपने स्वतंत्रता संग्राम में जूझ रहा था दूसरी तरफ वर्मा जी अपनी लेखनी से इस युग को साकार रूप दे रहे थे? उनके उपन्यासों में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विप्लवो के स्वर सुनाई पडते हैं। विश्व एवं राष्ट्र का यह घटना-शंकुल काल वर्मा जी के उपन्यास साहित्य में भी साकार हो उठा है।

वर्मा जी ने किसी राजनीतिक दल में भाग नहीं लिया, न ही किसी राजनीतिक दल विशेष के प्रशंसक ही रहे। उनकी लेखनी ही राजनीतिक निरपेक्षता का प्रमाण है। वर्मा जी का रचनाकाल विस्तृत एव व्यापक पहलू को आत्मसात करते हुए, भारत की राजनीतिक गतिविधियों-स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व और स्वातंत्रयोत्तर-को अभिव्यक्त करता है, जो उनके उपन्यासों में दिखाई देता है।

भारतीय इतिहास की तरफ नजर दौडाने पर ऐसा लगता है कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जहॉ एक ओर हमारे देश के कुछ विद्रोही राजाओं में विप्लव की ज्वाला धधक रही थी तो वहीं दूसरी तरफ कुछ देशी राजाओं एव नवाबों के पारस्परिक कलह और चारित्रिक पतन के कारण देशी राज्यों की नींव ढह रही थी। फलत व्यापारी के रूप में आये अॅग्रेज, शासक के रूप में स्थापित हो गये, धीरे-धीरे भोग-विलास में डूबे राजाओं की कमजोरी का फायदा उठाकर एक-एक देशी राज्यो को अंग्रेज हड़पते जा रहे थे। इन सभी स्थितियों को वर्मा जी ने अपने 'पतन' उपन्यास में उद्धृत किया है-"इधर लार्ड डलहौजी के नीति का पदार्पण हुआ ब्रिटिश साम्राज्य बढने लगा। गोद लेने की प्रथा का, अग्रेजी न्याय के अनुसार अन्त कर दिया गया। इस प्रकार देशी राज्य एक के बाद एक अंग्रेजो के हाथ मे आने लगे। पर अवध का उत्तराधिकारी मौजूद था, और अवध का राज्य अन्य देशी राजाओं की अपेक्षा बड़ा तथा धनी था। अंग्रेज अवध को हड़पना चाहते थे, पर नियमानुसार वे अवध को छीन नहीं सकते थे। अन्त में उन्हें एक बहाना मिल गया। अवध का कुप्रबन्ध ही उनके लिए अवध पर अधिकार जमाने के लिए यथेष्ट था।"[1] इसके आगे वर्मा जी ने किस प्रकार अंग्रेजी सेना ने अवध मे घुस कर नवाब वाजिदअली शाह को गिरफ्तार कर लिया, वर्मा जी ने उसे बडे ही मार्मिक अंदाज में चित्रित किया है। कुछ ताल्लुकेदारों ने अपनी शक्ति के बल पर नवाब को छुड़ाने की इच्छा प्रकट की, लेकिन उनकी इच्छा के विपरीत नवाब का उत्तर था "जाने दो खुदा की ऐसी ही मर्जी है। मेरे लिए बेगुनाहों का खून बहाने से कोई फायदा न होगा।"[2]

1 पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज 181
2 पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज 183

उपर्युक्त कथन से भोग-विलास में लिप्तता एव तद्जन्य निष्क्रियता तथा पौरूषहीनता का परिचय मिलता है। वहीं पर कुछ देशी राजे विदेशी सत्ता का विरोध तथा अग्रेजी साजिशों को नाकाम करने की पूरी कोशिश कर रहे थे। ऐसे लोगों के प्रयासों से 1857 का गदर हुआ, लेकिन उसका परिणाम बहुत सकारात्मक नहीं रहा। उसके कारणो पर दृष्टिपात वर्मा जी ने इस तरह से किया है-"राष्ट्रीयता का भाव भारतवर्ष के लिए एक नई वस्तु है। भारतवर्ष में धर्म का भाव ही प्रधान रहा है, और नमकहरामी करना भारतीयों की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप है। लाखों कष्ट सहकर भी एक भारतीय अपने स्वामी की सहायता करेगा, यह भारतवर्ष की एक विशेषता है। इसलिए इतने बड़े देश को गुलामी के बन्धनों में बँधना पडा है और इसी वजह से भारतीयों ने ही भारतीयों के विरूद्ध अग्रेजों को सहायता दी।"[1]

इस प्रकार से भारतीय रियासतों एव जनता पर धीरे-धीरे अंग्रेजी सत्ता का शिकजा कसता जा रहा था। इधर चैतन्य भारतीय जनता अंग्रेजों के विरूद्ध सघर्ष करती रही, इस संघर्ष के कारण भारतीयों मे राष्ट्रीयता की भावना उभरने लगी। जिसके फलस्वरूप सन् 1885 ई0 में ह्यूम के प्रयत्नों से भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई। शुरूआत में काग्रेस ने राज शासन पर लोकमत द्वारा दबाव बनाना शुरू किया तथा साथ ही विभिन्न सुधारों की माग की। जो यदा कदा ही मानी गयी। यहीं से कांग्रेस में एक उग्र दल का जन्म हुआ, और यहीं से भारतीय राजनीति में यथेष्ट रूप से परिवर्तन दिखाई देने लगा। जिसकी परिणति 1905 के बंग भंग आन्दोलन के रूप मे दिखाई दिया। वर्मा जी के उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' की कथा का समय भारतीय कांग्रेस की स्थापना से लेकर 1930 ई0 तक है, जिसकी पहली राजनीतिक घटना 1911 ई0 के "दिल्ली दरबार" की है जो इस कटु सत्य का एहसास करा देती है कि भारतीय जनता पूर्ण रूप से गुलाम हो चुकी है। देश में विदेशी शासक का दरबार जिस व्यवस्था एवं भव्यता के साथ लगाया जा रहा था, उससे भारत की गुलामी का चित्र स्पष्ट हो जाता है। उस समय भारत में रहने वाला प्रत्येक अंग्रेज अपने को शासक

---

1 पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज 183

तथा भारतीयों को गुलाम समझता था जिसका यथार्थ चित्रण 'भूले विसरे चित्र' में प्रस्तुत है-"बाबू गगा प्रसाद हिन्दुस्तान पर राज्य 'जार्ज पचम' का नहीं है, यहा राज्य अग्रेजों का है। आपने देखा उस पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर से लेकर उस सिपाही को गाली देता हुआ टामी, ये सब अपने को यहा का राजा समझते हैं वे सब गुलाम हैं।"[1] इतना ही नहीं दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने के लिए आये राजा-महाराजाओं, पूँजीपतियों एवं सरकारी अफसरों के रास-रग एव ऊंची पदवियो को पाने के लिए चापलूसी और पेशकश का विस्तृत वर्णन वर्मा जी ने किया है।

राजनीतिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में भारतीय समाज के स्पन्दन का चित्रण वर्मा जी ने किया है। कलकत्ता में राष्ट्रीय चेतना और उग्रवादियों के व्यंग्य का पूर्ण संकेत वर्मा जी ने किया है-"और मरे भूखे बगाली, कि जिस पर चाहा बम फेंक दिया, तो बादशाह सलामत की जान फालतू है कि कलकत्ता में दरबार कराया जाय उनका?"[2] अग्रेजों की कूटिनीति, षडयन्त्र तथा शासन व्यवस्था की जानकारी ज्यों-ज्यों होती गयी, त्यों-त्यों 'स्वराज्य' के नारों से भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना का जागरण होता जा रहा था। शासन और प्रशासन की दोहरी नीति का चित्र भारतीयों को आई0सी0एस0 के समान उच्च नौकरियों से वंचित रखने में दिखता है। डिप्टी कलक्टर गंगा प्रसाद, जिसने असहयोग आन्दोलन दबाने का जो काम किया, उसके बदले में वह सोचता था कि ज्वाइट मजिस्ट्रेट के पद पर स्थाई रूप से नियुक्त हो जायेगा। लेकिन वह ज्वाइंट मजिस्ट्रेट नहीं बन सका, क्योंकि वह हिन्दुस्तानी है। कलक्टर कहता है-"मिस्टर गंगा प्रसाद, मुझे अफसोस है कि तुम्हारा तबादला हो गया, लेकिन मैं समझता हू कि यह मजबूरी है। कानपुर का ज्वाइट मजिस्ट्रेट आई0सी0एस0 ही होता है। सम्भवत आई0सी0एस0 के कुछ नये आदमी आ गये हैं, उनको कहीं न कहीं नियुक्त करना है।"[3] ज्वाइंट मजिस्ट्रेट न हो पाने के कारण गंगा प्रसाद ज्ञान प्रकाश से कहता है-"हॉ चाचा बात तो ठीक कहते हो, मुझको ही ले लो ऐसा दिखता है,

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 266
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 266
3 भूले विसरे चित्र, पेज 430

डिप्टी कलक्टरी में जिन्दगी बीत जायेगी। बहुत हुआ तो ज्वाइट मजिस्ट्रेट बना दिया जाऊँ। जबकि अग्रेज लौंडा आते ही मेरा अफसर बन कर बैठ जाता है, और मुझ पर धौंस जमाने लगता है। तो चाचा डोमिनियन स्टेटस मिल जाये तो कम से कम आगे बढ़ने के सपने देख सकूगा।''[1] लेकिन उसका सपना टूट जाता है जब कानपुर के अग्रेज व्यापारी हैरिसन से गाधीजी को लेकर बहस होती है और वह डिप्टी कलक्टर बनाकर एटा भेज दिया जाता है।

यहाँ पर गगा का चरित्र दुरगा दिखाई देता है एक तरफ वह सरकारी अफसर दूसरी तरफ तटस्थ देशभक्त जो सरकारी विद्वेषपूर्ण नीति के खिलाफ झलकता है।

लेकिन अग्रेजों को यह आभास हुआ कि सुधार के नाम पर जनता को भुलावे मे नहीं रखा जा सकता तो हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिकता के बीज डालकर ''फूट डालो और राज करो'' की नीति अपना ली। जिसका परिणाम 'भूले बिसरे चित्र' में अल्लामा बहसी और आर्यसमाजी स्वामी जटिलानन्द के प्रकरण में मिलता है।

साम्प्रदायिकता की इस शुरूआत ने दिनोदिन एक बड़े रोग का रूप धारण कर लिया तथा मुसलमान हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाने लगे। साम्प्रदायिकता की इसी भावना से प्रेरित होकर मीरजाफर अली, रूक्मा को मुसलमान बनाने के लिए अल्लामा बहसी जैसे क्रूर हाथों में सौंप देता है।

अंग्रेजों की पृथकतावादी नीति के खिलाफ काम किया-तुर्की के सुल्तान को खलीफा पद से हटाना-जिसके कारण भारतीय मुसलमानों में भी अंग्रेजों की नीति के खिलाफ भावना जागृत हो गयी। इसके फलस्वरूप 'मुस्लिम लीग' भी कांग्रेस के साथ हो गयी। मुसलमानों ने इस विरोध को 'खिलाफत आन्दोलन' का नाम दिया। जिसका वर्णन वर्मा जी ने 'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास में किया है, तथा साथ-साथ इस तरफ ध्यान आकृष्ट कराया है कि अंग्रेजों ने जो साम्प्रदायिकता की आग भड़का दिया हैं, वह मुसलमानों के अन्दर ही अन्दर सुलग रही है, भले ही 'खिलाफत आन्दोलन' में मुसलमान कांग्रेस के साथ हो गये हों।

---

1 भूले विसरे चित्र, पेज 317

'भूले-बिसरे चित्र' में साम्प्रदायिकता का यथार्थ चित्रण एक प्रसंग में किया है "गगा प्रसाद एक अयोग्य, बदजवान, बदमिजाज और रिश्वतखोर, मुसलामन समीउल्ला, जो कचहरी में एवजी पर काम कर रहा था और जिसके खिलाफ शिकायतों की भरमार थी, को नौकरी से हटाकर अपने एक रिश्तेदार वशीधर को उसकी जगह पर रख देता है, तो मुसलमान उसे तुरन्त हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न खड़ा कर देते हैं और इसका रूप धीरे-धीरे बिगड़ता जाता है। इस सन्दर्भ में गगा प्रसाद का कथन देखा जा सकता है-"विश्वास-मार्ग वाले इस फरहतुल्ला की हरामजदगी देखी आपने चाचा। खिलाफत आन्दोलन पर काग्रेस में सार्वजनिक और देश व्यापी आन्दोलन का प्रस्ताव पास करने वाले लोगों को जरा यह तो देख लेना चाहिए कि यह हिन्दू मुसलमान के भेद-भाव की खाई कितनी गहरी है। कलक्टर समीउल्ला से असन्तुष्ट था क्योंकि समीउल्ला अयोग्य ही नहीं पक्का बदमाश था। और बंशीधर पढ़ा-लिखा था, इसलिए वह रख लिया गया। लेकिन मुसलमानों ने इस सीधी सी बात को हिन्दू-मुसलमानों का प्रश्न बना दिया।"[1]

इस उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम समस्या उस समय चरम पर दिखाई पड़ती है जब गंगाप्रसाद की दोस्ती का दम्भ भरने वाला अलीरजा भी मलका उर्फ माया शर्मा के मसले को लेकर गगा प्रसाद के जान का दुश्मन बन जाता है।

वर्मा जी ने इस समस्या को फरहतुल्ला के माध्यम से अपना विचार व्यक्त करते हुए-"यह मसला आज का नहीं है, सदियों से यह मौजूद है और यह मसला इतनी आसानी से हल भी नहीं हो सकता। इसकी वजह है कि मुसलमान ने उस समाज को मन्जूर नहीं किया जो हिन्दू का है। हम दोनो का समाज अलग है। हम लोगों का कल्चर अलग-अलग है। हिन्दू समाज एक्सप्लाइटेशन (शोषण) की नींव पर कायम है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कितना ऊंच नीच है। जबकि मुसलमानों के समाज की नींव युनिवर्सल ब्रदरहुड (सार्वभौमिक बंधुता) पर कायम है। अब आप ही बतलाइये कि हम दोनों किस तरह आपस में मिल सकते हैं।"[2]

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 449
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-55

"सीधी-सच्ची बातें" में जमील अहमद भी इन्हीं विचारों की पुष्टि कुछ दूसरे शब्दों में करता है-"इस हिन्दुस्तान में तो अब सरमाएदारी का शिकजा बुरी तरह कस जायेगा, यह सेठ, मिल-मालिक, बनिए, बहमन इन्हीं का बोलबाला रहेगा, यहाँ कम्युनिज्म के कायम होने के चांसेज करीब करीब खत्म हो चुके हैं। इस्लाम कम्युनिज्म के ज्यादा नजदीक हैं।"[1]

महात्मा गॉधी ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या को जितना ही सुलझाने का प्रयास किया उतनी ही यह समस्या उलझती गयी, क्योकि मुसलमानों को इसमें षडयन्त्र दिखाई पड़ता था। और राष्ट्रीय आन्दोलन मे देश की एकता के लिए जितने भी कार्य गॉधी करते थे उनकी प्रसिद्धि उतनी ही बढ़ती जा रही थी। उतनी ही मुस्लिम नेताओं की ईर्ष्या भी बढती गयी। इस तथ्य को जमील के द्वारा जाना जा सकता है-"आखिर मिस्टर जिन्ना को जलन किस बात की है? इसलिए न कि महात्मा गांधी, मिस्टर जिन्ना को अपने बाद दूसरा दर्जा नहीं दे सके।"[2]

जमील तो यहां तक कहता है कि "वे (गाधी) मुसलमानों की खुशामद करते हैं जिन्ना को उन्होंने 'कायदे-आजम' तक कह डाला है, वह मुसलमानों को अपने साथ लेना जरूर चाहते हैं। यह राम-रहीम का नारा, यह हिन्दुस्तानी, यह सब है, लेकिन वे अपने मजहब से अपनी संस्कृति से मजबूर हैं। वह मुसलमानों का सहयोग चाहते हैं मुसलमानों को हिन्दुओं का गुलाम बना कर।"[3]

मुसलमान यद्यपि की अल्पसंख्यक थे फिर भी हिन्दुओं की दासता उन्हें स्वीकार नहीं थी। वे बराबरी का स्थान चाहते थे जो हिन्दुस्तान में उन्हें मिलने वाला नहीं, इस पर वशीर अहमद कहता है-"जिन्ना को गाधी के बाद का दूसरा दर्जा नहीं चाहिए, उन्हें गाधी के मुकाबले बराबरी का दर्जा चाहिए। गांधी हिन्दू हैं, जिन्ना मुसलमान हैं, कोई एक दूसरे से बड़ा छोटा क्यों हो? मैं कहता हूं कि काग्रेस के इस अड़ने से और गांधी की इस जिद से देश का बंटवारा होकर रहेगा।"[4] इस प्रसंग से साम्प्रदायिकता बू तथा देश विभाजन की घृणित सोच

1 सीधी सच्ची बातें, पेज 678
2 सीधी सच्ची बातें, पेज 179
3 सीधी सच्ची बातें, पेज 176
4 सीधी सच्ची बातें, पेज 318

परिलक्षित होती है। गाधी जी और शिव दुलारी के माध्यम से वर्मा जी ने यह दिखाने की चेष्टा की है कि उस समय की स्थिति कितनी भयावह है।

गाधी जी के राम-रहीम, ईश्वर-अल्ला के नारे एकता दिखलाकर भी विभेद के द्योतक थे और 1936 ई0 में हिन्दी और उर्दू भाषाओं के सम्मिश्रण से एक कृत्रिम भाषा "हिन्दुस्तानी" को जन्म देकर गाधी जी ने मानों देश में दो स्पष्ट सस्कृतियों को स्वीकार कर लिया था यही स्वीकृति और भेद-भाव देश के विभाजन का कारण बना।"[1]

देश के विभाजन में स्थान-परिवर्तन के समय जो जघन्य हत्याए हुई उस दृश्य को वर्मा जी ने 'सीधी सच्ची बातें' में अभिव्यक्त किया है जैसे-"बड़े-बडे काफिले चल रहे थे, हिन्दुओं के और मुसलमानों के फौजियो के संरक्षण में देश के विभिन्न भागों से मार काट की खबरें आ रही थी। नित्य ही हजारों की संख्या में हत्याएं हो रही थी। स्त्रियों पर बलात्कार किया जा रहा था, लोगों से जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कराये जा रहे थे।" यहॉ पर हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता का वीभत्स रूप दिखया गया है।

"प्रश्न और मरीचिका" में देश की स्वतन्त्रता एवं देश के विभाजन के पश्चात् देश में लूट मार, कत्लेआम, साम्प्रदायिकता की आड़ में किये जा रहे थे जिसका विशद चित्रण इस उपन्यास के प्रथम भाग में किया गया है। तथा सुरैया और बेगम आयशा नामक दो स्त्रियों के माध्ययम से साम्प्रदायिक दंगों में फसी स्त्रियों की विवशता और धार्मिक अन्तर्द्वन्द्व को उपन्यासकार ने उजागर किया है।

देश विभाजन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में एक समस्या के बाद दूसरी समस्या सामने आने लगी। देश के मुसलमानों में भी "मुस्लिमलीगी" और "राष्ट्रवादी" दो दल हो गये। देश के नेता "लीगी नेताओं" को ऊॅचे-ऊॅचे पद देकर मुस्लिम जनता को खुश करने लगे। जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता में त्याग किया जेल गये वे पीछे छूट गये। इस समस्या को वर्मा जी ने 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास में मुहम्मदशफी के द्वारा बड़े मार्मिक ढंग से उजागर किया है। 1961 ई0 में आजादी मिलने के 15 वर्षो बाद "मुहम्मद शफी की हत्या से

इस देश में साम्प्रदायिक घृणा को वर्मा जी ने प्रदर्शित किया। ''सामर्थ्य और सीमा'' में तत्कालीन राजनीति और सम्प्रदायिकता का एक और पक्ष प्रस्तुत किया है जिसमें मुस्लिम नेताओं ने अपने सम्प्रदाय पर होने वाले जुल्मों का उल्लेख करके भारतीय नेताओं को ठगने और स्वार्थ सिद्धि करने का अच्छा माध्यम ढूढ निकाला था। वोट की राजनीति में मुसलमानो को सही-गलत बात को मानना शुरू कर दिया। इसका लाभ उठाकर मुसलमान नेता प्राय अपना उल्लू सीधा करते रहे। मौलाना रियाजुल हक बड़ी निर्भीकता से कहते हैं-''जी आप रोकेगे। दिल्ली मे बैठे हुए अपने आका को जानते हैं आप? वह इस मस्जिद के बनने की इजाजत देंगे। वह जयाली में मुसलमानों को जगह देंगे। इस इन्साफ पसन्द फरिस्ते की वजह से ही हम मुसलमान हिन्दुस्तान में बसे हुए हैं और आप लोगों को अपना वोट देकर ताकतवर बनाये हुए हैं। तो हमारा कल्चर, हमारी जबान, हमारा मजहब इस सबको जगह मिलेगी यहां पर। मैं कल ही दिल्ली जाकर इस बात पर फैसला मागूंगा। आप हमारे हकों को रौंद रहे हैं और आप की ज्यादतियो की वजह से उनकी ताकत घट रही है। मैं उनसे साफ कहूगा देखता हूं आप की मिनिस्टरी कैसे कायम रहती है।''[1]

साम्प्रदायिकता की इस भावना के साथ-साथ अंग्रेजी शासन के स्वार्थो के चलते भारत में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ क्योंकि अंग्रेज अपनी दमन कारी नीति चलाते रहे।

राष्ट्रीय आन्दोलन में तीब्रता गांधी जी के राजनीतिक क्षेत्र में आगमन के साथ आती है। ''जलिया वाला बाग हत्याकाण्ड'' के माध्यम से जनरल डायर की ज्यादतियां देश-विदेश मे गूंजने लगती है। 'रौलट विल' के द्वारा क्रान्तिकारियों के दमन की नीति अंग्रेजों ने बना ली। इधर गाधी जी भारतीय जनता की मनोभावना का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व करते हुए देश व्यापी आन्दोलन शुरू कर दिये। तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का चित्रण वर्मा जी ने ''भूले विसरे चित्र'' में किया है। पात्रों के वार्तालाप से शासक एवं शासित का अन्तर, भारतीयों में एकता का अभाव, फिर भी गांधी जी के नेतृत्व में सक्रियता की ओर बढने की

---

1 सीधी सच्ची बातें, पेज 644

प्रवृत्तियों का यथार्थ आकलन उपन्यासकार ने किया है। बराबर पैसा देने पर भी रेलगाड़ियों, होटलों और सार्वजनिक स्थानों में अग्रेजों और भारतीयों मे भेदभाव रखा जाता था। यह सब देखते हुए भी वे भारतीय जो सरकारी नौकरियों में थे अग्रेजो को न्याप्रिय ही मानते थे। यहां तक कि जलिया वाला बाग हत्याकाण्ड के पश्चात गगा प्रसाद द्वारा अंग्रेजों को न्यायप्रिय दयावान और उदार कहना भारत के शिक्षित वर्ग की मानसिक पराधीनता की प्रवृत्ति का प्रदर्शन करता है।''[2]

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में अज्ञेय जी ने वर्मा जी के 'टेढेमेढे रास्ते' के राजनीतिक आन्दोलनो के तीन रास्तों का जिक्र किया है जिसमे-गाधीवादी, कम्युनिस्ट, और आतंकवादी सम्प्रदायो के अध्ययन के नाम पर वास्तव मे राजनीतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है।''[3] इन सब कुछ के बावजूद वर्मा जी ने राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति अनास्था व्यक्त की है। इस दृष्टि में वर्मा जी अपना एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है-''यह स्वतन्त्रता हमे गाधी ने नहीं दिलाई है यह स्वतन्त्रता हमें दिलाई है हिट्लर ने, यह स्वतन्त्रता दिलाई है सुभाष ने। ब्रिटेन वेतरह कमजोर और तबाह हो गया है। हिट्लर ने स्वय मरते-मरते ब्रिटेन को वेतरह तोड़ दिया है। वह सवतन्त्रता हमें दिलाई है सुभाष ने जिसने हिन्दुस्तानी सेना और नौसेना में हिंसा और विद्रोह के बीज बो दिये थे।''[4]

प्रथम विश्वयुद्ध एवं भारतीय राजनीति :

28 जुलाई सन् 1914 ई0 को प्रथम विश्व युद्ध की घोषणा हुई मुख्य कारण जर्मनी का सभी राष्ट्रों पर एकाधिकार स्थापित करने की भावना। यह युद्ध भारत को भी प्रभावित किया और भारत ने भी मित्र राष्ट्रों को युद्ध में सहयोग दिया। महात्मा गांधी, तिलक, सी0वाई0 चिन्तामणि, मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं ने तनमन-धन से अंग्रेजों की सहायता की जिससे उन्हें विजय प्राप्त हुई। इस सत्य को स्वीकार करते हुए मिस्टर ग्रिफ्टिस कहते हैं-पिछले महायुद्ध में

---

1 सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज 122
2 भगवती चरण वर्मा की उपन्यास चेतना, पेज 26
3 हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय जी, पेज 91
4 सीधी सच्ची बाते, भगवती चरण वर्मा, पेज 667

ब्रिटेन ने जो विजय प्राप्त की है वह भारतीय सैनिकों के बल पर ही। हिन्दुस्तान की इक्कीस करोड़ की आबादी ब्रिटिश साम्राज्य की सबसे बड़ी शक्ति है। ब्रिटेन के लिए हिन्दुस्तान को खोदने का अर्थ होंगा ब्रिटेन की महत्ता का विनाश।''[1] ब्रिटेन भारत की यह शक्ति नहीं खोना चाहता था और भारतीय अपने को आजाद करने के लिए छटपटा रहे थे। अत दोनो में सघर्ष शुरू हुआ। सघर्ष की तीव्रता के साथ-साथ देश प्रेम की भावना बलवती हो गयी।

भूले विसरे चित्र में वर्मा जी ने व्यक्त किया है, अग्रेजों की लडाई हिन्दुस्तानियों ने लड़ी है-गुरबा, सिख, पठान, विलोची, राजपूत, गढवाली, तिलगाने, मराठे सारे हिन्दुस्तान में सैनिक गये थे। पचास लाख की फौज थी, तब कहीं जर्मनी हारा।''[2] इस प्रकार जब जब भारतीयों ने विद्रोह की आवाज उठाई तब-तब ब्रिटिश सरकार ने अपनी विकराल दमन नीति का प्रयोग किया।

असहयोग आन्दोलन :

दमनकाली 'रौलट एक्ट'' के विरोध में देश व्यापी हड़तालें तथा गांधी जी ने 24 फरवरी, 1919 को सत्याग्रह शुरू किया जिससे भारतीय जनता को युगानुकूल नेता मिल गया। ज्ञान प्रकाश के शब्दों में गांधी जी के रूप में हमारे देश को जो नेता मिला है, वह कल्पना जगत का नेता नहीं है। कांग्रेस निष्क्रियता को छोड़कर सक्रिय कार्यक्रम पर आ रही है।''[3] इस आन्दोलन में हिन्दू मुस्लिम एकता का जो दृश्य दिखाई पडा, वह युगो तक दुर्लभ हैं।

असहयोग आन्दोलन की सबसे बडी विशेषता यह थी कि इसमें नारियों ने भी प्रथम बार पुरूषो के कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग ही नहीं किया बल्कि डट कर भाग भी लिया। माया शर्मा, और गगादेवी ऐसी ही नारियॉ हैं जो स्वदेशी और स्वराज्य आन्दोलन में भाग लेती हैं। और यह आन्दोलन जनता की सामूहिक भागीदारी का रूप ले लिया और 'चौरी चौरा' के ध्वशात्मक आन्दोलन के रूप में अभिव्यक्त हुआ। सरकार की सन्धिवार्ता के मध्य आन्दोलन स्थगित हुआ। पहली

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 323
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 317
3 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 228

जनवरी 1922 ई0 में बारदोली लगान बन्दी आन्दोलन पुन आरम्भ हुआ। गांधी जी द्वारा काग्रेस कार्य समिति में सामूहिक सत्याग्रह को वापस ले लिया गया, जिससे गाधी के प्रति अविश्वास पैदा हुआ। इसका फायदा उठाकर अग्रेजी हुकूमत ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया। जिसका विरोध सारे देश में हुआ। अहिसक आन्दोलन की असफलता का कारण लेनिन के नेतृत्व में हो रही समाजवादी क्राति की ओर आकर्षित होना बताया जाता है। उपन्यासकार ने इस सारे प्रसग में जन सामान्य की भागीदारी दिखाया है।

1924 में सारे उत्तरी भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन की धूम जिसने स्कूली बच्चे, अध्यापकों ने भाग लिया। 'भूले विसरे चित्र' में नवल किशोर गांधी जी से प्रभावित हुआ वह अपने बाबा ज्ञान प्रकाश से प्रभावित होकर गांधीवादी सिद्धान्तों का समर्थक बन जाता है। सन् 1927 में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रस्ताव पास किया जाता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन मे नव युवकों बालकों का भी प्रभावित होना दिखाया गया है।

इसी समय ब्रिटिश सरकार द्वारा साइमन कमीशन को प्रतिनिधि सस्थाओं का अध्ययन करने के उद्देश्य से बिठाया गया जिसमें राष्ट्रीय सस्थाओं का कोई सदस्य नहीं था अत. कांग्रेस तथा सभी दलों ने इसका बहिष्कार किया।''[1]

'भूले-बिसरे चित्र' में गांधी और नेहरू के व्यक्तित्व का चित्रण वर्मा जी प्रो शंकर के माध्यम से करते हैं-गांधी अपने समस्त अनुभवों और दर्शन के साथ एक स्थापित और प्रभावशाली व्यक्तित्व है, जब कि जवाहर लाल अनुभवहीन हैं, अविकसित हैं। लेकिन जवाहर लाल देश की नवीन चेतना के नेता हैं, जो त्याग और बलिदान गांधी का दर्शन चाहता है, वह त्याग और बलिदान जवाहरलाल में अपनी चरम सीमा में है। यही नहीं, जवाहर लाल में कार्यशीलता है, उदारता और सन्तुलन हैं, शायद गांधी से अधिक। गांधी सफल इसलिए हैं कि जवाहर लाल उनके साथ हैं।''[2]

---

1. भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 470
2 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 490

लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता का लक्ष्य कांग्रेस द्वारा घोषित करते हुए नेहरू ने कहा–मनुष्य स्वतन्त्र है, अन्याय का सक्रिय विरोध करना मनुष्य का कर्तव्य है, जीवन सघर्ष है, कर्म है।''[1] 23 दिसम्बर को दिल्ली में लार्ड इरविन और महात्मा गाधी में समझौते की बात टूट चुकी थी देश में निराशा और क्रोध का वातावरण छा गया था।

12 मार्च 1930 को गाधी जी अपने चुने हुए 78 अनुयायियों को लेकर डाडी नमक कानून तोड़ने का आन्दोलन प्रारम्भ किया ''भूले विसरे चित्र'' में नवल किशोर एक ऊचे सरकारी अफसर का पुत्र है तथा जिसने आई0सी0एस0 बनने के सपने मन मे संजो रखे हैं किन्तु काग्रेसी देश व्यापी लहर में वह ज्ञान प्रकाश से प्रभावित होकर कांग्रेस का स्वयंसेवक तो नहीं बनता लेकिन गाधी जी से प्रभावित अवश्य हो जाता है। नमक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ होते ही इलाहाबाद मे नवल और ज्ञान प्रकाश पहले ही दिन नमक कानून भंग करते हैं और जेल जाते हैं। अहिंसा की लड़ाई में नवल अपने अन्दर उत्साह का अनुभव करता है–नवल ने अपने अन्दर एक नयी उमग को धीरे-धीरे जन्म लेते हुए अनुभव किया। जिस समय वह मंच पर पहुचा उसके अन्दर एक तरह की घबराहट थी। वह घबराहट दूर हो गयी, अब एक नई दृढता उसके अन्दर आ गयी और थोड़ी देर बाद नवल को लगा कि वह एकाएक बदल गया, एक असीम उल्लास एक अडिग सकल्पना से।''[2] वर्मा जी ने इस स्वतन्त्रता आन्दोलन को नवल के माध्यम से व्यक्त करते हुये दिखाया है कि जन-जन तथा बच्चे तक उस आन्दोलन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके जिस पर देश के नेता गांधी जी का प्रभाव था। जो कि जनता में आन्दोलन के प्रति एक लहर पैदा कर दी थी। वहीं ज्ञान प्रकाश एक ऐसा पात्र है जो गांधी जी पर अटूट विश्वास रखते हुए देश हितार्थ जीवन का खेल खेलता है। मुफ्त में मुकदमें लड़ता है। वह नवल से कहता है–''नवल हमारा देश स्वतन्त्र हो जायेगा, आज मुझे विश्वास हो गया है हमे अपने संघर्ष में सफलता मिलेगी।''[3]

---

1 भूले विसरे चित्र, पेज 539
2 भूले विसरे चित्र, पेज 532
3 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 487

भगवती चरण वर्मा नवीन और पुरातन पीढ़ी के विचार और युग के अन्तराल को निर्देशित करते हुए कहते हैं-"दो बूढ़े, जिन्होंने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार चढाव देखे थे, जिनके पास अनुभवों का भडार था विवश थे, निरूत्तर थे। और दूर हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित नवीन उमग और उल्लास लिए हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे।"[1] इस प्रकार से वर्मा जी ने बीती हुई अर्द्धशती के "भूले विसरे चित्रो को पुन याद के सहारे इस उपन्यास में साकार किया जिसमें साम्यवादी चेतना के विकास और राष्ट्रीय आन्दोलनों में उनके योगदान का वर्णन है साथ ही यह भी दिखाया है कि किस प्रकार सरकारी अफसरों के परिवार में राष्ट्रीय चेतना विकसित हो रही थी। इस उपन्यास में वर्मा जी ने एक ही परिवार के चार पीढियो के माध्यम से 1885 ई0 से 1930 ई0 तक राजनैतिक समस्याओं, सघर्षो परिवर्तनों तथा राष्ट्रीय चेतना के उद्‌गम व विकास को पूर्ण रूप से साकार किया है।

सन् 1930-31 ई0 तक की सम्पूर्ण राजनैतिक गतिविधियों का चित्रण वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'टेढे मेढे रास्ते' में किया है। इस उपन्यास की कथा का आरम्भ सन् 1930 ई0 के मई महीने के तीसरे सप्ताह से होती है। जब 5 मई, 1930 ई0 को गांधी जी ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तार किये जाते हैं। इस गिरफ्तारी के फलस्वरूप देश में आन्दोलन की एक लहर सी दौड़ जाती है। वर्मा जी के "टेढे मेढे रास्ते" में सन् 1930 के आस-पास की राजनैतिक हलचलों को आत्मसात कर तत्कालीन प्रमुख राजनैतिक विचारधाराओं का यथार्थ चित्रण किया है। इस उपन्यास में एक ही परिवार से दयानाथ गांधीवाद से प्रभावित होकर कांग्रेस के कार्यो में हिस्सा लेता है। उमानाथ मार्क्सवाद से प्रभावित होकर और प्रभानाथ आतंकवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय राजनीति का प्रतिनिधित्व किया है। इन तीनों के पिता रामनाथ तिवारी के द्वारा वर्मा जी ने सामन्तवादी विचारधारा की अभिव्यंजना की है। इन पात्रों के प्रत्येक के प्रतिरूप भी हैं। जिनमें रामनाथ तिवारी के प्रतिरूप भगडू मिश्र, दयानाथ का प्रतिरूप

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 542

मार्कण्डेय है, उमानाथ का प्रतिरूप ब्रह्मदत्त तथा प्रभानाथ का प्रतिरूप मनमोहन है। इन प्रतिनिधियों के माध्यम से लेखक ने सभी विचार धाराओं के तल स्पर्शी स्थूल और सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन चारों पात्रों के माध्यम से जहां वर्मा जी स्वाधीनता युग के सभी प्रमुख दलों को प्रतिनिधित्व दिया है वहीं भारतीय राजनीति के बढते चरणों का आभास भी कराया है। युगीन राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर दयानाथ अपने मित्र मार्कण्डेय के साथ वकालत छोड़कर काग्रेस में सम्मिलित हो जाता है। और स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेता है। साथ ही अपने पिता रामनाथ तिवारी के दम तोडते सामन्तवाद और पनपते पूजीवाद से भी टक्कर लेता है जो इसके प्रतिरूप हैं। वह दयानाथ से इस कारण असन्तुष्ट होते हैं कि उन्हे ब्रिटिश सरकार से आनरेरी मजिस्ट्रेट की पदवी का लाभ मिला था जो कि दयानाथ एक सक्रिय कांग्रेसी राजनीतिक कार्यकर्ता है। वह दयानाथ से कहते हैं कि-"मैं कहता हूं कांग्रेस छोड़ दो। हम जमींदारों की भलाई कांग्रेस का साथ देने मे नहीं है।"[1] लेकिन दयानाथ कहता है-मैं कांग्रेस का साथ दे रहा हूं अपनी गुलामी तोड़ने के लिए। आपका कहना यह है कि दूसरों को गुलाम बनाये रखने के लिए मैं गुलाम बना रहू, और मैं अपनी गुलामी तोडने पर यदि दूसरे मेरी गुलामी से दूर होते हैं तो उसमे कोई हर्ज नहीं समझता। दूसरों को नष्ट करने के लिए स्वय नष्ट होने में आपको विश्वास है और आप चाहते हैं कि मैं भी इस बात पर विश्वास करूँ।"[2] यहां पर वर्मा जी ने दयानाथ के माध्यम से, एक तरफ कांग्रेस के प्रति राजनैतिक प्रतिबद्धता जिसे देश की गुलामी के जकड़ से आजाद करा कर देश को स्वतन्त्र कराना है वहीं रामनाथ उखड़ते सामन्तवाद को बनाये रखने के लिए अंग्रेजी हुकूमत का साथ देते हैं।

रामनाथ तिवारी का दूसरा पुत्र उमानाथ जर्मनी से समाजवादी विचार धारा का कामरेड बनकर लौटता है। भारत में नये सिरे से मार्कसवादी सिद्धान्तों को अपना कर नई आर्थिक क्रान्ति का सूत्रपात करना चाहता है, वर्ग हीन समाज का निर्माण करना चाहता है, इसके लिए वह कम्युनिष्ट पार्टी का सबसे बड़ा अधिकारी नियुक्त किया जाता है। उसका मत है-"इस राष्ट्रीयता की लड़ाई में हमें हम

1 टेढ़े मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 12
2 टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 12

मजदूरों को, हम किसानों को न कोई दिलचस्पी हो सकती है और न कोई होनी चाहिए। हमे पूँजीपतियो से लडना है हमें सगठित होकर श्रेणीवाद का विनाश करना है तभी हमें वास्तविक स्वतन्त्राता मिलेगी।''[1] वह बढ़ते हुए पूँजीवाद और साम्प्रज्यवाद के खिलाफ विद्रोह करता है। किन्तु गाधीवादी मार्कण्डेय कम्युनिज्म को पँजीवाद से भी अधिक खतरनाक मानता है-''उमानाथ! तुम बतला सकते हो कि किस कम्युनिस्ट ने दूसरो की गरीबी से द्रवित होकर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है? तुम बतला सकते हो किस कम्युनिस्ट ने ऐय्याशी, भोग विलास छोडे हैं, तुम बतला सकते हो किस कम्युनिष्ट ने त्याग किया है ये चीजें जिनका मतलब देना-इन पर तुम्हें विश्वास नहीं। तुम्हारा सिद्धान्त है लेना-ठीक वही सिद्धान्त जो पूँजीवाद का है। कम्युनिज्म एक तरह से पँजीवाद से भी भयानक है। क्योंकि पूंजीवाद में जहाँ महज लेना ध्येय है, वहाँ कम्युनिज्म का ध्येय लेने के साथ मारता और पीटता भी है। दूसरे शब्दों में, कम्युनिज्म पूँजीवाद की हिंसा की एक विनाशात्मक प्रति हिसा भी है, जो समाज के लिए कहीं अधिक भयानक है।''[2]

समाजवादी नीति अवैधानिक होने के कारण उमानाथ के विरूद्ध वारट निकलता है। उमानाथ को देश छोड़कर भागना पडता है। वह अपने पिता रामनाथ तिवारी से 10 हजार रूपये की मांग करता है किन्तु रामनाथ उसे तिरस्कृत करते है-''हम पूँजीपतियों को मिटाने के लिए तुम हमारा ही रूपया चाहते हो? कितनी मजेदार बात है और तुम समझते हो मैं स्वयं विनष्ट होने के लिए तुम्हें शक्ति प्रदान करूँगा तुम्हे रूपया दूँगा।[3] किन्तु पवनी सहायता से उमानाथ विदेश चला जाता है।

सन् 1930 ई0 में आतंकवादियो का आतंक ब्रिटिश सरकार पर छा गया। 'टेढे-मेढे रास्ते' के रामनाथ तिवारी का तीसरा पुत्र प्रभानाथ, वीणा, प्रतिभा मनमोहन आदि आतकवादी पात्र हैं, जिनके माध्यम से वर्मा जी ने तत्कालीन क्रान्तिकारी घटनाओं का अंकन करने का प्रयत्न किया है। इस दल का सरदार

---

1 टेढे मेढे रास्ते, भवगतीचरण वर्मा-पेज-443

2 टेढी मेढे रास्ते भवगतीचरण वर्मा-पेज-336-37

3 टेढी मेढे रास्ते, भवगतीचरण वर्मा-पेज-495

कहता है-"हमारे दल की सारी बुनियाद हिंसा और बल पर है। उसी हिंसा और बल का हमे सहारा लेना होगा।[1] इसी हिसा और शक्ति-प्रयोग से यह कान्तिकारी दल धनिको को लूटता है, सरकारी ट्रेनें लूटता है और अन्त में पराजित, विवश, और असहायावस्था का अनुभव करता है। मनमोहन प्रभानाथ से कहता है तुम इस क्रान्ति के मार्ग से हट जाओं-मैं मर रहा हूँ प्रभा और मैं कहता हूँ, अपने सारे अनुभवों को लेकर कहता हूँ कि, यह मार्ग गलत मार्ग है।"[2] "इसी से प्रतिभा, वीणा, मनमोहन, प्रभानाथ सभी का कारूणिक अन्त होता है। ट्रेन डकैती के केस मे फसकर गिरफ्तार हो जाता है किन्तु वीणा की सहायता से वह जहर खा कर आत्म हत्या कर लेता है।"[3] इस प्रकार रामनाथ तिवारी अपने तीनों पुत्रों को खो देते हैं। उनके तीनों पुत्र अलग-अलग मार्गो का अनुसरण करते हुए राजनीतिक जीवन मे टेढे-मेढे रास्ते में खो जाते हैं। 'टेढे-मेढे रास्ते' में स्वदेशी आन्दोलन द्वारा साम्राज्यवाद की नीव हिल जाती है। वर्मा जी जिस समय 'टेढे-मेढे रास्ते' उपन्यास की रचना की उस समय जैसी गुमराह राजनीति थी वैसी आज भी है। यद्यपि आज स्वतंत्रता प्राप्ति हो चुकी है तथापि कुछ प्राप्त न हो सका। हमारे राजीनीतिज्ञ आज भी टेढ़े-मेढे रास्ते पर भटक रहे हैं। इस उपन्यास में वर्मा जी ने लगभग एक वर्ष के राजनीतिक जीवन को प्रस्तुत किया है। जिससे युगीन विविध विचारधाराएं अभिव्यक्त हुई हैं। 'भूले-विसरे चित्र' में जो राष्ट्रीय आन्दोलन आशा और उल्लास से आगे बढ रहा था वह 'टेढे-मेढे रास्ते' तक आते आते निराशा और अवसाद के अन्धकार में विलीन हो गया।

अंग्रेजी सरकार का शोषण और दमन नीति :

साम्राज्यवादी शासन में सर्वाधिक सुसंगठित शक्ति शासक वर्ग की होती है जिसका कार्य शासित देश को शोषण द्वारा निर्धन बनाना होता है। ताकि निरीह जनता अपने भोजन, वस्त्र आदि की चिन्ता में डूबी रहे और देशहित की बात न सोच सके-क्योंकि राजनीतिक चेतना साम्राज्यवाद का गला घोंट देती है। सरकार

---

[1] टेढी मेढे रास्ते, भवगतीचरण वर्मा-पेज-510
[2] टेढी मेढे रास्ते, भवगतीचरण वर्मा-पेज-362
[3] टेढीमेढे रास्ते, भवगतीचरण वर्मा-पेज-488-89

को अपनी रक्षा में साधन-विहीन जनता पर दमन चक्र छोड़ने में सरलता मिलती है। ब्रिटिश सरकार की शक्तिया नष्ट हो रही थीं। तभी स्व रक्षार्थ रामनाथ तिवारी दयानाथ से अपना नाता ही तोड देते हैं क्योंकि दयानाथ का कांग्रेस में सम्मिलित होना उन्हें स्वीकार नहीं। नमक आन्दोलन शुरू होने के कुछ दिन बाद ही गिरफ्तरिया शुरू हो गयीं। अग्रेजों की दमन नीति से आन्दोलन और तीव्र हुआ। दयानाथ देश-सेवा की भावना से अभिभूत हो काग्रेसी आन्दोलनों में भाग लेता है और जेल जाता है। जेल से लौटने के बाद वह काग्रेस का चुनाव लड़ता है, किन्तु उसमे उसे पराजय मिलती है जिससे उसके सारे आदर्श की नींव हिल जाती है, वह काग्रेस छोड़कर अपने पिता के पास लौट्ते हैं- मैंने कांग्रेस में सम्मिलित होकर गलती की, मैं काग्रेस छोड़ रहा हूँ। किन्तु पिता द्वारा धिक्कारे जाने पर वह पुन अपने मार्ग पर लौट पड़ता है।

दमन नीति का सहारा लिया। सन् 1930-33 तथा सन् 42 के लगभग यह दमन नीति चरम सीमा तक पहुॅच गयी। ब्रिटिश सरकार के शासन, शोषण और दमन नीति में भारतीय सामन्त, जमींदार तथा शिक्षित मध्यवर्ग जो साम्राज्यवादी नौकरशाही का पुर्जा था, सदैव सहायक रहे। अन्यथा भारत दीर्घकालीन गुलामी से बच जाता है। 'भूले-बिसरे चित्र', 'टेढे-मेढे रास्ते' और 'सीधी-सच्ची बातें' में इसका सफल चित्रण हुआ है।

भारतीय राजनीति में सामन्त वर्ग की भूमिका :

वर्मा जी ने सामन्तों और जमींदारों का जो रूप अपने उपन्यासों में चित्रित किया है वह नितान्त अकर्मण्य और शोषक वर्गो का समुदाय है, जो अंग्रेजों का कृपापात्र बनकर उनकी दमन नीति को जनता पर लागू करता था। किन्तु यही सामन्त वर्ग अपने अवलम्बन के हट्ते ही स्वातंत्र्योत्तर भारत में धूल में मिल गया। 'टेढ़े-मेढे रास्ते' के रामनाथ तिवारी ऐसे ही सामन्त हैं जो राजनीतिक आंदोलनों को अपना विरोधी मानकर अपने ही पुत्रों से वैर ठान लेते हैं। अपने कांगेसी पुत्र दयानाथ से वह कहते हैं-'अगर यह कांग्रेस का मूवमेन्ट केवल गवर्नमेन्ट के ही खिलाफ होता तो मैं चुप रहता, लेकिन में देखता हूँ कि हम

जमींदारों का स्वार्थ गवर्नमेन्ट के साथ कुछ बुरी तरह बँध गया है कि गर्वनमेन्ट के खिलाफ कोई भी मूवमेन्ट जमींदारों के खिलाफ पड़ जाता है। ऐसी हालत में जब मेरा बड़ा लड़का रियासत का उत्तराधिकारी इस मूवमेन्ट में हिस्सा ले रहा है। तब इसके मायने, ये हुए कि वह रियासत को ही नहीं मुझे भी नष्ट करने पर तुला हुआ है?' इस प्रकार अग्रेजी सरकार के साथ सामन्तवर्ग के हित जुड़ चुके थे।

इन सामन्तों और राजाओं को क्रूरतापूर्ण शासन करने का प्रशिक्षण विदेशी शिक्षा के माध्यम से दिया जाता था, जो उन्हें प्रजापालक के स्थान पर प्रजा शोषक बनाकर विलासी बना देती थी। जिससे ये लोग जनता में अपनी लोक प्रियता खो देते थे और जनता की घृणा के पात्र बन जाते थे। अत सरकार के प्रति आस्था जनता मे बढती थी। इस प्रकार अग्रेजों ने अपने स्वार्थो को पूर्ण करने के लिए इस उपजीवी वर्ग का निर्माण किया। इससे सामान्य जनता दोहरे शोषण में पिस रही थी, एक सरकार द्वारा, दूसरे सामन्तो द्वारा। अंग्रेजों से भी अधिक शोषण ये जमींदार वर्ग करते थे। 'भूले-विसरे चित्र' में गंगाप्रसाद तथा राजाओं और धनी व्यापारियों के घृणित विलासी जीवन का परिचय मिलता है। राधाकिशन का अपनी भाभी से अनैतिक सम्बन्ध, सत्तो का गंगाप्रसाद के प्रति समर्पण, रिपु दमन सिंह के निराश जीवन के गोपनीय रहस्य का उद्घाटन, राजा सत्य जित प्रसन्न सिह एवं मेजर वाट्स के प्रति सत्तो का समर्पण, रानी का बड़े-बडे अंग्रेज अफसरों से अनैतिक सम्बन्ध होने के पश्चात फूहडपन से गगा प्रसाद को अपनी तरफ आकर्षित करना आदि तत्कालीन विलासी जीवन के विविध दृश्य हैं।

स्वतन्त्रता सग्राम में राजनैतिक दृष्टि से शोषित वर्ग गांधी के हरिजनों के उत्थान के कार्यक्रम से प्रभावित थे। वे भी स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। वर्मा जी ने चीनी आक्रमण को भारतीय नेताओं की कमी के रूप में दिखाया है। भारतीय राजनीति में भ्रष्ट चुनावी प्रक्रिया को दिखाया है जो आज भी उसी तरह की भ्रष्ट चुनावी प्रक्रिया दिखायी पड़ती है। साथ ही साथ नेताओं की भ्रष्ट कारगुजारियों के तरफ भी ध्यान आकर्षित किया है वर्मा जी अपने उपन्यासों में राजनीतिक परिदृश्य को युगानुरूप अभिव्यंजित किया है। ये सारी समस्या आधुनिकता बोध की तरफ इंगित करता हैं।

वर्मा जी के उपन्यासो मे धर्म

समाज में धर्म का वही स्थान जो शरीर में आत्मा का। धर्म मानव जीवन को नैतिक रूप से जीने की आस्था है 'जीवन के अग प्रत्यग में व्याप्त धर्म एक परम ज्ञान है, परम ज्योति है, जो कि मानव को अन्तर्ज्ञान और अत प्रकाश से सयुक्त कर उसकी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है।

धर्म से हम अध्यात्मिक चेतना और प्रेरणा से प्रवाहित होते हैं। यह हमें अनुशासित जीवन जीने के लिए प्रेरणा देता है। सन्मार्ग पर चलने का रास्ता बताता है, कुमार्ग से बचाता है। मानव से परे उस परम सत्य से परिचय करवाता है और यह स्पष्ट करता है कि ईश्वर यहीं पर विद्यमान है और प्राणी नैतिकतामय जीवन अपना कर उससे सहज ही साक्षात्कार करता है। मानव की आत्मा ही उस परम ज्योति का विकास स्थल है। धर्म नैतिकता है, मानवता है। नैतिक नियम समाज व्यवस्था से उत्पन्न विधा है जिनके निर्वाह द्वारा ही व्यक्ति स्वर्गित सुख भोग सकता है धर्म मानव आदर्शो, मूल्यों और प्रेरणाओं को स्थिरता प्रदान करता है। सामाजिक सन्दर्भ में धर्म का विशेष योगदान रहा है, धर्म मानव की समाज विरोधी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाता है। अनादि काल से ही समाज व्यवस्था बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य धर्म ने ही किया है। धर्म सामाजिक जीवन को निर्देशित तथा नियन्त्रित करता है। ईश्वर के दण्ड का भय, स्वर्ग नरक का विचार, कर्मफल का सिद्धान्त, पाप-पुण्य की धारणा आदि कारणों से मानव बुरे कर्मो से बचता रहा है।

वर्मा जी के उपन्यासों में धर्म में व्यक्तियो की गहरी आस्था दिखाई गयी है साथ ही बाह्यडम्बरों के प्रति कटु व्यंग्य भी किया गया है। वर्मा जी ने मानव जीवन में धर्म के सामाजिक एव आत्मिक दोनों पक्षों का विश्लेषण किया है।

वर्मा जी के 'चित्रलेखा' उपन्यास में कुमार गिरि कहता है-"ईश्वर मनुष्य का जन्मदाता है, और मनुष्य समाज का जन्मदाता है। धर्म ईश्वर का सांसारिक रूप है, वह मनुष्य के ईश्वर से मिलाने का साधन है। धर्म की अवहेलना ईश्वर की अवहेलना है, सत्य से दूर हटना है। सत्य एक है, धर्म उसी सत्य का दूसरा

नाम है। यदि नीति शास्त्र धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है तो वह नीतिशास्त्र नहीं वरन् अनीति शास्त्र है। उचित और अनुचित न्याय और अन्याय- इन सब की कसौटी धर्म है। धर्म के अन्तर्गत सारा विश्व है।''[1]

धर्म रक्षार्थ कितने ही युद्ध लड़े गये ससार की महत्वपूर्ण क्रान्तियां धर्म प्रवर्तको द्वारा ही हुई हैं। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तथा महात्मा गाँधी ने धर्म को आधार बनाकर ही विश्व में आमूल-चूल परिवर्तन किया। सांस्कृतिक पुर्नजागरण में धर्मिक चेतना तथा धर्म सम्बन्धी नवीन अन्वेषण का अपना महत्व है। अग्रेजी राज्य की स्थापना और विस्तार में साथ-साथ धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन उपस्थित हुआ परिणामत आधुनिक युग के नव आलोक में धार्मिक भावना उद्भूत सास्कृतिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ जिससे भारतीय संस्कृति की पाश्चात्य सस्कृति के आक्रामक रूप से रक्षा हुई और साथ ही जड़ता और अन्य विश्वास के बन्धनों में जकड़े रूढिवादी संस्कारों में फसे समाज को मुक्ति मिली। इन सांस्कृतिक आन्दोलनों ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित किया। धर्म व्यक्ति तथा समाज के सामाजिक और व्यवहारिक जीवन में सक्रिय होकर संस्कृति के रूप में अभिव्यक्त है। किन्तु निराश जनता को बल प्रदान करने वाला मध्ययुगीन धर्म आधुनिक युग में आते-आते क्षोभ का कारण बन गया। भगवती चरण वर्मा का यह क्षोम धर्म तथा धार्मिक संस्थाओं पर उतरा है फिर भी उनकी विचारधारा आस्थावादी है- उनके उपन्यासों के पात्र ईश्वर पर विश्वास तो करते हैं किन्तु धर्म के जर्जर स्वरूप विश्वासों, आडम्बरों तथा रूढियों को नहीं स्वीकार करते हैं। वे हृदय की शुद्धता और पवित्रता पर विश्वास करते हैं।

कालान्तर में सभ्यता और सस्कृति के विकास के साथ-साथ धर्म समाज परक न होकर व्यक्तिपरक होने लगा है। किन्तु वर्मा जी ने धर्म के सामाजिक पक्ष को अधिक महत्वपूर्ण माना है।

'भूले बिसरे चित्र' में वर्मा ने धर्म के दोनों रूपों अर्थात सामाजिक पक्ष और व्यक्तिगत पक्ष की व्याख्या की है। धर्म के दो रूप होते हैं, एक सामाजिक और दूसरा वैयक्तिक। दोनों धर्मो का समान रूप से पालन करना हर एक

---

1 चित्रलेखा- भगवती चरण वर्मा पेज-32

साधारण गृहस्थ का धर्म है। समाज छुआछूत को मानता है, समाज वर्गों में उँच नीच का भेदभाव करता है, यह सब हमें स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि हम सब समाज द्वारा शासित हैं, हम सबकी रक्षा समाज करता है। इस सामाजिक धर्म के बाद वैयक्तिक धर्म आता है-दया, त्याग, ममता, प्रेम, सत्य, अहिंसा आदि का, लेकिन यह धर्म व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध है, समाज से नहीं हम वैयक्तिक धर्म का पालन करते हुए सामाजिक धर्म का पालन करने को बाध्य हैं।''[1] मुशी राम सहाय का यह कथन तत्कालीन धार्मिक जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति करता है।

जिस क्रिया के बाह्य और अन्तरिक स्वरूप में एकरूपता का अभाव हो वही आडम्बर युक्त कही जायेगी। छल, कपट, धूर्तता आदि से युक्त क्रिया, व्यवहार, नीति, वेश आदि सभी आडम्बर के अन्तर्गत आते हैं। इन बाह्य आडम्बरों पर वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर व्यंग्य किये हैं तथा हिन्दू धर्म के परिवर्तित और विचलित होती हुई विकृत सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार किया है।

'भूले-बिसरे चित्र' उपन्यास के मुशी शिवलाल हिन्दू धर्म के ढोंग पर व्यंग करते हैं। खूब सूझी घर मा गंगाजल की जो बोतल है, तो दो चार बूँद गंगा जल दारू माँ छोड़ लीन्हेव। गगाजल से सब कुछ शुद्ध हुई जात है।''[2] गंगाजल के युद्ध होने की भावना के पीछें हिन्दू धर्म के खोखले संस्कारों पर ही स्पष्ट रूप से वर्मा जी ने व्यंग किया है। मुशी शिवलाल का निम्न जातीय स्त्री छिनकी में पर्यक शायिनी बनने में धर्म नहीं नष्ट होता, परन्तु उसके हाथ का बना भोजन करने से हिन्दू धर्म पर आंच आ जाती है।''[2]

''अपने खिलाने'' उपन्यास को अशोक और ''सामर्थ्य और सीमा'' के रतन चन्द मकोला दोनों पूँजीपति है और उनका विश्वास है कि धर्म मेरा जीवन है, धर्म मेरा अस्तित्व है। परन्तु इसी धर्म की आड़ में वे जनता का शोषण करते हैं।

इसी प्रकार 'सबहि नचावत राम गोसाई' उपन्यास के सेठ राधेश्याम धर्म के नाम पर नगर पालिका की जमीन हथियाकर उस पर मन्दिर बनवाते हैं। और फिर मन्दिर के नीचे तहखाने में बेईमानी का रूपया सहेज कर रखते हैं।''[3]

---

1 भूले बिसरे चित्र-भगवती चरण वर्मा पेज-256
2 भूले-बिसरे चित्र- भगवतीचरण वर्मा पेज-204-206
3 सबहिं नचावत राम गोसाई पेज-38

'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास के सेठ चिमन अपने मिल के मजदूरों की छटनी कर उन्हें काम देने पर राजी नहीं होते, किन्तु बेकार न होने वाले लोगों के लिए खेरात के फण्ड में हजार-पाच सौ रूपया देने को तैयार हैं क्योंकि दान करना व्यक्ति का धर्म है।''[1]

रतन चन्द मकोला के धार्मिक विचारों पर वर्मा जी मानकुमारी के कथन द्वारा व्यंग्य करते हैं-मकोला जी आप निरामिष भोजी है आपको खून से डर लगता हैं और इसलिए आपने ऐसी मशीन ईजाद की है कि लाखों करोड़ो आदमी रक्तहीन होकर तडपते हुए मर जाए और उनकी मृत्यु यातना आपको दिखलाई न दे। उनकी शक्ति को आप सीख ले। अभाव भूख प्यास के पिशाचों को आप ने दुनिया मे छोड रखा है।[2]

इस प्रकार पूँजीपति वर्ग धर्म के ओट में गरीबों का शोषण करते हैं वर्मा जी का मत है कि हिन्दू धर्म की वैयक्तिकता ने ही शोषण, बाल फरेब एवं चोर बाजारी को प्रोत्साहित किया है। धर्म के विकृत स्वरूप पर लेखक ने व्यग प्रहार किए है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में धर्म का ताात्विक विवेचना नहीं हुआ है। अपितु हिन्दू मुस्लिम समस्या के रूप में देखने का प्रयास किया गया है यह समस्या सांस्कृतिक परम्परा की ही उपज है। अपने उपन्यासों में वर्मा जी ने हिन्दू मुस्लिम धार्मिक सकीर्णता पर स्थान-स्थान पर व्यग किये है। स्वामी जटिलानन्द और अल्लामा बहशी का शास्त्रार्थ आर्य समाज और इस्लामी धर्म पर व्यंग है।[3]

वर्मा जी धर्म और मजहब में अन्तर मानते है मजहब खुद एक सामाजिक इकाई है। मजहब का मकसद है, समाज को कायम रखना, समाज को ताकतवर बनाना, क्योकि यह समाज की इन्सा नियत का ठोस रूप है। मजहब सामाजिक है वह वैयक्तिक है ही नहीं। मन्दिर बनवाना, धर्मशालाएं खोलना, सदावर्त बॉटना ताकि चोर बाजारी में धोखा धड़ी में और फरेब मे भगवान हमारी मदद करे, यह इस वैयक्तिक मजहब की कुरूपता है। हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उसने धर्म को सामाजिक नहीं, उसे उसने वैयक्तिक माना है।[4]

---

[1] सीधी-सच्ची वाले- पेज-70
[2] सामर्थ्य और सीमा-पेज-243
[3] भूले विसरे चित्र-21
[4] सीधी सच्ची बातें-पेज 210

यदि हिन्दू धर्म अपनी नितान्त वैयक्तिकता के कारण पूँजीवादी व्यवस्था का शिकार बनकर उसका समर्थक एव प्रचारक बन जाता है, तो इस्लाम अपनी अत्यधिक सकीर्णता के कारण विवेकहीन होकर वैयक्तिक स्वतत्रता को ही समाप्त कर देता है। इस्लाम की कुठित सामाजिक चेतना पर प्रहार करते हुए वर्मा जी कहते हैं इस्लाम में भी अपनी कमजोरियाँ हैं वहा भी बहिश्त और दोजख है। उसमें सामाजिकता तो है लेकिन इतनी सकुचित सामाजिकता है कि वह व्यक्तिवाद से ज्यादा बदशक्ल और खतरनाक है। यह सकुचित सामाजिकता का नियत हैवानियत का जामा पहनकर कत्लेआम और भयानक खूनखराबे का रूप धारण कर सकती है, बडे-बड़े युद्धों का कारण बन सकती है, जिसमें बेसुमार बेगुनाह लोग मौत के घाट उतार दिये जायें।[1] यही कारण है कि वर्मा जी दोनों धर्मो की विकृतियो पर व्यग्य करते हुए इन विकृत रूपों को मानव मात्र के लिए अहितकर और असामाजिक मानते हैं।

हिन्दू समाज एक्सप्लायटेशन की नींव पर कायम है। यह बरहमन, क्षत्री, वैश्य, शूद्र कितना ऊँच-नीच है। एक मौज करे दूसरा पिसे। जबकि मुसलमान समाज की नींव 'युनियन ब्रदर हुड' पर कायम है।[2] यहीं हिन्दू धर्म पर अक्रामक रूप अपनाते हुए वर्मा जी कहते हैं- ''तुम्हारे मजहब ने इन्सान की बेबसी, गरीबी और शोषण को एक सामाजिक सत्य के रूप में मंजूर कर लिया है। गरीबी और बेबसी वहीं होती है जहा शोषण है। जुल्म है। जुल्म और लूटखसोट वैयक्तिक कमजोरिया हैं, समाज इसको रोकने के लिए बना है समाज का धर्म है कि जुल्म और लूट खसोट को रोके, लेकिन तुम्हारे समाज ने इस जुल्म और शोषण को खुली छूट है और लूट को ढकने के लिए समाज ने दान-दया को अहमियत दी। मैं कहता हूँ यह जुल्म और शोषण बन्द कर दिया जाय तो दान -दया की जरूयत ही नहीं होगी। समाज की नींव न्याय और अधिकार पर होनी चाहिए, इस दान पर टिक नहीं सकती।''[3]

---

1 सीधी सच्ची बातें-पेज 210
2 भूले बिसरे चित्र-पेज-34
3 सीधी सच्ची बाते - पेज 208

समाज में जर्जर एवं विकृत परम्पराओं सम्बन्धी हिन्दू जनता को मुक्ति दिलाने के बहाने से मुसलमानों ने इस्लाम के प्रचार द्वारा हिन्दू जाति के एक बहुत बड़े भाग को इस्लाम धर्म का अनुयायी बना लिया 'भूले बिसरे चित्र' में सोमेश्वर कहता है-''हम हिन्दुओं की पापलीला ने हमारे धर्म को खोखला कर दिया था और हमारे धर्म की इस कमजोरी का फायदा मुसलमानों और क्रिस्तानों ने उठाया। लाखो करोड़ों की संख्या में हिन्दू विधर्मी बनाए गए।''[1]

हिन्दूओ ने अपने धर्म की रक्षा के लिए आर्यसमाज आन्दोलन चलाया। महात्मा गाधी ने ऊँच-नीच का भेद भाव मिटाने के लिए भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी क्योंकि मुसलमानों को इस कार्य में धर्म प्रचार ही दिखाई दिया। जमील अहमद कहता है-''गांधी का पूरा नजरिया हिन्दू धर्म का नजरिया है। वह मुसलमानों का नजरिया नहीं हो सकता। हमारा मजहब कुर्बानियों का मजहब है। हम न अहिंसा को समझ सकते हैं, न अपना सकते हैं। महात्मा गांधी यह अच्छी तरह जानते हैं और महसूस करते हैं। इस लिए यह हिन्दू मुसलमान के बनिस्पत उनका ज्यादा नजदीकी है।''[2] इस सोच से ऐसा लगता है कि मुसलमानों ने हिन्दू धर्म की सभी विकृतियों को अपना लिया किन्तु उसकी उदारता आत्मसात न कर सके।

मुसलमान अपनी धार्मिक कट्टरता को कतई छोड़ न सके। सीधा-सादा ईमानदार स्वतंत्रता संग्राम का नेता मुहम्मदशफी भी इस मजहब की कट्टरता से मुक्त न रह सका-''मजहब मुल्क के उपर है, मजहब खुदा है। उर्दू मुसलमानों की मादरी जवान है, उर्दू में हमारी तहजीब है।[3] इस बात से यह साबित होता है कि मुसलमानों में सारी राहें धर्म से ही निकलती है और धर्म में ही जाकर मिल जाती है।

---

[1] भूले बिसरे चित्र - पेज 196
[2] सीधी सच्ची बाते, भगवती चरण वर्मा पेज 144
[3] प्रश्न और मरीचिका पेज-235

"प्रश्न और मरीचिका" में इसी धार्मिक कट्टरता ने देश का विभाजन कराया, गाधी जी के मृत्यु का कारण बनी तथा उदयराज और सुरैया के प्रेम को उजाड़ दिया।[1] और उसने ही केसर बाई-मुहम्मद शफी की जिन्दगी तबाह किया तथा मुहम्मद शफी की मौत का कारण भी यही कट्टरता बनी।[2] धर्म तो एक भावनात्मक नाजुक तन्तु की तरह है तो इस धर्म में कट्टरता का आना कितना हास्यास्पद है। मजहब सामाजिक इकाई है। यदि मजहब वैयक्तिक चीज होती तो हिन्दूस्तान का बटवारा नहीं होता।[3] अत तमाम समाज के स्वार्थी तत्व मजहब के नाम पर धर्म का सहारा लेकर समाज मे कुत्सित भावना विचार को जन्म देते हैं। इस धार्मिक कट्टरता में वर्मा जी ने सास्कृतिक मूल्यों के भेद को स्वीकार किया है जब तक भारतीयों में कोई समुचित दृष्टि है। गाधी जी मजहब को वैयक्तिक चीज मानते हुए भी को समुचित संमग्र परिवर्तन न प्रस्तुत कर सके जो एकता की नींव थी। इसी से उन्हें सफलता न मिल सकी।[4]

मजहब के व्यक्तिगत पक्ष को स्वीकार करते हुए वर्मा जी ने ज्ञान प्रकाश के माध्यम से प्रस्तुत किया है- अगर हम मजहब को व्यक्तिगत चीजमान ले और समाज से उसे अलग कर लें तो यह मसला आसानी से हल हो सकता है। यहाँ हिन्दुस्तान में न जाने कितने मजहब समय-समय पर आये और वे सब व्यक्तिगत रह गये। यहाँ वैष्णव है, शैव है, शाक्य है, यहाँ जैन है, यहाँ लोग साँपो को पूजते हैं, यहाँ आस्तिक है और नास्तिक भी हैं।[5]

इसी प्रकार जगत प्रकाश कहता है-'धर्म का काम है मनुष्य में सद्भावना जगाना। धर्म समाज के लिए नहीं होता, वह तो व्यक्ति के लिए होता है।[6] धर्म तो व्यक्तिगत आस्था की चीज होता है जो कि व्यक्ति उसे किस दायरे में रखकर उसमे आस्था रखता है। वर्मा जी जर्जर रूढ़िग्रस्त हिन्दू धर्म से व्यक्ति को मुक्ति दिलाने के पक्ष में है। धर्म का वह रूप उन्हें स्वीकार है जो मनुष्य में सदभावना जगाकर मानवता के विकास की भावना को प्रेरित करता है। 'सामर्थ्य और सीमा'

---

[1] प्रश्न और मरीचिका पेज-112
[2] प्रश्न और मरीचिका पेज-462
[3] प्रश्न और मरीचिका पेज-104
[4] प्रश्न और मरीचिका भगवती चरण वमा पेज-106
[5] भूले बिसरे चित्र-भगवती चरण वर्मा-पेज-433
[6] सीधी सच्ची बातें पेज-208

का एकवर्ट किशन, मसूर कहता है-मै न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ, न इसाई। मजहब जहालत नहीं उपज है। मैं सिर्फ एक इन्सान हूँ और इन्सानियत का कायल हूँ।[1] धर्म कर्म मजहब एक ढकोसला है।[2] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी ने अन्तरात्मा की आवाज को ही धर्म माना है।

युगीन धार्मिक संघर्ष :

पाश्चात्य सस्कृति एव सभ्यता के प्रभाव से भारतीय संस्कृति विकृत होती जा रही थी। अत इस आक्रामक प्रभाव से बचने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। जिससे अग्रेज और मुसलमानो को अपने अमीष्ट में सफलता न मिल सकी।

युगीन परिस्थितियों एवं प्रभाव के स्वरूप वर्मा जी भी उस प्रभाव से प्रमावित हुए बिना नहीं रहे तथा उन परिस्थतियों ने उनके मन मस्तिष्क को झकझोर दिया। इस वजह से वर्मा जी के उपन्यासों में आर्यसमाज, इस्लाम, सनातन धर्म और ईसाई धर्म का जो संघर्ष और टकराव प्रस्तुत हुआ है वह तत्कालीन साम्प्रदायिक संघर्षो का यथार्थ चित्र है।

आर्य समाज बौद्धिक युग की संस्कृति से प्रभावित है तथापि रूढि वादी सनातन धर्म के तमासाच्छन्न वातावरण में नवीन चेतना का प्रभाव था। वर्मा जी भी उस प्रभाव आलोक से अछूते नहीं रह सके। इसी वजह से वह जीवन प्रर्यन्त निरामिष भोजी ही रहें आर्य समाज से वह प्रभावित हुए है किन्तु उनके साहित्य में कमी भी पूर्वाग्रह नहीं है इसका सबसे प्रमुख कारण था कि वर्मा ने मानवीयता दृष्टि में रख कर आधुनिकतावादी सोच के सहारे अपने साहित्य में चौतरफा दृष्टि डाली है। जिससे धर्म से सम्बन्धित व्यवहार भी उसी कसौटी पर रख कर कसे हैं।

वर्मा जी ने सन् 1909 में ई0 के लगभग भारती जीवन में आर्य समाज का व्यापक प्रभाव दिखलाते हुए ततयुगीन साम्प्रदायिक संघर्षो की अभिव्यक्ति ''भूले बिसरे चित्र' में की है। आर्य समाजी जटिलानन्द, अल्लामा बहसी तथा

---

[1] सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा पेज 132

[2] सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा पेज 80

फादर राम इकाही मशीह के मध्य हुए शास्त्रार्थ का चित्रण इसी उद्देश्य से किया है। लेखक की व्यग्यात्मक शैली ने आर्य समाज और इस्लाम के अनुपयोगी पक्षों पर तीखा प्रचार किया है। साथ ही सनातन धर्मी गोवर्धन शास्त्री को आर्य समाजियों द्वारा शास्त्रार्थ में भाग न लेने देना उस युग में लुप्त होते हुए सनातन धर्म के अस्तित्व का परिचायक है।

'भूले बिसरे चित्र' मे वर्मा ने धार्मिक उपदेश को छद्मवेशी रूप का यथार्थ चित्रण आर्य समाजी जटिलानन्द, तथा अल्लामा बहसी के बीच शास्त्रार्थ के रूप में प्रस्तुत किया है।

शास्त्रार्थ एक दूसरे के सवाल रूपी कटाक्ष से शुरू हुआ अल्लामा बहसी–"हुक्म अल्लाह का मर्जी रसूल की। हे घुटमुण्ड स्वामी, मुझे कहना यह है कि तूने सिर्फ अपनी चाँद ही नहीं घुटवाई, बल्कि तूने अपनी मूछ भी मुड़ा दी, दाढ़ी सफा करा दी। तेरे परमात्मा ने तेरे सिर पर बाल उगाये, उसने तेरी मूंछो पर बाल उगाए, उसने तेरी दाढी पर बाल उगाये। तो सूरत यह हुई कि तूने अपने परमात्मा को जाहिल गँवार समझा । . ये घुटमुण्ड स्वामी जटिलानन्द; परमात्मा की हिमाकत का इस तरह अपनी हरकतों से ऐलान करना महज कुफ्र ही नहीं, यह बहुत बड़ा पाजी पन है।[1]

इस प्रश्न से उत्तेजित जटिलानन्द–"जय हो महर्षि दयानन्द सरस्वती की! हमारे धर्म के अनुसार दुनिया मे तीन तत्व काम करते है–परमात्मा–आत्मा और प्रकृति। हे अल्लामा कहलाने वाले बहसी, मेरा शरीर प्रकृति का भाग है, मेरा प्राण आत्मा का भाग है; अत· आत्मा और प्रकृति का स्वामी परमात्मा है गो कि आत्मा और प्रकृति को पैदा परमात्मा ने ही किया है लेकिन उसने इनको अपने मन के मुताबिक काम करने की छूट दे दी है। ऐ अल्लामा तेरे खुदा ने पहाड़ बनाए, जगल बनाये, शेर बनाए गीदड़ बनाए, सुअर बनाए, साँप बनाए . . यह सब बनाकर ऐ अल्लामा बहसी, तुझे बनाकर तेरे खुदा ने जो मसखरापन जाहिर किया उसकी दाद नहीं दी जा सकती।[2]

---

1 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 178
2 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 179

फादरमसीह–"स्वामी जी, क्या यह ठीक है कि आर्य समाज में मूर्तिपूजा मना हे, मन्दिर में जाना गलत माना जाता है और आर्य समाज में पूजा करने का तरीका सख्या के साथ हवन और यज्ञ है?"[1]

जटिलानन्द ने उत्तर दिया–"पादरी साहेब, परमात्मा निराकार है, तुम्हारा इसाई धर्म तो यही मानता हैं वह हर जगह रहता है, इस लिए मन्दिर, मस्जिद, गिरजा ये सब बेकार है।"[2]

इस प्रकार से वर्मा जी ने एक दूसरे धर्म के आचार्यो से शास्त्रार्थ कराकर धर्म में विकृति भरे हुए तत्वों के उपर प्रहार किया है। अत वर्मा जी ने उस परमसत्ता को ही मानते है जो जन समुदाय को बिनारीति कुरीति के सुलभ हो। हलॉकि अग्रेजी शासन होने के नाते ईसाई मिशनरियों का गरीब जतना या शूद्र वर्ग को जो हिन्दू थे वह हिन्दू धर्म के कर्म काण्डों से, मन्दिर, धार्मिक उत्सव से दूर थे होने के कारण ईसाई धर्म के तरफ झुकते गये और धर्मान्तरण होता गया।

हिन्दू और इस्लाम धर्म में इतना विरोध था कि अंग्रेजी शासन को वे एक दूसरे की अपेक्षा अच्छा समझते थे।

मीर जाफर अली– हमारे पंडित जी आरिया समाजी बन गये है। क्यों पंडत, मैं गलत तो नहीं कहता?"[3]

इसी प्रकार पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मीरजाफर अली न तो रोजा रखते थे और न नमाज पढते थे, फिर भी हिन्दुओ के विरोधी थे। वह कहते हैं– ये धोती परशाद दुनियां फतेह करेगे? मरने से पहले जो चींटी के पर निकलते हैं, ठीक उसी तरह हिन्दू धर्म में यह आरिया समाजी पैदा हुआ है।[4]

यद्यपि कि इन सरकारी अफसरों के व्यक्तिगत जीवन में धर्म का कोई स्थान न था फिर भी धर्म को सामाजिक कवच अवश्य बनाये हुए थे।

---

[1] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 180
[2] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 180
[3] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 161
[4] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 196

भगवती चरण वर्मा ने आर्य समाज की प्रगतिवादी विचारधारा से एवं सम्पूर्ण युग के व्यापक रूप से चित्रित किया हे। यहाँ तक गाधी जैसे महान पुरूष भी उसके प्रभाव से अछूते न रह सके। इसी से जमील कहता है-"महात्मा गाधी ने आर्य समाज के सब प्रोग्राम अपना लिए हैं। जाति-पाँति को तोड़ना, अछूतोद्धार, स्त्री, शिक्षा, और स्वतत्रता, विधवा-विवाह छूआछूत हटाना वगैरहा।[1]

आज यहाँ सभी धर्म अपना-अपना अस्तित्व गवा बैठे है वहीं आर्य समाज अपनी प्रगतिवादी विचारधाराक के कारण आज भी जीवित है राजा राम मोहन राय और दयानन्द सरस्वती सदृश्य महापुरूषो ने अपने सुधारो द्वारा हिन्दू धर्म का खोखलापन दूर किया। जिससे हिन्दू धर्म 'आर्य समाज' इस्लाम और ईसाइयत के आक्रमण प्रभाव से बच सका।

आर्य समाज के छुआ छूत मिटाने के प्रोग्राम के अनुसार ही 'सबहि नचावत राम गोसाई' में राजा पृथ्वीपाल सिंह का विवाह सिल्वेनिया जोजेफ के साथ-उसे शुद्धि द्वारा हिन्दू बनाकर कर दिया जाता है। उसका नाम ल्विेनिया से शैलजा हो जाता है। इसी प्रकार 'भूले बिसरे चित्र' में वेश्या मलका आर्य समाज मन्दिर में शुद्ध होकर बन गई और उसने सत्यब्रत शर्मा के साथ विवाह करके अपना नाम माया शर्मा रख लिया।

"भूले बिसरे चित्र' उपन्यास के प्रथम और द्वितीय खण्ड का समाजिक परिवेश सनातनी है। इसी कारण बाबू वटेश्वरी वकील विलायत जाने के कारण जाति से बहिष्कृत कर दिये जाते है। किन्तु 1918 में विदेश से वायस आया हुआ ज्ञान प्रकार जाति से बहिष्कृत नहीं किया जाता और न प्रायश्चित करता है। इसी प्रकार 'टेढे मेढे रास्ते' उपन्यास का उमानाथ जर्मनी से लौट्कर प्रायश्चित विधान का अस्वीकार कर देता है और जाति से बहिस्कृत भी नहीं होता। पुरानी पीढी के झागड़ू मिसिर उसका समर्थन करते है। यह प्रगतिशील धार्मिक मान्यताओं का प्रतीक है। आज आर्यसमाज के विविध प्रोग्राम-स्त्री, शिक्षा, विधवा विवाह और अछूतोद्धार आदि समाज में प्रचलित हो चुके थे।

---

[1] सीधी सच्ची बातें, भगवती चरण वर्मा, पेज-143

संक्षेपत यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी एक ओर तो आर्य समाज की प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति कर उसका समर्थन किया दूसरी तरफ हिन्दू धर्म के मूल आधुनिक रूप को स्वीकार किया है।

वर्मा जी के उपन्यासों में दर्शन :

प्रत्येक युग अपने-अपने विचारों में स्थापित होता है। विचारों का सम्बन्ध मानव के मानसिक जगत से होता है और मानसिक जगत के निर्माण में समाज का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक युग में बौद्धिक जनमानस नियंत्रित होता है। देश-काल के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है। इन्हीं विचारधाराओं के द्वारा व्यक्ति अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण करता है। युग, समाज तथा व्यक्ति इन तीनों की परिस्थितियों के संघर्ष से नूतन विचारधारा का निर्माण होता है। इन्हीं के केन्द्रबिन्दु में मानवतावाद, समाजवाद तथा व्यक्तिवाद का जन्म होता है। मानव, समाज तथा व्यक्ति-जिस विचारधारा में इन तीनों का समन्वय होता है वही विचार-दर्शन श्रेष्ठ होता है।

वर्तमान भारतीय मनोजगत विभिन्न देशी एवं विदेशी विचारदर्शनों से आक्रान्त रहा है। एक ओर आधुनिक भारतीय चिन्तन समाजवादी, व्यक्तिवादी, मानवतावादी एवं गांधीवादी विचार दर्शनों से नियंत्रित है, दूसरी ओर अस्तित्व वाद एवं क्षणवाद जैसी आधुनिक पश्चात्य विचारधाराओं से भी अछूता नहीं है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में इन विचार दर्शनों का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है।

एक श्रेष्ठ कलाकार का जीवन-दर्शन उसके अनुभव की देन होता है, वर्मा जी का जीवन दर्शन उनके अनुभवों पर ही आधारित है। मध्यवर्गीय परिवार की स्थितियों के सारे उतार-चढ़ाव देखते हुए, जीवन के प्रत्येक संघर्ष और प्रलोभन का सामना कर उसमें विजयी होते हुए वर्मा जी निष्कर्षत. नियतिवादी ही ठहरते है। उन्होने अपने प्रारम्भिक उपन्यास से लेकर अंतिम उपन्यास तक नियति का गठन किया है। उनके नियतिवादी होने का अर्थ निराशावादी होना नहीं है। उनके अनुसार व्यक्ति अथवा पात्र नियति के हाथों का एक खिलौना है। भगवतीचरण वर्मा का जीवन-दर्शन एक आस्थावादी जीवन-दर्शन है। वह जीवन को पराभूत कर

देने वाली विशेषताओं से आच्छन्न मात्र नहीं मानते हैं, क्योंकि बिना कर्म किए हुए जीवन की अन्य दूसरी गति ही नहीं है। तभी तो उनके विचार चित्रलेखा में इस प्रकार से-'जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है और हलचल और परिवर्तन में सुख-शान्ति का कोई स्थान नहीं।''[1] इसका एक कारण है। जीवन की किसी भी साधारण अथवा विषम क्रिया में जब कोई प्रतिक्रिया होती है तो जीवन की इस क्रिया-प्रतिक्रिया में प्रतिक्रिया को भी क्रिया मानकर उसकी भी प्रतिक्रिया होती है। इसलिए जीवन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं रह पाता है। लेखक ने अपने वृहद उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' में इसी बात को इन शब्दो में रखा है-''जीवन का नियम है कर्म और जहाँ क्रिया है वहीं प्रतिक्रिया भी है।''[2]

जीवन में कर्म की यह क्रिया और प्रतिक्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती रहती है। बल्कि लेखक के अनुसार यह मानना अधिक युक्तिसंगत है कि जीवन की अवश्यम्भावी चरम परिणति मृत्यु ही है।

व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपनी सीमाओं में अपना कर्तव्य अवश्य करना चाहिए। यद्यपि वह व्यक्ति चाहे जो कुछ करे, होगा तो वही जो भगवान उससे कराना चाहता है।

नियतिवादी जीवनदर्शन में-भाग्यवाद, भोगवाद और कर्मवाद का समन्वय :

सामाजिक स्थितियों में बँधा हुआ व्यक्ति अपनी सीमाओं में आबद्ध नियति के सामने एक निरीह प्राणी ठहरता है-एक खिलौना मात्र। व्यक्ति कुछ भी नहीं है। कहीं वह समाज की मान्यताओं को तोड़ने के लिए, तो कहीं पाप-पुण्य की निश्चित सीमाओं को समझते हुए नियतिचक्र के भँवर में पड़कर अतल गहराइयों मे पहुँच जाता है, और कहीं लौकिक अथवा अलौकिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होता हुआ जब उन्नति की कुलाचें भरता है तब किसी परिस्थिति विशेष में पड़कर अपने को नितान्त निर्बल अनुभव करता हुआ ध्वंश के गर्त में जा पड़ता है। इस प्रकार से व्यक्ति परिस्थितियों के दास के सिवा कुछ भी नहीं है। मनुष्य जो कुछ

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा-पेज 23
2 भूले बिसरे चित्र भगवती चरण वमा, पेज 730

सोचता आता है वह नहीं हो पाता। केवल इतना ही नहीं, बल्कि ठीक उसके विपरीत करने को बाध्य हो चुका होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुष्य कुछ करता नहीं बल्कि उससे कराया जाता है। एक अदृश्य का विधान, एक नियति की प्रेरणा व्यक्ति को उसके स्वभाव के अनुकूल, स्वभाव के अनुरूप, परिस्थिति के ढाचे में ढालकर उसे विवश करती हुई साधन के रूप में उसका उपयोग करती है। इसी नियतिवाद पर बल देते हुए वर्मा जी ने 'चित्रलेखा' में स्पष्ट किया है- "मनुष्य अपना स्वामी नहीं, वह परिस्थितियों का दास है, विवश है। वह कर्ता नहीं, वह केवल साधन है।"[1]

'सीधी-सच्ची बातें' में-"मनुष्य से अलग हट कर कहीं कोई विधान है अनजाना, अदृश्य। वहीं विधान सब कुछ संचालित कर रहा है"।[2] मनुष्य के हाथ में कुछ भी नहीं है वही अनजाना विधान जैसा चाहता है, वह होता है। नियतिवाद की अपनी ही गति है, उसका अपना ही एक क्रम है जिसे कोई नहीं जानता। इसी से उसे अदृश्य की संज्ञा दी जाती है। 'सामर्थ्य और सीमा' में नाहरसिह कहते है- "कर्ता कोई दूसरा ही है, जो अदृश्य है, हम सब तो कर्ता के साधन है।"[3] मनुष्य के नर्तन की डोर किसी अदृश्य हाथ में होती है। वह उससे मुक्त नहीं हो सकता है। आगे नाहरसिह कहते हैं-"यहाँ किसी का ठिकाना नहीं, कठपुतालियों का नाच हो रहा है, डोर किसी दूसरे के हाथ में है; जिसे हम देख नहीं पाते।"[4]

'फिर वह नहीं आई' में ज्ञानचन्द नियति के समक्ष घुटने टेक देता है। "नियति का ताना-बाना बुनने वाले पर हमारा कोई वश नहीं; उसके विरूद्ध चलने की, काम करने की, हिलने-डुलने तक की स्वाधीनता नहीं हममें क्षमता नहीं।"[5]

वर्मा जी के सभी उपन्यासों में नियतिवादी जीवन-दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। 'सबहिं नचावत राम गोसाई' कृति के नाम से यह प्रमाणित होता है कि सम्पूर्ण उपन्यास नियतिवादी है और यह पात्रों के माध्यम से स्पष्ट भी हुआ है। उपन्यास के अन्त में वर्मा जी स्वयं लिखते हैं-"सबहिं नचावत राम गोसाई" तो यह सब

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147
2 सीधी-सच्ची बाते, भगवती चरण वर्मा, पेज 282
3 सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज 176
4 सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज 73
5 फिर वह नही आई, भगवती चरण वर्मा, पेज 27

चरित्र रामगोसाईं के इंगित पर नाच रहे हैं। यह चरित्र ही नहीं, बल्कि यह दुनिया ही राम गोसाई के इगित पर नाच रही है, यानी मैंने भी राम गोसाईं के इंगित पर नाचते हुए यह कहानी लिख डाली है।''[1]

'प्रश्न और मरीचिका' के सारे पात्र नियतिवादी हैं, जो नियति के समक्ष झुक जाते हैं। उनके सारे सपने टूट जाते हैं। ईश्वर की इच्छा मानकर अपनी स्थिति में सन्तुष्ट होने को बाध्य हो जाते हैं। ईश्वर की इच्छा के सामने मनुष्य नगण्य है। अत मनुष्य की इच्छाओं का अन्तिम परिणाम दुख ही दुख है। यह धारणा निराशावाद को जन्म देती है। इस निराशा के कुहासे से बचने के लिए वर्मा जी ने 'गीता' के निष्काम कर्मवाद का सहारा लिया है, जिससे वह मानवमात्र को कर्म करने का सन्देश देते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में नियतिवादी दर्शन के साथ-साथ कर्मवादी दर्शन की स्थापना की है। उनका नियतिवाद मानव को कर्म करने की प्रेरणा देता है न कि अकर्मण्य बनाता है।

लेखक इस बात से भली-भाँति परिचित है कि जीवन में बिना कर्म किये किसी प्रकार का जीवन चलायमान नहीं। जीवन एक सतत परिवर्तनशील प्रक्रिया है फिर जहाँ परिवर्तन है वहाँ विश्राम कहाँ? और जहाँ विश्राम नहीं है वहाँ शान्ति भी नहीं है। इसी बात को वर्मा जी ने चित्रलेखा में स्पष्ट करते है-''जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है, और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।''[2]

लेखक के अनुसार शरीर और आत्मा एक ही है-''शरीर का हर एक कर्म आत्मा का कर्म है, शरीर की हर एक कमजोरी आत्मा की कमजोरी है।''[3]

समाज की शक्ति के सामने संघर्ष करने की जब बिल्कुल शक्ति न रह जाय तब व्यक्ति मृतप्राय हो जाता है अर्थात समाज में उसका कोई योगदान नहीं रह जाता। इस प्रकार व्यक्ति में विकृति कुछ भी नहीं है, सब कुछ स्वाभाविक है। क्योंकि व्यक्ति स्वयं कुछ नहीं करता है बल्कि उससे कराया जाता है। स्वभाव के प्राकृतिक होने के कारण, मनुष्य स्वभाव के अनुकूल ही कार्य करता है उसके

---

1 सबहि नचावत राम गोसाई, भगवतीचरण वर्मा, पेज 284

2 चित्र लेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज-25

[3] रेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज-5

विपरीत कुछ कर भी नहीं सकता है, इसलिए पाप और पुण्य कुछ भी नहीं है। परिस्थितियो के वश में होकर ही व्यक्ति कर्म करता है। 'चित्रलेखा' में इसी बात को स्पष्ट करते हुए वर्मा जी ने दिखाया है-"मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थतियों का दास है। वह कर्ता नहीं है, केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?"[1]

'सामर्थ्य और सीमा' में व्यक्ति अपने को शक्तिशाली समझ कर प्रकृति से टक्कर लेता है, क्योंकि वह तो अह के अभिमान से भरा रहता है, किन्तु अन्त में उसे पता चलता है। तब नियति के सामने उसका अहं चूर-चूर हो जाता है। इसका साक्षात उदाहरण नदी पर बाँध बनाना और नदी के बाढ से सारे सपने टूट जाना यह नियति के विधान की तरफ ही इगित करता है।

वर्मा जी की जीवन सम्बन्धी मान्यता गीता के निष्काम कर्मयोग की ओर इगित करवाती है। यहाँ पर हम यह कह सकते हैं कि मानव शरीर ईश्वर-प्रदत्त कार्य वहन करने का साधन है। इसलिए आत्मा से कम महत्व उसका नहीं है। पाप और पुण्य का विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि व्यक्ति परिस्थितिवश ही उन्हें करता है। व्यक्ति के जीवन में संयम के साथ कर्मठ्ता का होना आवश्यक है। ताकि प्राणियों के मध्य विषमता कम से कम हो। यह तभी संभव है जब व्यक्ति अपनी उपलब्धि को कर्तव्य मानकर चले। कर्मफल में आस्था रखकर चलना ही उस अज्ञात शक्ति के प्रति एक अटूट विश्वास है। वर्मा जी पूर्व जन्म में भी विश्वास करते हैं। किसी अज्ञात और अदृश्य शक्ति की प्रेरणा ही तो व्यक्ति से अच्छा या बुरा कराती है। विधि के विधान में किसी का भी, कोई बस नहीं है। 'आखिरी दॉव' के पात्र इसी बात को दुहराते है। चमेली कहती है-"अस्वस्थ रहा भी कब तक जा सकता है, सेठ नियति के विधान के खिलाफ कौन लड़ सकता है, कौन लड सकता है।"[2] इसी प्रकार शिवकुमार चमेली से कहता है, "चमेली रानी, न इसमें किसी का दोष है, और न किसी ने पाप किया है। जो कुछ हुआ है, वह विधि का विधान था। भगवान को वही करना था, और वह कैसे बच सकता था।"[3]

---

[1] चित्र लेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज-147
[2] अखिरी दाँव, भगवतीचरण वर्मा, पेज-129
[3] आखिरी दाँव, भगवतीचरण वर्मा, पेज-129

वर्मा जी का मानना है कि प्रकृति में जो कुछ भी घटनाएं घटित होती हैं वह अकारण नहीं हैं। उन सबके कोई न कोई कारण हैं–"यह कारण और कर्म, कर्म और कारण की श्रृखला अनादि काल से चल रही है, अनन्त काल तक चलती रहेगी। मनुष्य इस कर्म–काण्ड की श्रृखला में योगदान करता आया है, शायद स्वय ही कर्म और कारण के रूप में उसे योगदान करते रहना होगा।"[1] क्योंकि कर्ता तो कोई और है, हम सब तो निमित्त मात्र हैं।

वर्मा जी ने नियति के साथ–साथ "भाग्य" शब्द का भी प्रयोग किया है, अर्थात् ऐसा लगता है कि वह भाग्यवादी भी हैं और यह मानते हैं कि जो कुछ ईश्वर ने मनुष्य के ललाट में लिख दिया है उसे किसी प्रकार भी मिटाया नहीं जा सकता। "राजकुल वालों को किसानी करनी पड़े, यह सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात है। लेकिन क्या किया जाय, समय सब कुछ करवा लेता है। विधान का लिखा कोई काट नहीं सकता है।"[2]

"सबहि नचावत रामगोसाई" के अधिकाश पात्र भाग्यवादी हैं। इसमें लेखक ने बुद्धि, भावना और भाग्य का रोचक चित्र खीचा है–"सजीवन भाग्य का लिखा टाला नहीं जा सकता, जो कुछ तुमने किया उसके लिए हम तुम्हें दोष नहीं दे रहे। जो हो गया वह हो गया उसे बदला नहीं जा सकता।"[3] इस दृष्टि से जो कुछ भाग्य में लिखा होता है उसे मनुष्य को अवश्य ही भोगना पड़ता है। जब भाग्य पलटा खाता है तब मनुष्य असहाय हो जाता है। यही कारण यहाँ जाहिर होता है जबरसिंह और रामलोचन पाण्डे के राजनीतिक चुनावी हार से। यहाँ भाग्य की विडम्बना ही तो है। वर्मा जी ने बुद्धि और शक्ति के ऊपर भाग्य की महत्ता प्रतिपादित करके अपने उपन्यास में यह चरितार्थ कर दिया है कि "भाग्यफलति सर्वत्र नच विधान च पौरूषम।" भाग्य के समक्ष मनुष्य विवश है, असमर्थ है, परतंत्र है। वर्मा जी का भाग्यवादी दृष्टिकोण नियति वादी दर्शन से प्रभावित है।

---

[1] सीधी–सच्ची बातें, भगवतीचरण वर्मा, पेज–25
[2] भूले–बिसरे चित्र, भगवतीचरण वर्मा, पेज–83
[3] सवहि नाचावत रामग गोसाई भगवती चरण वर्मा, पेज–116

वर्मा जी के साहित्य में एक सीमा तक हम भोग वादी प्रवृत्ति का चित्रण देखते हैं। वह उस अध्यात्मवाद में विश्वास नहीं करते जिसमें आत्मा के हनन को महत्व दिया जाता है। बल्कि वह बौद्धिक शान्ति, मानसिक विक्षोभ और कायिक क्षुब्ध को मिटाने के लिए इन्द्रियों अथवा सुखभोग का सहारा लेते हैं, जिसे पूरा करने के लिए सगीत, सुरा, और सुन्दरी को अच्छा माध्यम माना है।

भोगवादी दर्शन का प्रतिबिम्ब वर्मा जी के 'पतन' से लेकर 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास तक में मिलता है। विषय एव प्रतिपाद्य की दृष्टि से 'चित्रलेखा' वर्मा जी के भोगवादी दर्शन की सबसे सशक्त कृति है। चित्रलेखा का अभीष्ट जीवन 'न बुझने वाली पिपासा' है।

जीवन के सन्दर्भ मे वर्मा जी का विचार है कि जीवन एक नदी की सतत् धारा है। जीवन के मुक्त प्रवाह में न बह कर सयम, नियम योगादि के द्वारा गतिविधि को नियन्त्रित करना अस्वाभाविक ही नहीं, जीवन की उपेक्षा है। नैसर्गिक वृत्तियों को दबाना, उससे दूर भागना मनुष्य की दुर्बलता है। इसी कारण वर्मा जी ने अतीत एव भविष्य की चिन्ता किये बिना वर्तमान के उपभोग पर बल दिया है-"भूत और भविष्य, ये दोनों ही कल्पना की चीजें हैं, जिनसे हमको कोई प्रयोजन नहीं, वर्तमान हमारे सामने है, और वह उल्लास-विलास है, ससार का सारा सुख है, यौवन का सार है।"[1]

'सामर्थ्य और सीमा' के मेजर नाहरसिंह यौवन की सुन्दरता के उपभोग का समर्थन करते है, क्योंकि एक निश्चित अवधि के बाद यह क्षणभंगुर है-"यह यौवन पागलपन का एक खेल है, खेल लो इसे रानी बहू! इस खेल का सुख ही एक मात्र उपलब्धि है। जीवन की यही क्रीड़ा हमारे अस्तित्व की सार्थकता है।"[2] तथा 'रेखा' उपन्यास का शशिकान्त और 'प्रश्न और मरीचिका' का उदयराज प्रत्येक समस्या का हल शराब के नशे में अपने को विस्मृत कर देना मानते हैं।

जहाँ पर वर्मा जी कर्म पर बल देते है वहीं भोग के प्रति भी उनकी आस्था कम नहीं है। किन्तु वह भौतिक सुखों को महत्व देते हुए उसके उदात्ती करण को वांछनीय मानते हैं। बीजगुप्त भोगवादी होते हुए भी पतित नहीं है। वर्मा जी भोग के साथ-साथ त्याग को भी सर्वोच्च स्थान देते हैं।

---

1 चित्र लेखा, भगवतीचरण वर्मा, पेज-10

अत यह देखा जा सकता है कि एक ओर तो वर्मा जी के नियतिवादी दर्शन में भोगवाद तथा दूसरी तरफ भाग्यवाद दोनों के मध्य में नियति के साथ कार्य-कारण का सम्बन्ध जोड़कर भारतीय कर्मवाद की स्थापना हुई है। वे परिस्थितिजन्य प्रेरणा से अनुप्रणित हुए मनुष्य को अनुचित कार्य की छूट नहीं देते है।

वर्मा जी के साहित्य को देखने से लगता है कि वह अपने युग के सुधारक, विचारक गॉधी से कहीं न कहीं प्रभावित अवश्य थे। अत कहा जा सकता है कि वह गाधीवाद अर्थात गांधीवादी दर्शन से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। गांधी जी एक मानवतावादी विचारक थे। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक क्षेत्रो में दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया। गाधी जी का 'सत्य' और 'अहिसा' आन्दोलन मात्र रानीतिक आन्दोलन नहीं था, वरन् सांस्कृतिक धसतल पर आदर्शवादी और नैतिकतावादी दृष्टिकोण की स्थापना कर के देश, समाज और व्यक्ति को अराजक पूर्ण स्थिति की घुटन से बचाता है। गांधी जी का विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति में अवश्य कुछ न कुछ सतगुणों का अंश होता है और बुरे से बुरे व्यक्ति को सात्विक विचारों के प्रभाव से अच्छा बनाया जा सकता है। गांधी जी के हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त का उद्देश्य था व्यक्ति और समाज को महान बनाना।

वर्मा जी के अधिकांश औपन्यासिक पात्र गाधीजी के महान व्यक्तित्व एवं दर्शन से प्रभावित हुए बिना नहीं है। 'टेढे-मेढ़े रास्ते' के दयानाथ, मार्कण्डेय और झगडू मिश्र, 'भूले-बिसरे चित्र' के ज्ञान प्रकाश और नवल तथा 'सीधी-सच्ची बातें' का जगत प्रकाश, 'प्रश्न और मरीचिका' के शिवलोचन शर्मा तथा मुहम्मद शफी ऐसे पात्र हैं, जो गांधीवादी विचार-दर्शन के आधार पर नवीन नैतिक तथा आदर्श मूल्यों के विकास क्रम को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यह दृष्टिगत होता है कि गांधीवादी सिद्धान्त एवं आदर्श उनके व्यावहारिक जीवन में सदैव व्याप्त हैं।

किन्तु वर्मा जी के उपन्यासों के कुछ पात्र त्रिभुवन मेहता, कमला कान्त, जसवन्त कपूर, मालती, कुलसुम आदि ऐसे पात्र हैं जो गांधीजी के प्रति शंकालु हैं, उनका विरोध करते हैं जिससे तत्कालीन चेतना की झलक दिखाई पड़ती है। साथ

ही यह विरोध युगीन परिस्थितियों में गांधीजी के प्रति उभरते हुए अविश्वास को भी उद्घाटित करता है। गाधीजी युग धर्म, व्यक्ति धर्म और समाज धर्म में समन्वय स्थापित नहीं कर सके, परिणामस्वरूप गाधी को कुर्बान होना पड़ा।

मानवतावदी विचार दर्शन पर जो आज पूरा विश्व जोर दे रहा है और कहीं न कहीं से अनुप्राणित है, भारत के लिए कोई नवीन विचार नहीं है। इसके तो सूत्र वाक्य वेदों में मिलते हैं, जहां "सर्वेभवन्तु सुखिन" एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसी मानवी सहृदयता एवं विशालता का परिचय भारतीय हृदयस्थल पर ही विराजमान है, जिसके द्वारा पूरे विश्व को परिवार की इकाई के रूप में कल्पना की गयी है। अपने-परायेपन की संकीर्ण मनोंवृत्ति की भावना से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानवता की कामना की गयी है। मानवतावाद का आधार तो मानव धर्म है, यह ईश्वर नहीं बल्कि इहलोक पर आधारित है। जिसमें दया, करूणा, त्याग, सहानुभूति सहृदयता संवेदना आदि मानवीय गुणों पर मानवता वाद आधारित है।

वस्तुत मानवतावाद न किसी प्रकार का धर्म है न ही इसको किसी दर्शन में माना जा सकता है। इसे किसी वाद विशेष के घेरे में नहीं बाँधा जा सकता है, इसका आधार मानवीय मूल्य है। मानव मूल्यों की रीढ मानवीय गुण हैं। इसका सम्बन्ध किसी वर्ग विशेष से नहीं। अतः इसका क्षेत्र सम्पूर्ण मानव-सृष्टि है। मानवीय धरातल की सच्चाई एवं मानवीय मूल्यों पर मानवतावाद की विशाल दृष्टि आधारित है।

भारत के अधिकांश चिंतक और मनीषी उपनिषदों में उद्भूत मानवतावाद से प्रेरणा लेते रहे हैं। किन्तु इसके साथ ही पाश्चात्य विचारों के प्रभाव में आने से भारतीयो को पाश्चात्य मानवतावाद ने भी प्रभावित किया है।

भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यासों में मानवतावाद का विशद चित्रण किया है। वर्मा जी का मानवतावादी विचार दर्शन शुद्ध दार्शनिक कोटि का नहीं बल्कि मानवीय गुणों का मूल स्रोत है। उनके मानवतावाद को युग-धर्म कहा जा सकता है क्योंकि उनके उपन्यासों में आये युगधर्म चित्र इसके प्रमाण हैं। जो कि 'चित्रलेखा' उपन्यास में बीजगुप्त द्वारा यह अभिव्यंजित होता है-"क्या संयम के यही अर्थ हैं-क्या संसार में अपनापन ही सब कुछ है? तो फिर मनुष्य में और

पशु में भेद क्या है? प्रत्येक प्राणी अपने लिए जीवित है-प्रत्येक व्यक्ति मानव भाव से प्रेरित होकर काम करता है। फिर मुझमें और ससार के अन्य प्राणियों में भेद कैसा? यशोधरा से मेरे विवाह का क्या परिणाम होगा? एक व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जायेगा-और वह व्यक्ति मेरा प्रिय-भाई के समान श्वेतांक है। मैं स्वय अपने सिद्धान्तों से गिरूँगा और क्या मैं यशोधरा से प्रेम भी कर सकूँगा? मैं अन्याय कर रहा हूँ, दूसरों के साथ और स्वय के साथ भी। हमारे हिस्से में सुख और दु ख दोनों ही पड़े हैं- हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहसपूर्वक भोगें।''[1]

वर्मा जी ने पाप और पुण्य को, मानवतावादी दर्शन के दायरे में रखकर 'तीनवर्ष' उपन्यास में उद्‌घाटित किया है कि पाप से घृणा करना चाहिए पापी से नहीं, क्योंकि वह तो परिस्थितियों का दास होता है। सरोज के वेश्या बनने में उसकी सामाजिक परिस्थितियों को जिम्मेदार ठहराया है। सरोज का हृदय महान है यदि अनुकूल परिस्थितियाँ मिल पाती तो वह एक सच्चरित्र आदर्शनारी बन सकती थीं, जो कि सरोज का रमेश के प्रति प्रेम में दिखाई पड़ता है।

'भूले-बिसरे चित्र' का ज्ञान प्राकश भी एक मानतवतावादी पात्र है जो जनता को शोषण-चक्र से मुक्त करने के लिए स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेता है तथा अपने उदाद्‌त मानवीय गुणों के कारण जीवनपर्यन्त मानव के प्रति सहानुभूति एव त्याग की भावना रखता है।

''सीधी-सच्ची बातें'' में जगत प्रकाश और जमील सच्चे मानवतावादी पात्र हैं, जो गरीबी और शोषण से पीड़ित जनता को शोषण चक्र से मुक्त करके समाज की स्थापना करना चाहते हैं। डा0 मोदी मानवतावादी जगतप्रकाश से कहते हैं-''यह कम्युनिज्म मानवता का बहुत बड़ा कलंक है, क्योंकि यह घृणा और अहिसा पर कायम है। इस कम्युनिज्म को छोड़ दो एक दम। समझे! नहीं तो अच्छे नहीं हो सकोगे। यह कम्युनिज्म हृदयहीन लोगों के लिए है। तुम्हारे जैसे भावनात्मक और कोमल लोगों के लिए नहीं है।''[2]

---

1 चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा-पेज-138

2 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा-पेज-385

मानवता वादी महात्मागाधी की हत्या की खबर पाते ही वह भी अपना शरीर छोड़ देता है उसके मानवतावादी व्यक्तित्व की ओर सकेत करती हुई कुसुम कहती है-"गया, महात्मा के पीछे-पीछे एक फरिस्ता भी गया।"[1]

वर्मा जी को मानवीय गुणों पर अटूट विश्वास है-"हर मनुष्य में प्रेम है, दया है, सत्य है, सहानुभूति है। मनुष्य अपने इन्हीं गुणों पर कायम रहे, धर्म इसमें सहायक है इसलिए मैं धर्म का रूप वैयक्तिक मानता हूँ।"

'टेढे-मेढे रास्ते' के झगडू मिश्र और मार्कण्डेय मानवतावाद के परिचायक हैं जो जनता के दु ख दूर करने के लिए प्रयत्नशील हैं। मानवतावादी मार्कण्डेय रामनाथ तिवारी से कहता है- हिंसा पशुता की प्रवृत्ति है, मानवतावाद की नहीं, और मुनष्य पशुता को छोड़कर मानवता का पूर्ण विश्वास कर रहा है ..अपने हित को वह अपना सत्य तो मानता है, लेकिन दूसरों के हित की, जो मानवता का सत्य है, वह अभी तक उपेक्षा करता रहा है। हममें दया, प्रेम, त्याग ये सब प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। इन प्रवृत्तियों को विकसित करके अपने सत्य को और मानवता के सत्य को एक रूप देना यही अहिंसा है।"[2] इस उपन्यास में मनमोहन एक क्रान्तिकारी पात्र है परन्तु हृदय से शुद्ध मानव है वह मानवीय धर्म की रक्षा के लिए क्रान्ति करता है। वह किसानों पर अत्याचार करने वाले रामसिंह की हत्या करके किसान जीवन के मूल्य का बदला लेता है और पीड़ित जनता के दु खों को दूर करने में प्रयत्नशील रहता है।

वर्मा जी के उपन्यास 'प्रश्न और मरीचिका' में मुहम्मद शफी तथा जनार्दनसिंह भी मानवतावादी चरित्र के रूप में उद्घटित हुए हैं, जो सदैव परोपकार और लोक मंगल के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। मुहम्मद शफी जीवन भर दूसरों की सहायता करता है। केसरबाई के उद्धार में अपने प्राण तक गँवा देता है। जनार्दन सिह समाज द्वारा उपेक्षित मंजीत कौर को अपना लेता है। उसके परोपकारी स्वभाव की ओर संकेत करता हुआ उदय कहता है-"जनार्दन सिंह जी, यह दुनिया अभी तक इसलिए कायम है कि आप जैसे लोग दुनिया में मौजूद है।"[3]

---

[1] सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा-पेज-564

[2] टेढे-मेढे रास्ते भगवतीचरण वर्मा-पेज-138

[3] प्रश्न और मरीचिका, भगवतीचरण वर्मा-पेज-350

वर्मा जी के सभी उपन्यासों का अवलोकन करने से ऐसा लगता है कि एक उपन्यासकार के रूप में उनके मानवतावादी दर्शन का प्रस्फुटन उनके औपन्यासिक पात्रो में हुआ है।

समाजवादी विचार-दर्शन :

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में समाजवादी दर्शन पर अपनी मौलिक मान्यताए व्यक्त की हैं। उनका मानना है कि समाजवादी व्यवस्था एक कल्याणकारी व्यवस्था है, जो भारतीय भूमि पर गलत ढंग से आयी है, इसका प्रसार दूषित साधनों द्वारा हुआ है। इस व्यवस्था को प्रतिष्ठित करने के लिए जिस त्याग और आदर्श की जरूरत होती है उसे भारतीय समाजवादी न अपना सके। समाजवादी व्यवस्था की भारत में असफलता का मूल कारण यह है कि जिन शोषितों में क्रान्ति उत्पन्न करना उसका ध्येय था, उन तक वह पहुँच ही न पाई। भारतीयों के लिए मार्क्स का वर्ग-संघर्ष उपयोगी न हो सका क्योंकि हिन्दुस्तान एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की मिट्टी से उद्भूत समस्याओं का पश्चात्य सिद्धान्तों द्वारा समाधान न हो सका। इसकी असफलता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए वर्मा जी 'टेढ़ मेढे रास्ते' में कहते है-''हिन्दुस्तान में जो कुछ हो रहा है, गलत हो रहा है। यहां तक कि यह मजदूरों का संगठ्न भी गलत है। हिन्दुस्तान में मजदूरों की समस्या है कहाँ? हिन्दुस्तान इन्डस्ट्रियल मुल्क है ही नहीं, यह तो कृषि प्रधान देश है और हिन्दुस्तान के किसानों की हालत इतनी गिरी हुई है कि यहाँ हर किसान मजदूर बनने को तैयार है। जब कि मजदूर की तनख्वाह दस रूपये महीने से लेकर तीस रूपये महीने तक है, वहीं किसान की आय तो कहीं-कहीं दो रूपये प्रतिमास भी नहीं पडती है।''[1] इस सन्दर्भ में भारत में समाजवाद किसी वर्ग विशेष पर थोपना ऐसा लगता है कि समाजवाद उधार की चीज है। आज समाजवाद उच्चवर्ग में एक फैशन और शौक के रूप में अपनाया जा रहा है क्योंकि वहाँ कोई अभाव नहीं हैं। 'टेढ-मेढे रास्ते' का उमानाथ उच्चवर्गीय समाजवादी कामरेड है, जो कि बौद्धिक कसरत करता है। उसे

---

1 टेढे-मेढे रास्ते भगवतीचरण वर्मा-पेज-249

भारतीय जनजीवन और संस्कृति सब कुछ ढोंग लगता है और पाश्चात्य संस्कृति श्रेष्ठ लगती है। वर्मा जी का कहना है कि-कम्युनिज्म पूजीवाद की प्रतिहिंसा पर है और साथ ही कम्युनिज्म में पूँजीवाद की हिंसा की एक विनाशात्मक प्रतिहिसा भी है, जो समाज के लिए कहीं अधिक भयानक है। समाजवादी सिद्धान्त के अनुसार समाजवाद समाज के लिए जीवित रहता है। किन्तु वर्मा जी के अनुसार दूसरों के लिए जीवित रहना एक मनोवैज्ञानिक असत्य है। व्यक्ति हमेशा अपने लिए ही जीवित रहता है समाजवाद के कृत्रिम रूप का उद्‌घाटन करता हुआ मार्कण्डेय उमानाथ से कहता है-"उमानाथ! क्या तुम बतला सकते हो कि दुनिया मे किस कम्युनिस्ट ने दूसरों की गरीबी से द्रवित होकर अपनी सम्पत्ति उनके लिए दान कर दी है? तुम बता सकते हो कि किस कम्युनिस्ट ने ऐय्यासी, भोग-विलास छोड़े हैं, तुम बता सकते हो कि किस कम्युनिस्ट ने त्याग किया है।"[1]

वर्मा जी ने समाजवादी व्यवस्था की न तो कटु आलोचना की है न ही इस व्यवस्था के प्रति अनास्थावान ही हैं।

---

[1] टेढे-मेढे रास्ते, भगवतीचरण वर्मा-पेज-336-37

अध्याय-5

भगवती चरण वर्मा का उपन्यास शिल्प-कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्रांकन आदि।

उपन्यास यथार्थ जीवन का अनुकरण है, पर यथार्थ जीवन नहीं। उपन्यास में यथार्थ जीवन का आभास तो होता ही है, लेकिन वह यथार्थ कल्पना के गर्भ में पलकर ही साकार रूप पाता है। साहित्य कला की अन्य विधाओं की ही तरह उपन्यास के लिए भी आकार-प्रकार, रूप-रचना की आवश्यकता होती है। कोई भी उपन्यास आकार, रूप, रचना की दृष्टि से ही उत्कृष्ट नहीं हो सकता है। औपन्यासिक दृष्टि से विषयवस्तु और शिल्प में किसका अधिक महत्व है, इस प्रश्न का उत्तर भगवती बाबू के उपन्यास "चित्रलेखा" के आधार पर दिया जा सकता है। किसी कथा की सफलता के लिए विषयवस्तु एवं शिल्प दोनों का प्रयोग अपरिहार्य है।

उपन्यास भी साहित्य विधा में या कला में, अन्य कलाओं की तरह एक कला है। आधुनिक युग में उपन्यास कला का विकास अधिक हुआ है क्योंकि इसके कुछ मान्यताएं, सिद्धांत एवं आदर्श हैं। उपन्यास कला का साधक उपन्यासकार, शिल्प के माध्यम से ही अपना दर्शन चिन्तन तथा प्रतिपाद्य विषय वस्तु अभिव्यक्त करता है। अतएव हमें यह जानना है कि भगवती बाबू के उपन्यासों में शिल्प क्या है, किस तरह का है?

"हिन्दी में शिल्प शब्द का अर्थ (शिल+पक) शब्द रचना के आधार पर हस्तकौशल, कारीगरी तथा कलाविधि से लिया जाता है। इसलिए शिल्प विधि के अन्तर्गत समस्त तत्व आ जाते हैं जो औपन्यासिक स्वरूप का निर्माण करते हैं। शिल्प को तो मूक साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि जिस तरह से चित्रकला की भाषा है 'रंग' अथवा 'रेखा', उसी तरह साहित्य में शब्द चित्रों का कम महत्व नहीं है।"[1]

---

1 भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासो मे युग चेतना, पेज 304

रोजमर्रा के जीवन में घटित घटनाओं को उपन्यास साहित्य में स्थान मिलता है-जो पात्रों के माध्यम से व्यक्तियों के जीवन में घटित होता है-वे नाटकीय व्यक्ति वार्तालाप करते हैं। यह कार्य उनका चरित्र किसी विशेष समय अथवा स्थान पर घटित होता है, जिसकी अपनी शैली होती है और निश्चित जीवनदर्शन की अभिव्यजना होती है। अतएव वस्तु, चरित्र, वार्तालाप, कार्य का समय अथवा स्थान शैली और जीवन-दर्शन उपन्यास के मुख्य शिल्पगत तत्व माने गये हैं।''[1]

उपन्यास के निर्माण में दृष्टिकोण का अपना अलग ही महत्व होता है। जिसमें-कथानक, चरित्र, कथोपकथन, परिप्रेक्ष्य तथा प्रस्तुतीकरण इससे प्रभावित होते हैं। भगवती चरण वर्मा का प्रत्येक उपन्यास उनके नियतिवादी दृष्टिकोण से प्रभावित है। उनके उपन्यासों का अध्ययन शिल्पगत तत्वों के खाके में रख कर सही-सही परखा जा सकता है।

भगवती चरण वर्मा कला को स्वान्तः सुखाय मानते हुए, उसे बहुजन हिताय स्वीकार करते हैं। रचनाकार जगत में या मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं पर ही केन्द्र बिन्दु बनाकर उस पर अपनी कृति को स्व के आनन्द और बहु के परमानन्द के लिए गढता है। वर्मा जी का मत है-'महान कला की कसौटी इसी बात में है कि वह मनोरंजन को कहां तक आनन्द की सीमा तक पहुंचा सका है।''[2]

उपन्यास के विकास के लिए यह जरूरी होता है कि उसमें एक सुगठित कहानी हो। वर्मा जी भी इस बात को स्वीकार करते हैं, जिसके लिए आवश्यक है कि ''उपन्यास का आधार एक पुष्ट और सुन्दर कहानी हो। इसके अतिरिक्त वह उपन्यास में कहानी वाले तत्व को प्रमुख रूप में महत्व देते हैं। उपन्यास में कथावस्तु का विस्तार माना जा सकता है। अन्य प्रकार के विस्तार उपन्यास में शिथिलता प्रदान करते हैं।''[3]

---

1 हिन्दी उपन्यासो का शिल्पगत विकास, पेज 71

2 साहित्य की मान्यताए पेज 23

3 भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो मे युग चेतना पेज 367

"जहाँ उपन्यास में कथा कहने का शिल्प प्रमुख होता है, वहाँ लम्बी कहानी में कथा बाधने का शिल्प प्रमुख हुआ करता है। कौतुहल के क्षेत्र में और मनोरजन करने मे लम्बी कहानी उपन्यास की अपेक्षा अधिक सक्षम होती है, लेकिन जहाॅ तक भावनात्मक संवेदना का प्रश्न है उपन्यास उसमें अधिक सशक्त है। उपन्यास मे गत्यात्मकता अधिक होती है, उपन्यास में अनेक कथाओं से सम्बन्धित अनेक चरित्र आते हैं और इन चरित्रों के कार्य दूसरे पर इनके कार्य का प्रभाव होता है। जिससे भावनात्मक संवेदना की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती है और भावनात्मक सवेदना की एक निश्चित धारा होती है। जिस पर वर्मा जी का कहना है कि-हर जगह से घूमती फिरती, भटकती और राह पाती हुई यह संवेदना अन्त में एक जगह केन्द्रित हो जाती है और इतना अधिक तपने और परिपक्व होने के बाद यह भावनात्मक संवेदना पाठक के मन में गहराई के साथ बैठ जाती है।"[1]

वर्मा जी उपन्यास के प्रमुख तत्वों में घटना, चरित्र और भावनात्मक संवेदना मानते हैं। चरित्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप घटनाएं होती हैं। भावनात्मक सवेदना चरित्रों के साथ जुड़ी होती हैं जिससे घटना में चरित्रों का क्रम उत्पन्न करता है लेकिन घटना में रोचकता होना अनिवार्य है। भारतीय आचार्यो के समान वर्मा जी ने रूपक के तीन तत्व माने हैं-वस्तु, नेता और रस। वस्तु तत्व घटना समान है। चरित्र तत्व और नेता तत्व में वस्तुत अन्तर नहीं है। उपन्यास मे अनेक पात्रों के चरित्र, किसी निश्चित उद्देश्य की उपलब्धि के लिए विकसित होते हैं। वर्मा जी का भावनात्मक संवेदना वाला तत्व भारतीय रस तत्व, पाश्चात्य उद्देश्य तत्व में कोई अन्तर नहीं है। केवल दृष्टिकोण की भिन्नता है। "पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा व्यवहृत कथा तत्व के छ अवयवों-वस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य का समाहार इन्हीं तत्वों में पाया जाता है।"[2] तथा वर्मा उपन्यास की कला के प्रमुख तत्व-"शैली" को महत्व देते हैं। भगवती चरण वर्मा के हाथ में कथा तत्व पड़ कर एक नवीन स्फूर्ति को प्राप्त हुई है और अपने युग के वृहद पटल को चित्रित करने में सक्षम हुई है।

---

1 साहित्य की मान्यताए भगवती चरण वर्मा, पेज 136
2 भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो मे युग चेतना, पेज 367

इन्हीं सब आधारों पर यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी की कृतियाँ स्वय उनके साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि उनके द्वितीय उपन्यास ''चित्रलेखा'' ने हिन्दी साहित्य काश में अमिट छाप छोड़ी। चित्रलेखा में 'पाप-पुण्य की समस्या' को उसके परम्परागत रूप से अलग, यथार्थ धरातल पर रखने के साथ-साथ उसके कथानक को पुष्ट तथा सुन्दर बनाने में लेखक ने कोई कसर बाकी न छोड़ी। इन्हीं सन्दर्भो में आधुनिकता बोध की झलक दिखाई पडती है।

औपन्यासिक कला की दृष्टि से उपन्यास का भी अपना शिल्प-विधान होता है। जीवन और जगत के यथार्थ सत्य से प्रेरित होकर उपन्यासकार स्वानुभूतियों के माध्यम से उपन्यास का सृजन करता है। परन्तु उपन्यास का यह सत्य यथार्थ सत्य से अलग होकर भी मानव मन के सुख-दुख के साथ घुल-मिल जाता है। ''शिल्प उपन्यास का अनिवार्य अंग है। अत यह जीवन का विशिष्ट चित्र है। उसके पात्र यद्यपि लेखक के मन की उपज होते हैं तथापि जीवन्त प्रतीत होते हैं जिस प्रकार राग-रागनियों में आबद्ध स्वरों की सत्ता स्वतन्त्र होती है तथा वे उसके अंग भी होते हैं, इसी प्रकार उपन्यास में प्रस्तुत प्रत्येक दृश्य उपन्यास शिल्प का महत्वपूर्ण अंग है।''[1] इसी सन्दर्भ में आगे डा0 रामदरश मिश्र ने कहा है कि-''उपन्यास पूंजीवादी सभ्यता की देन है पूंजीवादी सभ्यता के विविध जीवन सत्यों को कथा के माध्यम से व्यक्त करने के लिए इसकी उत्पत्ति हुई है। कथा तो उसका माध्यम मात्र है। मूल वस्तु है वर्तमान जीवन की जटिल यथार्थवादिता। जीवन मूल्यों का संक्रमण, समाज के नये सम्बन्धो की नियति, उसके बीच उठते हुए अनेक प्रश्नों को भौतिक या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की आकुलता, नवीन भौतिक सत्यों के बीच बनती हुई मानव चरित्र की नयी दिशाए, ये सारी बातें मानो उपन्यास नामक विधा के माध्यम से फूट पड़ने के लिए आकुल थी।''[2]

---

1 हिन्दी उपन्यासो का शिल्पगत विकास, डा0 उषा सक्सेना पेज 117
2 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा पेज 17

भगवती चरण वर्मा एक कलावादी कलाकार हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासो में उत्तरोत्तर शिल्पगत विकास मिलता है क्योंकि वर्मा जी के प्रथम उपन्यास, 'पतन' (सन् 1928 ई0) से 'प्रश्न और मरीचिका (सन् 1973) तक में शिल्पगत विविध प्रयोग किये हैं। वर्मा जी के उपन्यासों के केन्द्र में समाज के उच्च वर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग पर उनकी दृष्टि हमेशा ही सजग रही है। हालॉकि उच्च और मध्यवर्ग के चित्रणों में वर्मा जी की अभिरूचि विशेष दर्शनीय है। अग्रेजो के आगमन और अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अलीशाह के पतन से लेकर स्वातन्त्रयोत्तर भारत के चीनी युद्ध तक की कहानी उन्होंने अपने उपन्यास रचना में प्रस्तुत की है। ताजे-तरीन ऐतिहासिक फलक को अपनी कथा का माध्यम बना कर वर्मा जी ने आधुनिकता बोध के संस्तरणशील भावभूमि पर नूतन विषय, नवीन शैली, मजी हुई भाषा और मौलिक प्रयोगों द्वारा उपन्यास साहित्य में एक नये द्वार का मार्ग प्रशस्त किया।

भवगती चरण वर्मा का 'पतन' उपन्यास अवध के अन्तिम शासक वाजिद अली शाह के अन्तिम जीवन की झाँकी है। पहली कृति होने के कारण औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त कमजोर है परन्तु शिल्प के विकास क्रम की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पाप-पुण्य की समस्या, नियतिवाद और सामन्तवादी विलासी जीवन के प्रति जो आसक्ति 'पतन' में दिखाई पड़ता है उसका प्रौढ और परिष्कृत रूप 'चित्रलेखा' में दिखाई पड़ा है।

'पतन' उपन्यास का कथानक प्रामाणिक ऐतिहासिक तत्वों के अभाव के कारण अत्यन्त शिथिल है परन्तु यह रचना छायावादी कवि की तरह वह गद्य कलिका है जिसका पल्वित पुष्पित रूप 'चित्रलेखा' है।

'पतन' उपन्यास शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण शुरूआत नहीं है, क्योंकि यह कुतूहलवर्द्धक तथा कलात्मक नहीं है। उपन्यासकार ने कथानक का प्रारम्भ अवध के अन्तिम शासक वाजिद अलीशाह के पतनोन्मुखी जीवन से किया है जो अति साधारण है। नाट्कीयता के अभाव में कुतूहल की सृष्टि नहीं हो पायी है। अत· शिल्पकला की दृष्टि से अत्यधिक कमजोर रचना है।

"शिल्प की दृष्टि से वर्मा जी के 'पतन' उपन्यास में कथानक विकास पद्धति मे औपन्यासिकता तथा स्वाभाविकता का अभाव है। इसका कारण यह है कि उपन्यासकार का व्यक्तित्व इतना सबल नहीं बन पाया था कि वह यथार्थवादी दृष्टि अपना कर सामाजिक डर से निर्भय होकर प्रेम और वासना सम्बन्धी वास्तविकताओं को छायावादी कोरी भावुकता से मुक्त रूप में अभिव्यक्त कर पाता। युगीन सुधारवादी वायवी प्रवृत्तियों के विरोध में कोई तरूण लेखक न तो साहस कर सकता था और न वर्मा जी ही कर सके।"[1] इस प्रकार से यह लगता है कि जहा भी कहीं उपन्यासकार ने विलासी जीवन का चित्र खींचा है वहा वह भय और सचेतावस्था के कारण प्रतिपाद्य विषय को निखारने में असफल प्रतीत हुआ है। कथानक की एक घटना दूसरी घटना की ओर स्वत· अग्रसर नहीं हो पाई। अत उपन्यासकार वर्णन, विवरण अथवा व्याख्या का अवलम्बन लेकर उपन्यास मे तारतम्य स्थापित करने का असफल प्रयत्न करता रहा। वर्णन और विश्लेषण का कथानक से अन्तर्सम्बन्ध होता है। इसलिए इसका अस्तित्व खटकता नहीं है जैसे इस सन्दर्भ में उसने सोचा "आह, मैं कितना पापी हूं। माता मुझसे रूष्ट हैं, क्योंकि मैंने अपने भाइयों की हत्या की है पर मैंने उनको मारकर क्या बुरा किया? उन्होंने कितने भोले-भाले व्यक्तियों को, कितने निरपराधों को तड़पा कर मारा था।"[1]

चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित 'चित्रलेखा' उपन्यास की नायिका ही नहीं, केन्द्रीय संवेदना भी है। समस्त कथावस्तु एवं सारे पात्र कहीं न कहीं उसके सपर्क में आते हैं और वह इन सबके माध्यम से मानो अपने किसी न किसी अश को अभिव्यक्त करती है। ये पात्र और घटनायें उसके चरित्र की व्याख्या करते हैं। आद्यन्त उसके चरित्र का प्रभामंडल समस्त उपन्यास को आच्छादित किये रहता है।

चित्रलेखा एक ब्राह्मण विधवा है, जो कृष्णादित्य के संपर्क में आकर समाजच्युत हो जाती है। कालांतर में दुर्भाग्यवश कृष्णादित्य एवं उससे प्राप्त पुत्र की मृत्यु हो जाती है। तदुपरांत चित्रलेखा को एक नर्तकी के यहाँ आश्रय मिलता

---

1 भगतवी चरण वर्मा के उपन्यासो मे युग चेतना, पेज 373

है। नर्तकी के रूप में चित्रलेखा अपने रूप, यौवन और कला के माध्यम से समूचे पाटलिपुत्र पर छा जाती है। फिर अचानक उसको बीजगुप्त में कृष्णादित्य की छाया दिखाई पड़ती है और एक बार प्रत्याख्यान करने के बाद वह फिर बीजगुप्त को अपने जीवन में बुला लेती है पर अभी एक व्यक्ति को उसके जीवन मे आना शेष था-वह था कुमारगिरि। यह योगी उसे आकर्षित भी करता है, वह उसे अपनी आत्मशक्ति से पराजित करती है, परन्तु प्रतिक्रिया एवं वेदनापूर्ण क्षण में उसे समर्पित भी हो जाती है। अतत वह अपनी समस्त सपत्ति को त्यागकर बीजगुप्त के साथ देशाटन के लिए निकलना चाहती है। बीजगुप्त से प्रणय करते समय उसे लगा कि जीवन मे प्रेम के अतिरिक्त अन्य उद्गार भी होते हैं, पर कुमारगिरि के प्रति वह क्यो आकर्षित हुई? यह वह स्वयं नहीं जानती।

उपन्यास के प्रारम्भ से ही पता लग जाता है कि चित्रलेखा जीवन को अविकल पिपासा मानने वाली, उद्दाम वासनाओं की लहरों पर तैरने वाली सुंदरी ही नहीं है, उसमें तेज और बौद्धिक व्यक्तित्व भी है।

वर्मा जी के उपन्यास 'तीन वर्ष' की कथावस्तु विश्वविद्यालय को केन्द्र में रखकर छात्र-छात्राओं के जीवन-प्रसंगों, उनके रहन-सहन, प्रेम-संबंधों तथा मनोदशाओं का यथार्थ चित्रण करती है। 'तीन वर्ष' भगवतीचरण वर्मा का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसकी भावभूमि सामाजिक है और शैली अत्यंत रोचक। अजित, रमेश, प्रभा और सरोज नामक चरित्रों के व्यूह में कथा चलती है। अजित और प्रभा संपन्न परिवार के हैं और रमेश के सहपाठी हैं, जो स्वयं निम्न मध्यम वर्ग का है। सरोज एक वेश्या है। तीन वर्षो के अंतराल में घटनाक्रम इस स्थिति को स्पष्ट करता है कि प्रभा, जो सुशिक्षित-सुसंस्कृत मानी जाती है, वस्तुत धन-लिप्सा से ऊपर नहीं उठ पाती। दूसरी ओर सरोज, जो वेश्या होने के कारण समाज में तिरस्कृत है, जीवन के उच्चतर मूल्यों से प्रेरित है। प्रभा का रमेश के प्रति प्रेम धनाभाव के कारण अवरूद्ध है, सरोज मरते-मरते अपनी सारी संपत्ति रमेश के नाम लिख जाती है।

---

1 पतन, भगवतीचरण वर्मा, पेज 17

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "भूले-बिसरे चित्र" में कथा पूरे राष्ट्रीय धरातल पर पीढ़ियों और वर्गो के सघर्षो के माध्यम से उभरती है। परिवार, वर्ग और राष्ट्र की गतिशील चेतना पचास वर्षो के काल की यात्रा करती हुई चुकते और उभरते हुए मूल्यों, सबधों तथा उनके द्वंद्वों को बहुत सच्चाई से रूपायित करती है।

उपन्यास की कथावस्तु में परिवार की चार पीढियाँ आती हैं, उनके प्रतिनिधि हैं क्रमश मुशी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गगा प्रसाद और नवल। परिवार की ये चार पीढियॉ ऐतिहासिक विकास की अनिवार्य परिणतियों को भोगती हुई नया-नया रूप ग्रहण करती हैं। वास्तव में परिवार की ये चार पीढ़ियाँ 1850 और 1930 के बीच के भारत की चार पीढ़ियॉ हैं, जो कि ऐतिहासिक परिवेश में आए बदलाव को अभिव्यक्त करती हैं। मुंशी शिवलाल (जो कि सामंतवाद और नौकरशाही परंपरा के मिलन बिंदु पर खड़े हैं) के सुपुत्र ज्वाला प्रसाद जब नायब तहसीलदार नियुक्त होते हैं तब उनके साथ यमुना के जाने की बात छिनकी उठाती है। इसके लिए वह (छिनकी) तर्क देती है कि अफसर के साथ उसकी पत्नी का रहना आवश्यक है। छिनकी की बात से सहमत होकर मुंशी शिवलाल अपनी सहमति देते हैं। यहीं से संयुक्त परिवार के टूटन का बीजवपन होता है। ज्वाला प्रसाद की मन·स्थिति एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति की है, जो कि परिवेश में आए बदलाव की सूचक है। जैसे-ज्वाला प्रसाद उगती हुई नौकरशाही तथा चुकते हुए सामंतवाद के अनुभव बिंदु पर खड़ा है। वह भी संयुक्त परिवार का समर्थक है लेकिन बाद में उसे इस परिवार से संबंध तोड़ना पड़ता है। यहाँ उसे वह धारणा के रूप में नहीं सुविधा के रूप में तोड़ता है, अत· उससे संपृक्ति उसमें कहीं न कहीं शेष है। वह इस ऐतिहासिक विकास धारा में निरंतर पूॅजीवाद की ओर झुक रहा है। उसे झुकना ही था। सामंतवाद टूट रहा है-टूट रहे हैं जमींदार गजराज सिंह, बरजोर सिंह, सरोहन के राजा और उभर रहा है पूँजीवाद अर्थात् प्रभुदयाल, उनके लड़के लक्ष्मीचद। इस विघटन और उदय के द्वंद्व में पूँजीवादी सभ्यता के प्रतीक, ब्रिटिश शासन के अफसर ज्वाला प्रसाद को पूॅजीवाद के साथ रहना ही था। वह गजराज सिंह, बरजोर सिंह आदि के प्रति अपनी मानवीय करूणा के बावजूद प्रभुदयाल (जिसको वह राक्षस समझता है) की ओर झुके बिना नहीं रह पाता है।

गगा प्रसाद तथा उसके बच्चे राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो कि ज्वाला प्रसाद की विचारधारा से उलट है। वे पूँजीवाद की साम्राज्यवाद समर्थक प्रवृत्ति का घोर विरोध करते हैं। यही कारण है कि गंगा प्रसाद का पुत्र नवल महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहे नमक सत्याग्रह में भाग लेता है।

भगवती चरण वर्मा के उपन्यास ''टेढ़े-मेढे रास्ते'' के कथानक की शुरूआत काल अथवा युग की राजनैतिक हलचल जैसे विस्तृत फलक पर चित्रित है। इसमें तीन व्यक्तियों के माध्यम से तीन राजनैतिक पार्टियों का तथा देश की व्यवस्था दुर्व्यवस्था को चित्रित किया है। इसके तीन प्रमुख पात्र 'दयानाथ-कांग्रेस पार्टी', 'उमानाथ-कम्युनिस्ट पार्टी', 'प्रभानाथ-क्रान्तिकारी दल' इन तीनों सदस्यों के माध्यम से तीनों पार्टियों की गतिविधियों का चित्रांकन हुआ है। इन तीनों के पिता पण्डित रामनाथ तिवारी आधुनिक शिक्षा सभ्यता से परिचित किन्तु प्राचीन संस्कृति एव परम्पराओं के उपासक, अपनी आन-बान पर मर मिटने वाले ताल्लुकेदारों के प्रतीक हैं, जो राजभक्ति के कारण अंग्रेजी सरकार के प्रति वफादार थे। इनकी अहंमान्यता उनके पुत्रों को विरासत में मिली थी।

'टेढे-मेढे रास्ते' एक वृहदाकार औपन्यासिक कथानक लिए हुए है। इस उपन्यास में 1930 ई0 के आस-पास की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थितियों का चित्रण है। कथानक का उद्‌भव एवं विकास स्वाभाविक घटनाओं एवं परिस्थितियों द्वारा हुआ है। इस उपन्यास में सामन्त रामनाथ तिवारी के परिवार के माध्यम से 1930-31 में प्रचलित प्रमुख विचारधाराओं गाँधीवाद, मार्क्सवाद और आतंकवाद को यथार्थ ढंग से चित्रित कर वर्मा जी ने स्पष्ट किया है कि जीवन के सचमुच टेढे-मेढे रास्ते पर परिपक्व बुद्धि वाले भी गुमराह होकर चकरा जाते हैं। रामनाथ तिवारी के तीनों पुत्र दया, उमा, प्रभा भी इस भटकाव के शिकार हो जाते हैं। रामनाथ यह जानते हुए भी कि इंग्लैण्ड हिन्दुस्तान को लुटवा रहा है ताकि यह देश हरदम अपाहिज बना रहे। (आर्थिक गुलामी राजनीतिक गुलामी से कहीं अधिक घातक है।[1] अपनी अहंमान्यता से ग्रस्त है। यही कारण है

---

1 टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 45

कि पण्डित रामनाथ तिवारी की अहंमान्यता के कारण ही उनके तीनों पुत्र दिशाहीन हो जाते हैं। दयानाथ कांग्रेस में शामिल होता है तो उसे घर से निकाल देते हैं। उभानाथ को समाजवादी दल के नेता होने से बहिष्कृत कर देते हैं और प्रभानाथ को आतकवादी दल के साथ खजाने लूटने के आरोप में फाँसी का फदा नसीब होता है। इन व्यक्तियों के माध्यम से वर्मा जी ने समूचे युग की खनक को पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त कर दिया है। इस उपन्यास में मुख्य कथानक के साथ-साथ उपकथाओं को भी सामन्तो के द्वारा शोषण को जोड़कर चित्रित किया है।

इस उपन्यास में जगह-जगह उपकथानक को जोड़ने से कथा में असन्तुलन और असम्बद्धता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। अनावश्यक प्रसंगों के चित्रण से उपन्यास में शिथिलता आ गयी है। रामनाथ तिवारी आदि के कथा प्रसंगों से उपन्यास में अतिरिक्त जुड़ाव जाहिर होने लगता है।

''आखिरी दाँव'' में ऐसे अर्थ लोलुपों का चित्रण किया गया है, जिसमें भोले-भाले दो ग्रामीणों की जीवन-धारा को ही बदल दिया। फिल्मी कथा के अनुरूप इस उपन्यास में नाटकीय स्थितियों की भरमार है। वर्माजी की 'नियतिवादी' और 'परिस्थितियो के चक्र' वाला दर्शन विशेष सहायक हुआ है। रामेश्वर और चमेली को नियति ऐसी परिस्थितियों में डाल देती है, जहां से वह सही सलामत निकल नहीं पाते। इन परिस्थितियों के निर्माण में निमित्त बनता है अर्थ, इस प्रकार नियति, परिस्थिति और अर्थ की नींव पर उपन्यासकार ने उपन्यास का ढॉचा खड़ा किया है। इसमें फिल्म जगत से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को तथा वहॉ के अर्थ पिशाचों की गतिविधियों तथा अर्थलिप्सा को दर्शाया है। नयी युवतियों तथा नये युवकों को फिल्मी जीवन की तरफ गलत ढंग से प्रवेश करा कर गलत धंधा कराना तथा अनमेल विवाह की समस्या को चित्रित किया गया है।

''अपने खिलौने'' वर्मा जी का हास्य व्यंग्य प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने दिल्ली के उच्च वर्गीय परिवारों की खोखली मान्यताओं का पर्दाफाश किया है। उच्च वर्गीय समाज के प्रेम व्यापारों के अतिरिक्त उनकी

प्रदर्शन प्रियता की ओर दृष्टिपात किया गया है और साथ ही वीरेश्वर प्रताप के माध्यम से मिटती हुई सामन्ती व्यवस्था के अवशिष्ट चिन्हों को भी चित्रित किया गया है।

''थके पाव'' शहरी जीवन से सम्बन्धित तीन पीढियो के निम्न मध्यवर्ग के आर्थिक सघर्ष को उजागर करता है। इसमें दो प्रमुख समस्याए हैं-एक अर्थ से सम्बन्धित, दूसरी नैतिक मूल्य एवं मान्यताओं से सम्बन्धित हैं। पहली कहानी केशव के पिता रामचन्द्र की, जिसे केशव के मानसिक विश्लेषण द्वारा लेखक वर्णित करता है। दूसरी केशव के जीवन की कहानी और तीसरी उसके पुत्रों के माध्यम से परिवर्तित मान्यताओं वाली भावी पीढ़ी की कहानी।

'सबहिं नचावत राम गुसाई' में व्यक्ति की शक्ति और सक्षमता की परिधि खींचकर उसके अकारण दंभ और छल-प्रपंच की कथाओं को स्वतन्त्र भारत के राजनैतिक एवं सामाजिक परिवेश में 'सामर्थ्य और सीमा' की तरह अभिव्यक्त किया गया है। समग्र उपन्यास में एक गहरा व्यंग्य भारत के पूँजीपति, मन्त्री और अधिकारियों पर व्यक्त है। उपन्यास का कथानक मानव जीवन की प्रमुख वृत्तियों के सूक्ष्म रूप-बुद्धि, भाग्य, और भावना के स्थूल प्रतीक राधेश्याम, जबरसिह और रामलोचन पाण्डेय को ग्रहण कर बनिये की बुद्धि, ठाकुर के हठ और ब्राह्मण की भावना में संघर्ष दिखाकर न्याय और ईमानदारी की रक्षा के लिए अथवा आदर्श निर्माण के लिए भावना को विजयी बनाया गया है।

''सामर्थ्य और सीमा'' का सम्पूर्ण कलेवर नियति के द्वारा परिचालित है। जब तक नियति और प्रकृति साथ देती है, मनुष्य गर्वान्वित बना रहता है और अपनी सामर्थ्य पर फूला नहीं समाता, किन्तु जैसे ही काल चक्र विपरीत होता है, प्रकृति अपनी दृष्टि फेरती है, मनुष्य का अहंकार धूल धूसरित हो जाता है, वह अखण्ड अपरिमित प्रकृति के समक्ष घूटने टेकने के लिए विवश हो जाता है। निर्बल नि सहाय होकर नियन्ता से अपनी सुरक्षा की भीख मांगने लगता है। इस उपन्यास के सभी पात्र उच्चवर्ग से सम्बन्धित बुद्धिजीवी एवं सुशिक्षित हैं। अतः उनके वार्तालाप का प्रमुख विषय देश की शोचनीय अवस्था से सम्बन्धित है। अपनी विकृतियों एवं मनोविकारों को छुपाते हुए एक दूसरे पर करारा व्यंग्य करते है।

''सीधी सच्ची बातें'' में सन् 1939 (त्रिपुरी कांग्रेस) अधिवेशन से लेकर सन् 1948 तक राजनीतिक हलचलों को साधारण मध्यमवर्गीय पात्र जगत प्रकाश के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'सीधी सच्ची बात' में कांग्रेस पर पूँजीवाद का बढता प्रभाव, कांग्रेस की आन्तरिक दलबन्दी, तरूण शक्ति की उपेक्षा और साम्यवाद की विफलता का जो भयावह चित्र व सीधा-साधा धूमिल चित्र स्वातत्रयोत्तर भारत का पाते हैं, उसी का बहुरगी, व्यापक और स्पष्ट चित्र ''प्रश्न और मरीचिका'' मे मिलता है। उदयराज उपाध्याय की पारिवारिक पृष्ठभूमि के आचल में जयराज उपाध्याय आई0सी0एस0, विश्वनाथ मदन आई0सी0एस0, भारत सरकार के सेक्रेटरी, रामकुमार गावडिया, शिवकुमार गावडिया और अंजनी कुमार शर्मा सदृश्य पूंजीपतियों, कांग्रेसी नेता विलोचन शर्मा, रूपा शर्मा, मुहम्मद शफी और शेख मुस्तफा कामिल, सोशलिस्ट नेता लल्लू सिंह, विश्वनाथ उपाध्याय, बिन्देश्वरी देवी, जनसंघी जनार्दन सिंह, फिल्मी जीवन में मुहम्मद शफी, ज्ञान गौरव, मेजर अमरजीत, कान्ता और विस्थापित मेलाराम, सुरजीत, मनजीत कौर आदि पात्रों के द्वारा सन् 47 से लेकर सन् 62 के चीनी युद्ध तक समग्र स्वाभाविक भारतीय जनजीवन का परिवर्तन क्रम से गुजरता हुआ प्रतिविम्ब इस कृति में देखा जा सकता है। गांधीवादी आस्था, जो 'टेढे मेढे रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' में दीख पड़ी, वह 'सीधी सच्ची बातें' में धूमिल पड़कर 'प्रश्न और मरीचिका' में लुप्त हो गई।

किसी भी उपन्यास का प्रारम्भ महत्वपूर्ण होता है जैसे 'सामर्थ्य और सीमा' की शुरूआत प्रकृति के वातावरण में आरम्भ होती है, प्रश्न और मरीचिका की शुरूआत स्थान विशेष के धरातल से होता है, 'सीधी सच्ची बातें', 'भूले विसरे चित्र', 'टेढे मेढे रास्ते' और 'प्रश्न और मरीचिका' की शुरूआत काल अथवा युग को पटल पर रख कर होता है। 'भूले विसरे चित्र', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'सीधी सच्ची बातें', 'प्रश्न और मरीचिका', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गोसाई' आदि बृहदाकार औपन्यासिक कथानक रखते हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों का प्रारम्भ सामान्यतया किसी समस्या या घटना की प्रतिक्रिया से हुआ है तथा कुछ उपन्यासों का प्रारम्भ पूर्वदीप्ति एवं चेतन प्रवाह-शैली मे होता है जैसे-'प्रश्न और मरीचिका'।

'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास के कथानक का विकास वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से होता हुआ आगे बढता है "धीरे-धीरे यह दिल्ली शहर पसन्द आता जा रहा है मुझे। यहाँ बहुत कुछ वह नहीं है जो बम्बई में था और जिसका मैं आदी हो चुका था लेकिन यहाँ बहुत कुछ वह है जो बम्बई में नहीं था, जिसे बडी तेजी के साथ मैं अपनाता जा रहा हूँ।"

विस्थापितों की सहायता के लिए दिल्ली के महिला समाज ने एक नाटक कराया था। मन्त्रीगण अपने-अपने कमरे मे व्यस्त थे, इसलिए इस नाटक का उद्घाटन करना था पण्डित शिवलोचन शर्मा को।"

'प्रश्न और मरीचिका', 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गुसाई' में भी इसी पद्धति के आधार पर कथानक का विकास आगे बढता हुआ दिखाई देता है।

वर्मा जी के कुछ उपन्यासों में 'मैं' का आत्म विश्लेषण सोचते हुए पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। उन उपन्यासों की श्रेणी में-'सीधी सच्ची बातें', 'थके पॉव', 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' प्रमुख हैं-इन अंशों-

सुषमा-'समझे मिस्टर जगत प्रकाश! मैं तुमसे विवाह करूंगी, इसकी कल्पना तुम्हें नहीं करनी चाहिए। मैं मुक्त हूं, स्वतन्त्र हूँ, निर्बन्ध हूँ। पापा यह जानते हैं, सब कोई यह जानता है।"[1]

किसन-"मोहन भैया, परिवार के प्रति मेरा जो भी कुछ कर्तव्य है, वह मैं जानता हूँ। लेकिन इसके पहले अपने प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य है, यह मैं कैसे भूल जाऊँ।"[2]

"पापा मैं जानवर नहीं हूँ कि जिसके साथ चाहा उसके साथ बाँध दिया। मैं सम्पत्ति नहीं हूँ, जिसे चाहे उसे दे दिया। मुझमें भावना है, मुझमें व्यक्तित्व है।"

---

1 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा, पेज 108
2 थके पॉव, भगवतीचरण वर्मा , पेज 89, 100

मानकुमारी–"मैं सोचने लगती हूँ कि क्या यह सौन्दर्य मेरे लिए अभिशाप नहीं है? इस सौन्दर्य के प्रति लाभों की कुत्सित भावना को मैंने स्पष्ट रूप से देखा है। मेरे लिए किसी मे सवेदना नहीं, सहानुभूति नहीं, सद्भावना नहीं। मैं सच कहती हूँ, कक्का जी, मेरे लिए सुन्दरता वरदान न बनकर, अभिशाप बन गई है।"[1]

रूपा शर्मा–"मैं बड़ी अभागिन हूँ, बड़ी पापिन हूँ। मैं न जाने कब से शर्मा जी को धोखा दे रही हूँ और शर्मा जी मुझ पर कितना विश्वास करते हैं, मुझसे कितना प्यार करते हैं।"[2]

इन अंशों में 'मैं' की अभिव्यंजना पात्रों के अन्तर्मन में निहित मूल प्रवृत्ति को प्रस्तुत करती है जो बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है। इसलिए विश्लेषण जन्य चिन्तन कथानक का अनिवार्य अंग बन गया है।

कथानक को रोचक बनाने के लिए वर्मा जी ने विविध उपायों का सहारा लिया है। शिल्प की दृष्टि से उपन्यास के कथानक में कुतूहल और रोचकता का महत्व है क्योंकि रोचकता की सृष्टि कुतूहल ही करता है। इस प्रकार से 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'सीधी सच्ची बातें', 'सबहिं नचावत राम गुसाई' में वर्मा जी ने तीन-तीन पीढ़ियों के सांस्कृतिक चित्रणों में जरूरतमन्द उपकथानक मूलकथा के बीच में जोड़ते काट्ते रहते हैं जिससे कथा में पर्याप्त रोचकता बनी रहती है। इसके अतिरिक्त उनके उपन्यासों में मानव तथा प्रकृति का सघर्ष, मानव तथा नियति का सघर्ष, महान लक्ष्य तथा रोमांटिक वातावरण में सेक्स, संतुष्टि के लिए दो या कई व्यक्तियों के संघर्ष के द्वारा उपन्यासों में कुतूहल की सृष्टि हुई है। रानी मानकुमारी–"आप तो कभी-कभी वेतरह बहकने लगते हैं, कक्का जी।" रानी साहिबा यशनगर ने कार में बैठे हुए लोगों से कहा, "आप लोग कक्का जी की बात पर ध्यान न दीजियेगा, कभी-कभी यह न जाने क्या-क्या कहने लगते हैं।"

रानी मानकुमारी हंस पड़ी, "इतना समय ही कहाँ मिला कक्का जी कि मैं आपको यह सब बताती और आप से परामर्श करती। इतनी तेजी के साथ घट्नाएं घटी कि सौभाग्य पर चकित रह गयी।"[3]

---

1 सामर्थ्य ओर सीमा, भगवतीचरण वर्मा, पेज 136
2 प्रश्न और मरीचिका, भगवतीचरण वर्मा, पेज 66
3 सामर्थ्य और सीमा भगवती चरण वर्मा, पेज 58, 293, 294, 295

रानी मानकुमारी मुस्कुराई, "आप बड़े वीर हैं शर्मा जी, आप के सम्बन्ध में मेरी धारणा गलत नहीं थी। तो मैं आप से ही आरम्भ करती हूँ।"

रानी मानकुमारी–"कक्का जी, मसूर साहब का प्रस्ताव है कि वह मुझे एक शनदार सास्कृतिक डेलीगेशन का हैड बनाकर अमेरिका भिजवा देंगे, दो महीने के अन्दर ही और मैं सोचती हू कि जिस कुण्ठा और घुटन में मैं स्थित हू उससे कुछ तो त्राण मिलेगा मुझे। मैं अघाकर सास तो ले सकूंगी। उस उन्मुक्त और हसी खुशी के वातावरण मे मैं अपने दुख दर्द भूल सकूगी।"

यद्यपि पलायन वादी उपन्यासों की तरह यह वायवीय नहीं है अर्थात् जीवन की यथार्थ ताजगी की खुशबू हैं और सुख–दुख के पाटों से टकराते हुए मानव जीवन की आत्मा का प्रतिविम्ब है। पाठक स्वत· अपनी आत्मा का प्रतिविम्ब पाकर आनन्दानुभूति में डूब उठता है। वर्मा जी उपन्यास का प्रारम्भ एक कथा से करते हैं जो अपने सहज स्वाभाविक विकास के कारण अन्य कथाओं को जन्म दे देती है।

उपन्यास का गठन अथवा सम्बद्धता की दृष्टि से वर्मा जी के उपन्यास 'अपने खिलौने' के उपकथानक अथवा प्रासंगिक कथाएँ अलग नहीं हुई है बल्कि उसकी अंग बन कर मुख्य कथानक के साथ गुंथ गई हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' के उपकथानक में नगर के पूँजीपतयों के शोषण के प्रदर्शन के लिए ग्रामीण और नागरिक जीवन का चित्र जोड़ देते हैं। 'सामर्थ्य और सीमा' में मुख्य कथानक की गोद में उपकथानक विकसित होता है और अलग–अलग दिखाई देते हुए भी उसी में समाहित हो जाता है। समर्थ से समर्थ व्यक्ति प्रकृति या नियति के समक्ष घुटने टेक देते हैं फिर भी मृत्यु के महाकाल के प्रलय से निजात नहीं पाते। सारे उपन्यास में अन्तत मृत्यु और विनाश का स्वर सुनाई पड़ता है। अत इस उपन्यास मे शिल्प की दृष्टि से कथानक में प्रासंगिक कथा अन्तर्निहित है।

शिल्प की दृष्टि से कथानक की मुख्य विशेषता है–स्वाभाविकता तथा सजीवता। जीवन जगत मे जिस प्रकार की घटनाएं घटित होती हैं उसके अनुसार घटनाओं द्वारा कथावस्तु का निर्माण होना चाहिए। वर्मा जी एक जागरूक उपन्यासकार हैं। उनकी औपन्यासिक कृतियों में विविध सामाजिक समस्याओं,

राजनीतिक घटनाओ, सास्कृतिक परिदृश्य तथा आर्थिक प्रश्नों के सहज चित्रण द्वारा आधुनिकता बोध का एहसास होता है। कथानक का उद्‌भव एवं विकास स्वाभाविक घटनाओं एवं परिस्थितियों द्वारा हुआ है।

उपन्यास की गठनता एवं सम्बद्धता की दृष्टि से उपन्यास के मुख्य कथानक मे उप कथानक एवं प्रासगिक कथाएं चलती हैं। वर्मा जी के उपन्यासों ''प्रश्न और मरीचिका'' तथा 'टेढे मेढे रास्ते' में नगर के पूंजीपतियों के प्रदर्शन हेतु क्रमश ग्रामीण और नागरिक जीवन का चित्रण हुआ है।

शिल्प की दृष्टि से 'सामर्थ्य और सीमा' के कथानक में भावात्मक एवं मर्मस्पर्शी स्थलो का चित्रण हुआ है। कथानक शिल्प में मौलिकता आवश्यक होती है। 'तीन वर्ष' में प्रथमबार यथार्थवादी मौलिक कथानक का निर्माण किया गया। इसके बाद तो वर्मा जी की अन्य कृतियाँ युगचेतना की संवाहक सिद्ध हुई हैं जिनमें 'भूले बिसरे चित्र', 'टेढे मेढे रास्ते', 'सीधी सच्ची बातें', 'प्रश्न और मरीचिका', 'सामर्थ्य और सीमा' 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' आदि एपीसोडिक ट्रीटमेन्ट में लिखी गयी है। 'थके पाँव' शहरी जीवन से सम्बन्धित तीन पीढ़ियों के निम्न मध्यवर्ग के आर्थिक संघर्ष को व्यक्त करता है। पहली कहानी केशव के पिता रामचन्द्र की, जिसे केशव के मानसिक विश्लेषण द्वारा उपन्यासकार वर्णित करता है,[1] दूसरी कहानी केशव के जीवन से सम्बन्धित कहानी तथा तीसरी कहानी उसके पुत्रों के माध्यम से परिवर्तित मान्यताओं वाली भावी पीढी की कहानी। 'अपने खिलौने' यदि उच्चवर्ग के जीवन पर व्यंग्य है तो 'थके पांव' दरिद्रनारायण की करूण कथा है।

वर्मा जी के उपन्यास 'सबहि नचावत राम गुसाईं' में आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी परम्परा को पुन अपनाया गया। वहीं पर 'प्रश्न और मरीचिका' में आदर्शवाद पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। 'भूले बिसरे चित्र' और 'टेढे मेढे रास्ते' का आदर्श 'सीधी सच्ची बातें' में तिरोहित होकर 'प्रश्न और मरीचिका' में खो गया है। कथानकों में यह मौलिकता पहले के उपन्यासों की तुलना में परिवर्तनशील है।

---

1 थके पाव, भगवतीचरण वर्मा, पेज 10 11, 12

कथानक विकास शिल्प में डायरी, पत्र यात्रा आदि की भी बड़ी महती भूमिका होती है। डायरी रूप में कथानक की प्रगति 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में हुई है। जनसेवा और राष्ट्रसेवा के उद्देश्योन्मुख होकर जगत प्रकाश आदर्शो और मानवता के युद्ध में भाग लेने से तटस्थ नहीं रह पाता है।[1] युद्धस्थलमें लेफ्टीनेन्ट जगत प्रकाश एक जर्मन सैनिक को गोलीमार देता है। वहा मारे हुए सैनिक के जेब में एक डायरी उसे मिलती है। वह डायरी पत्रों के रूप में थी जो उस सैनिक ने अपनी पत्नी जूडिथ के नाम से लिखने चाहे थे। जिन्हें वह सेन्सरशिप के कारण अपनी पत्नी के पास नहीं भेज सका था। डायरी को पढकर जगत प्रकाश का अन्तर्मन कांप उठा[2] और उसमें भावानुभूतियों का ऐसा कोलाहल हुआ है कि उसका नर्वस ब्रेक डाउन हो गया।[3] इस प्रकार से वर्मा जी ने डायरी और पत्र के माध्यम से विशेष घटना, दृश्य और पात्र विशेष की मनोभावना पर प्रकाश डाला है। इसके आधार पर इन तथ्यों के माध्यम से कथानक में आये हुए अवरोधों को दूर करने का भी प्रयास किया है। 'प्रश्न और मरीचिका' में आये हुए पत्र इन्हीं उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं। इसी तरह यात्रा के सहारे कथानक का विकास चलता है किन्तु ये यात्राएं निष्प्रयोजन नहीं होती और इनमें किसी स्थान विशेष का वर्णन केवल वर्णन के लिए नहीं होता अर्थात् ये यात्राएं कथानक के अभिन्न अंग के रूप में 'सामर्थ्य और सीमा' 'प्रश्न और मरीचिका' आदि में सप्रयोजन होती हैं। उपन्यासकार कथानक को मनोनीत दिशा की ओर अग्रसर करने के लिए अप्रत्याशित संयोग, मृत्यु वियोग आदि के द्वारा कथा की गति परिवर्तित करता है तथा 'प्रश्न मरीचिका' और 'सामर्थ्य और सीमा' में उपन्यासकार ने कथावस्तु को मनोनीति दिशा की ओर मोड़ देने की विधि में स्वाभाविकता और कलात्मकता दिखाई है।

उपन्यासकार की असावधानी की वजह से या विशिष्ट उद्देश्य की स्थापना के लिए कुछ उपन्यासों में शिल्पगत सौन्दर्य का अभाव खटकता है। जिससे उपन्यास में चित्रित जीवन गढा हुआ तथा अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

---

1 सीधी सच्ची बाते भगवतीचरण वर्मा, पेज 348
2 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा, पेज 367, 368
3 सीधी सच्ची बाते, भगवतीचरण वर्मा, पेज 384

शिल्प की दृष्टि से 'आखिरी दाँव', 'थके पाँव' और 'सामर्थ्य और सीमा', 'टेढे-मेढे रास्ते' का कथानक कहीं-कहीं अस्वाभाविक प्रतीत होता हुआ दिखाई पड़ता है। 'टेढे मेढे रास्ते' में राजेश्वरी, महालक्ष्मी तथा अंग्रेज युवती हिल्डा आदि के चरित्र पति की छाया मात्र बनकर चित्रित हुए हैं जो कि तत्कालीन परिस्थितियों में देखने से कल्पना प्रसूत मालूम होते हैं। साम्यवादी अग्रेज युवती हिल्डा के बारे में लेखक लिखता है कि-"उसके अन्दर वाली स्त्री वह स्त्री है जो पुरूष का सहारा चाहती है, जिसका जीवन सेवा मार्ग में अर्पित है, वह नारी विवाह और प्रेम के इस विकृत रूप को सहन न कर सकी।"[1] यहाँ पर उपन्यासकार ने आदर्शवाद की स्थापना में इतना तटस्थ हो गया है कि भूल गये कि हिल्डा एक परम्परावादी नारी नहीं है जो एक सक्षम पुरूष का सम्बल चाहेगी, वह तो पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली एक प्रगतिशील चेतना युक्त नारी है।

'आखिरी दॉव' उपन्यास में वर्मा जी ने जिस कथानक की कल्पना की है वह स्वाभाविक नहीं लगता है, रामेश्वर और चमेली विपत्तियों से निजात पाने के लिए बम्बई भागते हैं जिससे ऐसा लगता है कि यह लेखक संयोग मात्र के तत्वों को प्रधानता देते हुए दिखाई पड़ता है। चमेली यद्यपि प्रेमचन्द के 'सेवासदन' की नायिका सुमन की तरह ही सास, ससुर और पति से त्रस्त होकर घर के आभूषण और नकदी चुराकर गांव के छैला के साथ भागती है परन्तु वहाँ वह सुख से नहीं रह पाती। वहा चमेली को वेश्यावृत्ति के लिए विवश किया जाता है, ऐसे समय में पुलिस के चगुल से रामेश्वर उसे अपनी पत्नी कह कर छुड़ा लाता है। यहॉ यह घटना तो सच्ची जान पड़ती है परन्तु एक ग्रामीण महिला का फिल्म हिरोइन बनना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। यहाँ पर शिल्प की कमजोरी दृष्टिगत होती है। "सामर्थ्य और सीमा" में रोहिणी नदी का एकाएक प्रलयकारी दृश्य सत्य नहीं प्रतीत होता है क्योंकि यह पूरी तरह से स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है।

---

1 टेढे मेढे रास्ते, भगवतीचरण वर्मा, पेज 214, 254

वर्मा जी के वृहदाकार उपन्यासों में असम्बद्धता और असन्तुलन विशद चित्र प्रस्तुत करने के मोहवश आ गया जान पड़ता है। उपकथाओं के प्राधान्य के कारण मुख्य संवेदना विखडित जान पड़ती है तथा अनावश्यक प्रसंग व्यर्थ में प्रवेश कर गया है। इस प्रकार की असम्बद्धता 'टेढे मेढे रास्ते'[1] 'सीधी सच्ची बातें'[2] और 'प्रश्न और मरीचिका'[3] के लम्बे-लम्बे वक्तव्यों और असम्बद्ध कथा-प्रसगो में दीख पड़ती है। यहाँ पर ऐसा लगता है कि उपन्यासकार ने संतुलित घटनाओं, उपकथाओं और छोटे-छोटे संवादों से काम लिया होता तो ये कृतिया उपन्यास जगत में छा जाती। कहीं-कहीं कथा गठन की त्रुटि के कारण उपन्यासों में घटनाओं और वर्णनों की पुनरावृत्ति हुई है। यह शिल्प की दृष्टि से कथानक की दुर्बलता है जिससे उपन्यास में शिथिलता आ जाती है।

किसी भी उपन्यास में कथानक की समाप्ति की दृष्टि से अन्त महत्वपूर्ण होता है। कारण कि वह पाठक के मानस पटल को झकझोर देता है जिससे अन्तिम परिणति की स्पष्ट छाप झलकती है। अन्तिम परिणति के लिए ही उपन्यास की रचना होती है। वर्मा जी के उपन्यासों का अन्त शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जिसमें 'अपने खिलौने', 'चित्रलेखा', 'भूले बिसरे चित्र', 'प्रश्न और मरीचिका' आदि है। अपने खिलौने उपन्यास के अन्त में वीरेश्वर प्रताप अपनी फ्रांसीसी प्रेमिका लिली के कारण नाटकीय रंगमंच से अभिनय करते हुए हट जाता है, जिससे अशोक गुप्त, मीना भारती, अन्नपूर्णा बंसल आदि का मानसिक तनाव समाप्त हो जाता है वह अपने पूर्व प्रेमियों के प्रति समर्पित हो जाती है। 'प्रश्न और मरीचिका' मे लेखक उदयराज उपाध्याय को प्रश्नों की मरीचिका से मुक्त कराकर ह्विस्की की शरण में भेज देता है जो आज के युग की निराशा, अवसाद, कुंठा और विवशता से बचने के लिए मानो सुलभ पथ की निदर्शना करता है।

---

1 टेढे-मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 214, 254
2 सीधी-सच्ची बाते, भगवती चरण वर्मा, पेज 9, 12, 35, 222, 226, 427
3 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 21, 22, 43

चरित्र शिल्प

उपन्यास में कथानक शिल्प के साथ-साथ चरित्र शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान होता है। व्यक्तियों के महत्व का उद्घाटन करना लेखक का प्रेय श्रेय ही नहीं, चरित्र-चित्रण के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि उपन्यास में सहज रूप में देखी जा सकती है। इस प्रकार से औपन्यासिक शिल्प मे चरित्र शिल्प अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास के विशिष्ट चरित्र ही तो उसकी लोक रजन शक्ति में वृद्धि करते हैं। कुशल लेखक मानव जीवन की और उसकी समस्याओं को प्रकृत रूप में पाठकों के समक्ष रखते हैं जिससे पाठक स्वानुभूत जीवन रस का आनन्द प्राप्त कर मुग्ध हो जाता है।

भगवती चरण वर्मा के लेखन काल के प्रारम्भिक समय में ही चरित्र शिल्प का इतना विकास हो गया था कि यह अब मानव के वाह्य क्रिया कलाप आचार-व्यवहार तथा वार्तालाप तक ही सीमित नहीं रहा, प्रत्युत चरित्रों के अचेतन, उपचेतन मस्तिष्क की इच्छाओं, कामनाओं एवं आकांक्षाओं के चित्रण के अतिरिक्त मानव की विचार-सारणी को प्रभावित और प्रेरित करने वाले रहस्यों को उद्घाटित करने लगा। वर्मा जी के उपन्यासों में युग चेतना के संवाहक पात्रों के समाज और परिवेश का उत्तरोत्तर विकासशील चित्रण हुआ है। उनके उपन्यासों का चरित्र चित्रण सोद्देश्य है जिसका अध्ययन प्रस्तुतीकरण शिल्प, वर्णनात्मक चरित्र शिल्प, अभिनयात्मक चरित्र शिल्प, संवादात्मक चरित्रशिल्प निराधार प्रत्यक्षीकरण चरित्र, स्वप्न चरित्र, अन्तर्द्वन्द्व चरित्र पत्रात्मक तथा दैनन्दिन चरित्र शिल्प, उद्धरणात्मक चरित्र शिल्प, विशिष्टताओ और दुर्बलताओं के आधार पर जॉचा परखा जायेगा।

वर्णनात्मक चरित्र चित्रण शिल्प की प्राचीन प्रणाली है। इस शैली में उपन्यासकार पात्रों के चरित्रगत विशेषताओ का स्वयं उल्लेख करता है तथा उनके क्रियाकलाप वेशभूषा का वर्णन करता है। वर्णनात्मक प्रणाली वर्मा जी के उपन्यासों में खूब मिलती है। वर्णानात्मक प्रणाली में चिंतन, पत्र, डायरी आदि रूप में समृद्ध होकर लेखक औपन्यासिक पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करता है। लेखक पात्रों के चिन्तन, असाधारण क्रियाकलापों तथा मानसिक विकृति का विश्लेषण करता है। यह विश्लेषण कभी पात्र स्वयं, कभी एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र का तथा कभी लेखक, पात्रों का विश्लेषण करता है। वर्णनात्मक प्रणाली के द्वारा मानव मात्र का ही नहीं बल्कि जड़ पदार्थ का भी जीवंत रूप चित्रित किया जाता है।

चरित्र चित्रण :

भगवती चरण वर्मा के 'पतन' उपन्यास का चरित्र-शिल्प दुर्बल, अप्रौढ तथा अपरिष्कृत है। भाषा की अक्षमता के कारण वर्णनात्मक शिल्प नीरस तथा निर्जीव है। वर्णनात्मक चरित्र शिल्प की अप्रौढता के कारण इस रचना में लेखक पात्रों की विशेषता का स्पष्ट चित्र अंकित नहीं कर सका है।

इस उपन्यास में गुलशन और सुभद्रा के चरित्र में स्वप्नों के माध्यम से आन्तरिक भावनाओं, अतृप्त इच्छाओं तथा कुण्ठाओं की सूक्ष्म व्यंजना होती है क्योकि गुलशन चाहती है कि उसकी रणवीर सिह से दूरियॉ समाप्त हो जायें, तथा दोनों पवित्र प्रेम के बन्धन में बँध जायें। नदी का मैदान में परिवर्तित हो जाना जीवन की नीरसता और शुष्कता का परिचायक है परन्तु एकाएक मैदान का लोप हो जाना, रणवीर और गुलशन का लिपटे हुए धार में बहना उलझनों और कठिनाइयों में प्रेमियों का प्रेम में बँधकर भी इस जनम में वियोगी होने का द्योतक है। नदी की धारा में बहना विघ्न बाधा का प्रतीक है।

चरित्र शिल्प की दृष्टि से इस रचना में वर्णनात्मक चरित्र का सुन्दर ढंग से प्रस्तुतीकरण उपन्यास के उपक्रमणिका में ही प्रस्तुत है। चित्र लेखा की अनेक चारित्रिक विशेषताए इन अंशों से प्रतिविम्बित हो जाती हैं-श्वेतांक ने पूछा-"और पाप!" महा प्रभु रत्नाबर मानो एक गहरी निद्रा से चौंक उठे। उन्होंने श्वेतांक की ओर एक बार बड़े ध्यान से देखा-"पाप? बड़ा कठिन प्रश्न है वत्स! पर साथ ही बड़ा स्वाभाविक। तुम पूछ्ते हो पाप क्या है?" . रत्नाम्बर ने रूककर फिर कहा-"पर श्वेतांक, यदि तुम पाप को जानना ही चाहते हो, तो तुम्हें संसार में ढूढ़ना पडेगा। इसके लिए यदि तैयार हो तो सम्भव है, पाप का पता लगा सको।"

श्वेतांक ने रत्नाम्बर के सामने मस्तक नमाकर कहा-"मैं प्रस्तुत हूं।" "और कदाचित तुम भी पाप को ढूंढ्ना चाहोगे?"-रत्नाम्बर ने विशालदेव की ओर देखा।

विशालदेव ने भी रत्नाम्बर के सामने मस्तक नमाते हुए कहा-"महाप्रभु का अनुमान उचित है।"[1]

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 7

चित्रलेखा के जीवन की अनेक चारित्रिक विशेषताएँ ग्यारहवें परिच्छेद मे–'चित्रलेखा ने अपने जीवन मे न जाने कितनी बार प्रेम की व्याख्या की थी। इतना कहकर कुमार गिरि ने अपने नेत्र बन्द कर लिए।''[1] स्पष्ट हुआ है।

इसमें चरित्रशिल्प अभिनयात्मकता की दृष्टि से भी ऊँचाई प्राप्त करती है। चन्द्रगुप्त की सभा मे योगी कुमारगिरि जब अपने चमत्कार द्वारा सम्पूर्ण सभा एव चाणक्य को पराजित कर चल देते हैं तो एकाएक चित्रलेखा का यह कहना–''योगी! ठहरो! मेरे भ्रम का निवारण अभी नहीं हुआ।''[2] इस प्रसंग से यह लगता है कि यथार्थ सत्य का उद्‌घाटन कर लोगों को भ्रम में डाल देना कितना आश्चर्यजनक है जिससे अभिनयात्मकता दृष्टिगत होती है।

'चित्रलेखा' उपन्यास में चित्रलेखा की चारित्रिक विशेषता का जो अनुमान बीजगुप्त को लगता है वह मिथ्या ही हो जाता है। बीज गुप्त की आशंका को कोरे आश्वासन से चित्रलेखा निर्मूल सिद्ध कर देती है। चित्रलेखा ने बीजगुप्त को धोखा दिया पर वह अपने को धोखा न दे सकी, उसने मन ही मन कहा, कुमार गिरि सुन्दर अवश्य है।[3] इसमें चरित्र के प्रस्तुतीकरण में सांकेतिक शिल्प का आभास होता है। चित्रलेखा का बीजगुप्त से यह कहना, ''नहीं मैं व्यक्ति से नहीं मिलती। मैं केवल समुदाय के सामने आती हूँ। पर यदि व्यक्ति समुदाय का भाग है तो नहीं।''[4] यह चित्रलेखा के परिवर्तित होते हुए दृष्टिकोण को अभिव्यक्त कर देता है। निराधार प्रत्यक्षीकरण के द्वारा चरित्रशिल्प में पूर्णता का सन्निवेश होता है। जो चित्रलेखा में दिखता है–नर्तकी चित्रलेखा ने नाचते–नाचते बीजगुप्त को देखा–एकाएक उसका मुख श्वेत हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कृष्णादित्य स्वर्ग से उतरकर उसका नृत्य देखने आया है। वह अपने सामने बैठे हुए जनसमुदाय को भूलकर बीजगुप्त को देखने लगी।''[5] काल्पनिक रूप से पूर्व प्रेमी की बीजगुप्त के रूप में प्रतीति की भावना और दोनों का दृष्टि मिलाप प्रणय की प्रथम पीठिका बन जाता है।

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 70 से 77
2 चित्रलेखा भगवती चरण वर्मा, पेज 37
3 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 31
4 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 12
5 चित्रलेखा भगवती चरण वर्मा, पेज 12

चित्रलेखा के प्रति बीज गुप्त का प्रेम और नैतिक साहस सराहनीय है। वह वर्मा जी का एक अनोखा पात्र है। भरी सभा में चित्रलेखा की चरणधूलि अपने मस्तक पर लगा लेता है। वीणा की इन दोनों क्रियाओं से मानसिक स्थिति का उद्घाटन होता है।

वर्मा जी के ''टेढे-मेढे रास्ते'' उपन्यास में चरित्र शिल्प की दृष्टि से रामनाथ, दयानाथ, उमानाथ, प्रभानाथ, मार्कण्डेय, ब्रह्मदत्त, झगडू मिश्र, वीणा, प्रतिभा आदि के चरित्र सजीव तथा जीवंत प्रतीत होते हैं। चरित्रशिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास मौलिकतापूर्ण है।

चरित्रशिल्प की दुर्बलता एवं अस्वाभाविकता की दृष्टि से देखा जाय तो इस उपन्यास में रामनाथ तिवारी अपने अहं की मान्यता के कारण अपने तीनों पुत्रों से मोह, ममता, शिष्टता, दया, आदि आत्मिक भावनाओं को तोड़ डालता है, जो स्वाभाविकता के घेरे से बाहर दिखाई देता है।

चरित्र शिल्प की दृष्टि से इस उपन्यास में राम नाथ तिवारी के चरित्र में वर्णनात्मक शैली दृष्टिगत होती है क्योंकि लेखक स्वयं ऐसे पात्रों के चरित्र पर स्वत· प्रकाश डालने की कोशिश करने लगता है। इसी प्रकार से झगडू मिश्र के चरित्र से अभिनयात्मक शैली दृष्टिगोचर होती है। झगडू मिश्र राजनीतिक कलाबाजियों से अनजान गाँधीवादी व्यक्ति हैं। वानापुर की जनता का जमींदार रामनाथ के विरोध में शस्त्र विद्रोह उनकी ज्यादतियों के कारण होता है परन्तु हिसा को रोकने के लिए रामनाथ तिवारी की सभा में वह अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं।''[1] कम्युनिस्ट उमानाथ पुलिस द्वारा बचने के लिए अपने पिता की सहायता से वंचित होकर निराश हो जाता है। उसके द्वारा उपेक्षित पत्नी महालक्ष्मी विदेश भागने मे सहायता करती है ''मैंने आपकी बुआ से बातें सुनीं। मेरे पास कुल दो हजार रूपये हैं यह सब ले जाइये उमानाथ ने देखा कि लक्ष्मी उसके चरणों को पकडे रो रही है।''[2] यहाँ पर इस प्रतिक्रिया के द्वारा वर्मा जी ने भारतीय नारी की पति भक्ति को साकार करने का प्रयास किया है। वीणा की

1 टेढेमेढे रास्ते भगवती चरण वर्मा, पेज 352
2 टेढेमेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 32–33

प्रभानाथ से प्रथम मुलाकात, फिर मित्र सम्बन्ध को प्रणय सूत्र में बाधना, वे भी अभिनयात्मक एव नाट्कीय चित्रण का सजीव रूप हैं।

इस उपन्यास के रामनाथ तिवारी और उनके बड़े लड़के एव बहू के परस्पर वार्तालाप निर्णयक निश्चित धारणा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ पात्रों के स्वभाव को यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करते हैं "मैंने तय कर लिया-पीछे फिरना कायरता है और मैं कायर नहीं हूँ।" तुम कायर नहीं हो-यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरा पुत्र कायर नहीं है, मुझे इस पर गर्व है और मेरा यह वीर पुत्र अपने पिता से ही लड़ने पर तुला है, उस पर ही प्रहार करने को आमादा है। ठीक ही है। दुनियाँ में सब कुछ सम्भव है।"[1] इस वार्तालाप अंश में संवादात्मक चरित्र शिल्प मिलता है। 'टेढ़े मेढे रास्ते' में वर्मा जी ने कहीं-कहीं साकेतिक शिल्प का प्रयोग किया है-प्रभा से वह कहती है "नहीं, मरने के लिए मैं हूँ और सब है लेकिन आप! आप के मरने का अभी समय नहीं है। आप अगर विपत्ति में पड़ जायेंगे तो मैं नहीं रह सकूंगी-नहीं रह सकूंगी।"[2]

'टेढे मेढे रास्ते' में उपन्यास के पात्रों के चरित्रों का मानसिक संघर्ष व्यक्त करने के लिए ने प्रभानाथ के माध्यम बनाया है। प्रभानाथ को जीवन और मृत्यु में से किसी एक को चुनने के लिए बाध्य होना पड़ता है। एक ओर तो प्रभानाथ को नैतिक पतन तो दूसरी ओर कुल गौरव दिखाई पड़ता है। इस स्थिति में गहरी बेचैनी एवं उलझन को सहना पड़ता है जो इस संकेत से-"ददुआ! काका ने सरकारी गवाह बनने की अनुमति ले ली है-लेकिन तबसे मेरे मन में एक भयानक अशाति भर गयी है।"[3]

वर्मा जी ने कहीं-कहीं पर इस उपन्यास में चरित्रों के मानसिक गुत्थियों की अभिव्यक्तियों के मुक्त आसंग प्रणाली और बाधकता विश्लेषण के द्वारा पात्रों की आन्तरिक एव वाह्य घटनाओं के साथ उनके मानसिक यथार्थ तथ्य को प्रकट किया है।

---

1 टेढेमेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 32-33
2 टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 87
3ण टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 461

"टेढे-मेढे रास्ते" उपन्यास में कहीं कहीं व्यावहारिक मनोविज्ञान के द्वारा पात्रो के चरित्र को उद्घाटित किया गया है। यथा उपन्यास में वीणा के प्रेम में पड़कर ही प्रभानाथ क्रान्तिकारी पार्टी में सम्मिलित होता है। उपन्यास में कहीं कहीं पात्रों के आवेश पूर्ण मन स्थिति का भी अंकन है जैसे कि वीणा रामनाथ तिवारी से आवेश मे ही कह देती है, "इस तरह चिल्लाना आप को शोभा नहीं देता – मैं स्वय जा रही हूँ। विश्वासघातियो के घर का अन्न खाकर मैंने अपने को अपवित्र कर लिया है, इसका प्रायश्चित करना होगा।"[1]

लेकिन वहीं दूसरे अवसर पर वीणा, अनायास ही झुक कर रामनाथ चरित्र शिल्प की दृष्टि से 'तीन वर्ष' के प्रमुख पात्रों रमेश, प्रभा, सरोज और अजित कुमार के चरित्रों को अचेतन, उपचेतन मस्तिष्क की इच्छाओं, कामनाओं एवं आकांक्षाओं के चित्रण को एवं उनके आन्तरिक रहस्यों का यथार्थवादी चित्रण करने का प्रयास किया है। प्रस्तुतीकरण के तहत कथा को वर्णनात्मकता के द्वारा भी प्रस्तुत कर दिखाई देता है तथा कहीं कहीं पात्रों की मनोभावनाओं को वर्णनात्मक शिल्प में प्रस्तुत न कर वर्मा जी ने उसकी क्रिया प्रतिक्रिया का चित्र अंकित किया है जो विश्वसनीय और प्रभावशाली है। अजित की पिस्तौल की आवाज सुनकर जब बोर्डिंग हाउस के लड़के, "क्या हुआ ? क्या हुआ ? कहते रमेश के कमरे में आ गये तो गोली से घायल अजित ने मुस्कराते हुए कहा, "बड़ी खैर हो गयी। क्या बताऊँ, पिस्तौल का सेफ्टी बिगड़ा हुआ था और मुझे यह मालूम न था। मैं उसे देख रहा था अचानक गोली छूट गयी।"[2] अजित यदि चाहता तो सच-सच बताकर रमेश को उसके अपराध के बदले फॉसी पर लटकवा देता, परन्तु उसकी यह प्रतिक्रिया यह सिद्ध कर देती है कि वह रमेश का हितैसी हैं। "पर एक बात समझ लो रमेश, मैंने जो कुछ किया, मैंने जानबूझकर तुम्हारा अहित नहीं किया।"[3] यहॉ इसमें अभिनयात्मक चित्र दिखता है क्योंकि यदि रमेश की गोली से अजित की मृत्यु घोषित हो जाती तो अजित की उदारता से पाठ्क अपरिचित रह जाता तथा भावनात्मक सम्प्रेषण नहीं बच पाता।

---

1 टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज 453
2 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज 112
3 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज 113

इस उपन्यास में चरित्र चित्रण कथानक की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योकि ज्यादातर पात्रो के आन्तरिक जीवन को उद्घाटित किया गया है। खिलौने! खिलौनों से खेलने की उम्र रेखा पार कर चुकी है, लेकिन खिलौनों से खेलने की प्रवृत्ति उसमें अभी तक बनी है।''[1] वर्णनात्मकता के तहत लेखक उसके स्व का विवेचन स्वय को रखकर करता है।

वहीं आगे रेखा जटिल पहेली प्रतीत होती है ''अरे तुम ! शीरी चावला!'' पराजित और निराश स्वर में शीरी बोली, ''हॉ, मैं शीरी चावला हूँ और मैं मरना चाहती हूँ आपने मुझे रोककर अच्छा नहीं किया।''

'आप शीरी से मिलने जा रहे थे या रत्ना से, ठीक ठीक बताइयेगा।''[2] यहॉ पर रेखा ने शीरी को आत्महत्या करने से बचाकर निरंजन से इस लिए सम्पर्क स्थापित करती है कि निरंजन को रत्ना चावला के चंगुल से मुक्त कराकर शीरी को वापस कर दें। लेकिन वापस करने के स्थान पर स्वयं हथिया लेती है-यहाँ आप घाटे में नहीं रहेंगे अन्दर आ जाइये 'रेखा ने निरंजन को सिर से पैर तक देखा', इन बातों से रेखा के विविध जीवन चरित्र की झांकी मनोवैज्ञानिक यथार्थ के सहारे चित्रित हुई है।

संवादात्मक चरित्र शिल्प की दृष्टि से रेखा के द्वारा ''आप कितने अच्छे हैं, ठीक मेरे देवता की भॉति। तुम्हारी जो चिन्ता थी।''[3]

''ज्ञान! सच-सच बतलाना, क्या तुम इस शिवेन्द्र से प्रेम करने लगी हो?'' ''कह नहीं सकती कि वह प्रेम है या फिर एक प्रकार का क्षणिक उन्माद है लेकिन इतना जानती हूं कि एक प्रबल आकर्षण है उसके व्यक्तित्व में और उस आकर्षण में एक प्रकार का सम्मोहन है।''[4] इन संवादों से रेखा, प्रभाशंकर ज्ञानवती और इन दोनों संवाद से शिवेन्द्र के भी जीवन चरित्र का उद्घाटित होना दिखाई देता है।

---

1 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 5
2 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 121, 128
3 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 109
4 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज

जिस प्रकार से व्यक्ति की आन्तरिक इच्छायें स्वप्न में प्रकट होती है, उसी प्रकार जाग्रत अवस्था मे किन्हीं कारणों से व्यक्ति को स्वप्नवत निराधार रूप से भ्रान्तियां होती रहती है। मानसिक विकृतिग्रस्त रेखा, प्रभाशकर की रखैल देवकी के पुत्र रामशकर के साथ घूमती हुई आत्मीयता का अनुभव ही नहीं करती, अपितु उसे ऐसा लग रहा था, कि युवक प्रभाशंकर उसके साथ चल रहा है, वैसा ही पौरूष की मिठास सा भरा स्वर, वैसे ही कौतुहल से भरी आखे। रामशंकर के मुख पर प्रसन्नता का भाव देखकर उसे सुख मिल रहा था। इसके अतिरिक्त टैक्सी पर बैठकर वह कल्पना कुंज में खो जाती है। उसे अनुभव हो रहा था कि प्रभाशकर का स्वस्थ, ताजा और लचीला शरीर उसकी बगल में बैठा है। और अपने ही अनजाने किसी अज्ञात प्रेरणा के वश उसने अपना हाथ रामशंकर के कंधे पर रख दिया और उसके मुख से निकल पड़ा–"तुम कितने अच्छे और प्यारे लड़के हो।"[1] यह उसके अन्तर्मन में छायी हुई काम अतृप्ति की अभिव्यक्ति है। जिसमें वर्मा जी ने रेखा के चोर मन को लाकर बाहर पाठ्क के सामने रख दिया है।

'रेखा' उपन्यास की नायिका रेखा प्रोफेसर प्रभाशंकर की छात्रा से पत्नी बन जाती है। उसका चेतन मानस तो प्रभाशंकर से प्रेम करता है, परन्तु अचेतन मन काम कुण्ठा की भावना को उत्तेजित करता रहता है। इसलिए अवसर पाकर प्रत्येक सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति से काम सम्बन्ध स्थापित करती है।"

चरित्र शिल्प की दृष्टि से इस उपन्यास के पात्र अपनी अपनी स्थिति में होते हुए भी अपनी भूमिकाओं के माध्यम से युगीन स्थिति का चित्रांकन करती है। लक्ष्मीचन्द के चरित्र के सन्दर्भ में लक्ष्मीचन्द को जब यह ज्ञात हुआ कि उसकी मां जैदेई और ज्वाला प्रसाद का अवैध सम्बन्ध है, जिसके कारण वह ज्वाला प्रसाद एवं गंगा प्रसाद को अधिक स्नेह देती हैं इसकी प्रतिक्रिया उसके मन मे यह होती है कि वह अपनी मां से विद्रोह कर बैठ्ता है–"यह जो करोड़ों की बात करती हो यह इन्हीं सैकड़ों हजारों से ही तो बने हैं अम्मा।"[1] माँ के प्रति विद्रोह भावना लक्ष्मीचन्द के व्यक्तित्व में हस्तान्तरित हो गयी है–"दूँगा गाली। इस चूड़ैल को गाली दूँगा। इसके गुनों को क्या हम लोग जानते नहीं

---

1 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 64, 65

हैं?'' इसमें माँ के चरित्र और अपनी पूँजी वादी सोच से लक्ष्मी का चरित्र चित्रण हो जाता है। इस उपन्यास में ज्वाला प्रसाद का चरित्र तथा जैदेई का चिरत्र अभिनयात्मक शिल्प में प्रस्तुत हुआ है। ज्वाला प्रसाद एक तरफ प्रभुदयाल के कत्ल में वरजोर सिंह के खिलाफ गवाही देते हैं। फाँसी के भय से बरजोर सिह आत्महत्या कर लेता है तो ज्वाला प्रसाद जैदेई के द्वारा सौ अशर्फियाँ देकर खेत छुडवा देते हैं।

चरित्र शिल्प की दृष्टि से तुलनात्मक एव वैभिन्नता भी शिवलाल के परिवार के ज्वालाप्रसाद गगा प्रसाद नवल और विद्या के द्वारा उनके कर्म से अलग-अलग दिखता है क्योंकि शिवलाल की तरह ज्वाला प्रसाद किसी की खुशामद नहीं करता तथा गंगा प्रसाद से अधिक साहसी, आदर्शवादी नवल एवं विद्या है जिससे एक ही परिवार के पीढियों सदस्यो के चरित्र में वैभिन्नता दिखाई पड़ती है तथा झिनकी और जैदेई के चरित्र में वर्गभेद के साथ-साथ शिवलाल एव ज्वाला प्रसाद से जुड़े होने के कारण सब गुण अच्छे होते हुए भी चारित्रिक कमियाँ दिखाई देती हैं।

इसी शैली का प्रयोग करते-करते वर्मा जी के उपन्यास 'टेढे मेढे रास्ते'[2]के रामनाथ तिवारी, झगडू मिश्र तथा 'सामर्थ्य और सीमा'[3] के रत्नचन्द्र, मकोला, जोखनलाल, बासुदेव, चिन्तामणि, देवलंकर, ज्ञानेश्वर राव, शिवानन्द शर्मा, एलबर्ट किशन, मंसूर, रानीमान कुमारी, नाहर सिंह आदि के चरित्र चित्रण चित्रात्मक बिम्ब वर्णनात्मक शिल्प शैली में दृष्टिगत होते हैं। इसलिए इसमें नवीनता तथा मौलिकता दृष्टिगत होती है। 'सीधी सच्ची बातें'[4] के जगत प्रकाश, जसवंत, त्रिभुवन, मालती, कुलसुम, कमला कान्त, 'सवहिं नचावत राम गोसाई'[5] के त्यागमूर्ति झम्मनलाल, शकर देव प्रशान्त, जबर सिंह, रामलोचन पाण्डेय, 'प्रश्न और मरीचिका'[1] के शिवलोचन शर्मा के चरित्र स्वत· पूर्ण, सजीव और जीवंत हैं। इसके अतिरिक्त चरित्रों के विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए वर्मा जी ने

---

1 भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 185, 186
2 टेढेमेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा पेज 3-4, 40-42
3 सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज 12-16, 18-21, 30-33, 60-62
4 सीधी सच्ची बाते, भगवती चरण वर्मा, पेज 9-12, 18-22
5 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 150-152, 162, 163, 197, 254, 255

व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया है। पात्रों के अन्तर्मन में चल रहे भाव–विचार के अनुसार व्यवहार असंगत तथा जटिल होते हैं, जो व्याख्या तथा विश्लेषण के अभाव में अर्थहीन तथा महत्वहीन हो जाते हैं। 'सीधी सच्ची बाते' की कुलसुम एक ऐसी युवती है जो विवाह के पूर्व जसवन्त कपूर से प्रेम करती है और विवाह परवेज झाववाला के साथ न चाहते हुए भी करती है। 'इसी उपन्यास के जसवन्त के विवाह के बाद वह जगत प्रकाश से प्रेम करने लगती है, क्योकि बौद्धिक व्यक्ति के सबल व्यक्तियो के सम्पर्क में उसे सन्तोष मिलता है।[2] 'आखिरी दांव' की चमेली रतनू से घृणा करते हुए भी पारिवारिक कष्टों एव अन्याय से मुक्त होने के लिए उसके साथ घर से बम्बई भागती है परन्तु वहां वह जब उससे वेश्यावृत्ति कराना चाहता है तो चमेली रतनू का विरोध करती है और परिस्थितियों के झकारे में रामेश्वर की पत्नी बनती है।[3] 'प्रश्न और मरीचिका' के उदयराज उपाध्याय की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया और उसका, उसके मानसिक जगत पर प्रभाव का विश्लेषण हुआ है जो सूक्ष्म निरीक्षण और गहन चिन्तन पर आधारित है। उसके असाधारण व्यक्तित्व विकास का जीवन्त चित्र विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।''[4] भगवतीचरण वर्मा के चरित्र–शिल्प विश्लेषणात्मक, भावात्मक, परिस्थितिजन्य एवं प्रासंगिक है।

वर्मा जी के 'टेढ़े मेढे रास्ते', 'आखिरी दाव', 'सीधी सच्ची बातें', 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास निरीक्षण और गहन चिन्तन पर आधारित है। इसके असाधारण व्यक्तित्व विकास का जीवन्त चित्र विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।''[5] भगवती चरण वर्मा के चरित्र–चित्रण (विश्लेषणात्मक), भावात्मक परिस्थितिजन्य एवं प्रासंगिक है आज भी उस तरह से चरित्र समाज में मिलते हैं।

वर्मा जी के 'टेढे मेढे रास्ते' 'आखिरी दाँव' 'सीधी सच्ची बाते' 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास में चरित्रशिल्प की सवोत्कृष्ट अभिनयात्मकता प्रदर्शित होती है। 'टेढे मेढे रास्ते' उपन्यास का झगडू मिश्र राजनीतिक कला वाजियों से अनभिज्ञ

---

1 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 53, 54
2 सीधी सच्ची बाते, भगवती चरण वर्मा, पेज 458, 459
3 आखिरीदॉव, भगवती चरण वर्मा, पेज 20–30
4 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 23, 24, 25
5 प्रश्न और मरीचिका भगवती चरण वर्मा, पेज– 23, 24, 25

उदारमना गाधीवादी व्यक्ति हैं। बानापुर की जनता का जमींदार रामनाथ के विरोध मे सशस्त्र विद्रोह उनकी ज्यादतियो के कारण होता, परन्तु हिसा को रोकने के लिए रामनाथ तिवारी की सभा में वह अपने प्राण न्योछावर कर देता है।'' कम्युनिष्ट उमानाथ पुलिस द्वारा बचने के लिए अपने पिता की सहायता से वचित होकर निराश हो जाता है। ऐसे ही समय में उसके द्वारा उपेक्षित पत्नी महालक्ष्मी विदेश भागने मे सहायता करती है। ''मैनें आप की बुआ से बातें सुनी, मेरे पास कुल दो हजार रूपये है- बाकी मेरा गहना है यह सब ले जाइए''-और उमानाथ ने देखा कि लक्ष्मी उसके चरणों को पकड़ कर रो रही है।''[1] इस प्रतिक्रिया से महालक्ष्मी की पति भक्ति साकार हो उठी है। 'आखिरी दाँव' उपन्यास का रामेश्वर जब चमेली को पुलिस के चगुल से छुड़ाता है तो ऐसी आशका होती है कि वह चमेली को अपनी वासना पूर्ति का साधन बनायेगा, परन्तु मुसलाधार वर्षा में स्वय रामेश्वर बरामदे में भीगते-भीगते रात बिताकर अपने सच्चरित्रता की अमिट छाप चमेली पर छोड़ता है वह जीवन भर रामेश्वर की हो जाती है।[2] टेढे-मेढे रास्ते' की वीणा और प्रभानाथ की भेंट और उसके बाद से प्रणय की धनिष्ठता कहीं से कम अभिनयात्मक नहीं लगती।[3] पात्रों के आचार-विचार, क्रिया-कलाप, चिन्तन-मनन का जब उपन्यासकार नाट्कीय चित्रण करता है तो पात्रों का स्वरूप सजीव और हृदय ग्राही प्रतीत होने लगता है। वर्मा जी के 'सीधी-सच्ची बाते' तथा 'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यासो के पात्रों के चरित्र-चित्रण अभिनयात्मक शिल्प में प्रस्तुत हुए है।

संवादात्मक चरित्र-शिल्प अभिनयात्मक चरित्र-शिल्प के अन्तर्गत आता है। पात्रों के क्रिया कलाप ही चरित्र के परिचायक नहीं होते बल्कि उसमें संवाद की खासी भूमिका होती है। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में संवादों की अधिकता होने के बावजूद भी चरित्रों के अभिव्यक्ति में पूर्णत सक्षम नहीं दिखाई देते हैं। उपन्यास के कथानक को गति देने, स्थिति का निर्माण करने, समस्याओं पर प्रकाश डालने, राजनीतिक तथा सामाजिक विषयों का रेखांकन करने आदि में

---

[1] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज- 496
[2] प्रश्न ओर मरीचिका भगवती चरण वर्मा, पेज- 23, 24, 25
[3] टेढे मेढे रास्ते', भगवती चरण वर्मा, पेज- 90 107, 477

संवादों का भारी भरकम जाल बन जाने के कारण पात्रों का चरित्र चित्रण भली भॉति नहीं हो पाता है। वर्मा जी के अधिकाश औपन्यासिक पात्र उच्चवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण क्लबों, पार्टियों, सभा सोसाइटियों में ही एक-दूसरे से सम्पर्क मे आते हैं जो अपनी बातचीत के प्रत्येक शब्द के प्रति जागरूक होने के कारण मन का चोर नहीं खोलते हैं। अत संवादो के आधार पर उनका चरित्र मूल्याकन ठीक से नहीं किया जा सकता है। ''आखिरी दाँव'' की नायिका चमेली अपनी स्थिति छिपाने के लिए रामेश्वर से झूठ बोलती है-''मैं तुमसे झूठ नहीं बोलूंगी हरेक स्टूडियों की हिरोइन अपने स्टूडियों की रानी हुआ करती है। इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं समझती।''[1] यहाँ पात्र अपनी वार्तालाप कौशल द्वारा सत्य पर पर्दा डाल देते हुए दिखाई देते हैं। अत संवादों के द्वारा सही-सही चरित्र का उद्‌घाटन नहीं हो पाता है। वर्मा जी के उपन्यासों में इस प्रकार के चरित्र कथोपकथन में भरे पड़े हैं।

वर्मा जी के उपन्यास 'सवहिंनचावत राम गोसाई' के जबर सिंह, त्यागमूर्ति, झम्मन लाल, आदि राजनीतिक नेताओं के सवाद भी बनावटी है जो उनकी चारित्रिक अभिव्यंजना नहीं कर पाते है। यदि इस कृत्रिमता को छोड़कर सही रूप में कथोपकथन करते हैं तो चरित्र की सहज झांकी मिल जाती है।''टेढ़े मेढ़े रास्ते'' उपन्यास के रामनाथ तिवारी और उनके बड़े लड़के एवं बहू के परस्पर वार्तालाप निर्णय निश्चित धारणा की अभिव्यक्ति के साथ पात्रों के स्वभाव को यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करते हैं। ''आखिरी दाँव उपन्यास के सेठ शिवकुमार और चमेली का वार्तालाप ऐसा ही है। सेठ शीतला प्रसाद के बंगले से रंगरेलियाँ मनाती हुई चमेली को जब रामशेवर घर घसीट लाता है तो उस समय उसका यह कथन ''हम सब पैसे के गुलाम है, धन हमार ईश्वर है, हमारा अस्तित्व है। . . . झूठ अविश्वास, छल कपट की दुनिया के हम लोग प्रधान नागरिक है, हम दोनों मे किसी को किसी से कोई शिकायत न होनी चाहिए।''[2] इसके अतिरिक्त वर्मा जी के उपन्यासों के स्वगत कथन जहाँ एक ओर संवादात्मक शिल्प सौष्ठव को प्रस्तुत करते हैं वही दूसरी तरफ वे चरित्र व्यंजक लगते हैं। इसका सफल प्रयोग ''प्रश्न और मरीचिका,'' टेढे मेढ़े रास्ते' के पात्रो में दिखाई पड़ता है।

---

[1] आखिरी दॉव, भगवती चरण वर्मा, पेज– 138
[2] आखिरी दॉव भगवती चरण वर्मा, पेज– 228

'आखिरी दाँव' में जहाँ चमेली, शिवकुमार से घृणा करती थी, वहीं आभार प्रकट करती है। सेठ ! तुम इतने भले हो, मैने यह न सोचा था। आज मेरे साथ तुमने जो उपकार किया, मैं उसे जनमभर न भूलूँगी। तुमने मुझे हमेशा के लिए अपना बना लिया।''[1] ''सीधी सच्ची बातें' की कुलसुम, शिवदुलारी, सुषमा, एव जगत प्रकाश की भावाभिव्यक्तियाँ उनके चरित्रों की झलक दे देती हैं।

वर्मा जी ने निराधार प्रत्यक्षीकरण के द्वारा चरित्रशिल्प में प्रयोग किया है इस माध्यम से भी चरित्र शिल्प का उद्घाट्न किया है इस प्रकार 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के अन्तिम चरण में प्रभानाथ एक ऐसी स्थिति में पहुंच जाता है जब उसे जीवन और मृत्यु में से किसी एक को चुनने के लिए बाध्य होना पड़ता है। एक ओर नैतिक पतन तथा दूसरी ओर कुल गौरव। ऐसी दशा में उसे गहरी बेचैनी और उलझन को सहन करना पड़ता है, परन्तु वर्मा जी इसका संकेत मात्र करते है, ''ददुआ! काका ने सरकारी गवाह बनने की अनुमति ले ली है-लेकिन तब से मेरे मन में एक भयानक अशंति भर गई है।''[2] इस तरह के चरित्र समाज में आज भी प्रासगिक हैं यहां वर्मा जी के आधुनिकता बोध की दृष्टि दिखाई पड़ती है।

उपन्यासकार ने जहाँ कही पात्रों के मन में उठ्ते परस्पर विरोधी विचार को समान तीब्रता से दिखाकर मानसिक अनिश्चितता को अधिक देर तक बनाए रखा है, वहाँ उनके पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण बड़ा ही सजीव बन गया है। 'टेढ़े -मेढे' रास्ते के आरम्भ में दयानाथ को चौबीस घन्टों में यह निश्चय कर लेना है कि वह अपने सिद्धान्तों से हट्कर, कांग्रेस छोड़कर पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करें या सिद्धान्तों पर अडिग रह कर सम्पत्ति को त्याग दे। कांग्रेस अपनाये रखने में उसे व्यक्तिगत कठिनाई नहीं थी, परन्तु अपनी इच्छा अनिच्छा के अनुसार अपने दोनों लड़को और पत्नी को कंगाल बना देना क्या उसके लिए उचित होगा। काफी देर तक यह मानसिक यातना सहा और शायद और देर तक कष्टों में पड़ा रहता यदि राजेश्वरी उसे सहायता न करती। ''मुझे जरा भी तकलीफ नहीं होगी। मुझकों उसी मे सुख है, जिसमें तुमकों है। अरे सुख-दुख दोनों सहने के लिए तो आदमी पैदा हुआ है।''

---

[1] आखिरी दॉव, भगवती चरण वर्मा, पेज– 99
[2] टेढे मेढे रास्ते भगवती चरण वर्मा, पेज– 461

"सामर्थ्य और सीमा" की रानी मानकुमारी, देवलकर, शिवानन्द शर्मा, एलवर्ट किशन मंसूर, ज्ञानेश्वर राव, मकोला आदि में किसे अपने वैधब्य-जीवन के सहारे के लिए चुने, यह निश्चित नहीं कर पाती तो अत में हार कर मेजर नाहर सिह से सलाह लेती है। नदी के बाढ के पूर्व मेजर नाहर सिंह को काफी मानसिक यातना सहनी पड़ती हैं। रोहिणी नदी के बाढ़ के पूर्वाभ्यास से नाहर सिह की विक्षिप्तास्था का जो अन्तर्द्वन्द्व चित्रित हुआ, उससे उनका चरित्र तो उद्घाटित ही होता है और वर्मा जी की अन्तर्विवाद की चित्रण कला का निखार भी हो उठता है।

'प्रश्न और मरीचिका' के उदयराज उपाध्याय को जब अपनी माता के साथ रिवेरिया जाना या बच्चों एवं बीबी के साथ देश में रहने में से एक चुनने का प्रश्न उठता है तो वह मानसिक यातना से मुक्त होने के लिए शराब का सहारा लेता है। इस प्रक्रिया में उसके चरित्र का स्वाभाविक उद्घाट्न होता है।

वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों की आन्तरिक कामनाएं भावनाएं तथा मनोभाव आदि उद्धरणों के तहत अभिव्यक्त हुए है; जिससे उनके उपन्यासों में कलात्मक श्रीवृद्धि हुई है। कविताओं, शेरो, गीतों के माध्यम से हृदय की भावनाएँ स्वत· फूट पड़ी हैं- वह कविता या गीत अपने हो या अन्य द्वारा रचित। 'ढेढे-मेढे' उपन्यास में क्रान्तिकारियो की बैठक मनमोहन के अध्यक्षता में हो रही है परन्तु विजय सिंह अपनी मस्ती भरी आवाज में गा उठता है जिसे सब लोग सुनने लगते हैं। मनमोहन के झुंझला कर कहा, "बात किससे करूँ? तुम लोग सब के सब एक तरह की मस्ती मे गर्क हो, भगवान जाने इस मस्ती का अन्त क्या होगा? विजय सिह और उसके साथियों की तत्कालीन मनस्थिति का अनुमान उसके गीतों से लगाया जा सकता है।

"उर की लाली से मुख की कालिख धो लो,

सर आज हथेली पर है बोलो बोलो।"[1]

---

[1] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज- 259

'आखिरी दाँव' उपन्यास का रामेश्वर जब अनाज बेचकर जब पाँच सौ रूपये टेट मे रखे हुए है। होली के त्योहार के बारे में वह सोचता है कि किस प्रकार वह अपने मित्रों को दावत देगा, भाग छनेगी, नाचगाना होगा इन्ही भावों मे मग्न होकर वह अपने खेतों की मेड़ छोड़ कर गाँव मे प्रवेश करते हुए गा उठता है-"खेल री जी भर फाग, आगन तोरे आयें है साजन।"[1] यह लोकगीत की पक्ति रामेश्वर के हृदय की मस्ती का परिचायक है।

'अपने खिलौने" उपन्यास में सर्वाधिक गीतों एवं शेरों का प्रयोग कर चारित्रिक अभिव्यक्ति करते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में अशोक मीना के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर गीत गा उठता है जो उसके हृदय में मीना के प्रति उठती हुई प्रेम प्रस्फुटन का परिचायक है। दिलवर किशन जख्मी के शेर कुछ इश्क मुहब्बत के रंग में सरावोर कवि मस्तीपन का परिचायक है तथा इसी माध्यम से कुछ पात्रों के चरित्र चित्रित करते है। युवराज की पार्टी में मीना के सौन्दर्य और चाल-ढाल का चित्र ऐसा ही है। शायद जख्मी का यह अर्ज-"युवराज-मेरे आका में कितनी बुलन्दी है, जो आये मुकाबिल में वह तो सभी बौने है।"[2] इस शेर के द्वारा युवराज के डिप्लोमेट चरित्र की अभिव्यंजना करता है, जो अपनी ऊपरी शिष्टता, चतुर उदारता और कला प्रेम-आदि के मनोहर आवरण में सभी को फँसाता है। इस प्रकार के उद्धरणों द्वारा पात्रों की आकांक्षाओं तथा मनोभावनाओं का सफल चित्रांकन हुआ है। जो इस शेर -

किस, किस पै हँसे जख्मी-किस किस पै यहाँ रोवें।

सब अपने खिलाड़ी है, सब अपने खिलौने हैं।"[3] के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वर्मा जी की कृतियों में आये हुए पात्रों में स्वाभाविकता है। अगर हम 'आखिरी दाँव' की चमेली को लें तो देखेंगे कि चमेली घर से रूपये और आभूषण चुराकर गाँव के छैला के साथ भाग जाती है। समाज

---

[1] आखिरी दॉव,, भगवती चरण वर्मा पेज- 118
[2] अपने खिलौने, भगवती चरण वर्मा पेज- 90 91, 198
[3] अपने खिलोने भगवती चरण वर्मा पेज- 199

की दृष्टि में भले ही वह दुष्चरित्र हो, पर लेखक ने जिस परिस्थिति में उसे ऐसा करने के लिए विवश दिखाया है- यदि हम उस पर ध्यान दें तो उसे हम दुष्चरित नारी की सज्ञा नहीं दे सकते हैं। आज भी इस तरह के परिस्थितियाँ चरित्र समाज में प्रासागिक हैं।

'वह फिर नहीं आई' उपन्यास में विस्थापितों की समस्या उठाकर वर्मा जी ने जीवनराम, रानीश्यामला और ज्ञानचन्द की विशिष्ट मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। वर्मा जी के उपन्यास 'थके पाँव' में केशव की आपबीती कहानी है। केशव के सम्पूर्ण चरित्र के माध्यम से वर्मा जी ने मध्यवर्गीय जीवन के उस रूप को सामने रख कर दिखाया है जिसमें व्यक्ति आदर्श और यथार्थ के दो पाटों में जूझता रहता है पर न तो वह आदर्श से ही पीछा छुड़ा पाता है और न यथार्थ से। इस वर्ग के पात्र परिस्थितियों से समझौता करके कुण्ठित जीवन व्यतीत करते हैं। मोहन ऐसा ही पात्र है जो परिस्थितियों का दास है और उसका कोई स्वतत्र व्यक्तित्व नहीं है। परन्तु किशन और माया आधुनिक युग के युवक और युवती हैं जो युग का बोध कराते है। वहीं नारी पात्र माधुरी और सुशीला सनातनी नारी हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में युग बोध का पात्रों के द्वारा स्वाभाविक चित्रण हुआ है। एक ओर तो युग का विशिष्ट चित्र मिलता है तो दूसरी ओर पात्रों के माध्यम से जन-जीवन की प्रवृत्तियों, कामनाओं, भावनाओं और आदर्शो की प्रति छवि दिखाई देती है। 'भूले-विसेर चित्र' 'प्रश्न और मरीचिका' तक सन 1885 ई0 से सन 1962 ई0 तक की विशाल पृष्ठ भूमि पर युगीन मानव के सुख-दुख और सफलता की यथार्थ कहानी कही गई है।

'टेढ़े मेढे रास्ते' में यथार्थ वादी दृष्टि से सन् 1930 के आस-पास की राजनैतिक चेतना और प्रमुख विचारधाराओं दयानाथ गांधीवाद से, उमानाथ मार्क्सवाद से और प्रभानाथ को आतंकवाद से प्रभावित चित्रित किया गया है वहाँ तक लेखक तत्कालीन समग्र युग को दिखाया है तथा वहाँ पर ढहते सामन्तवाद को रामनाथ तिवारी के द्वारा दिखाया है। 'सीधी सच्ची बाते' में 1939 से 1948 ई0 तक का युग चित्रित किया गया है। परन्तु गाँधी वादी आस्था को ज्ञान प्रकाश, नवल, दयानाथ, झगडू मिश्र, मार्कण्डेय आदि के माध्यम से अभी तक जो

अभिव्यंजित हुई थी वह तिरोहित हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक वर्ष में ही गाधी की हत्या के साथ गांधी वाद दफना दिया गया जिसकी अभिव्यक्ति वर्मा जी जगत प्रकाश की अभिव्यक्ति द्वारा करते थे। 'प्रश्न और मरीचिका में वर्मा जी ने स्वतत्रयोत्तर भारत का यथार्थ चित्र जयराज उपाध्याय, उदयराज उपाध्याय, शिवलोचन शर्मा, मुहम्मद शफी, जर्नादन सिंह, विश्वनाथ मदान आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वहीं पर 'सामर्थ्य और सीमा' के सभी पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रकृति के सामने अक्षम तो हैं। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व निश्चित किये गये सारे स्वप्न आदर्श विलीन हो गये। मन्त्रियों की भ्रष्ट नीतियों से लाखों का प्रतिवर्ष घाटा होता है फिर भी राष्ट्र का निर्माण हो रहा है जो आज के समय में भी यह प्रासगिक दिखाई दे रहा है। 'सवहिं नचावत राम गोसाई' आधुनिक युग के भ्रष्ट नेतृत्व एवं शासन पर कठोर एवं तीखा व्यंग्य है। राधे श्याम के बाबा यदि पार्चून की दुकान पर डाड़ी मारते थे तो वह पूँजी पति बन कर परोक्ष रूप से जनता का खून चूसता है। जबर सिह पार्टी के चन्दे के नाम पर नये-नये तरीके से धन उगाहते हैं जो कि प्रदेश के गृह मन्त्री है तथा जनता का खून चूस कर पूँजीपति तथा अपना पेट भरते है। राम लोचन पाण्डे डी. एस.पी बन कर इसका विरोध करता है शासन से मातखाने पर चुनाव में जबरसिह को पराजित कर विधायक बन जाता है। इस उपन्यास के पात्रों के कार्य अपने पूर्वजों के विकसित रूप है जो वणिक, डकैती और पुरोहिती वृत्ति से सम्बन्धित हैं। जिनका चरित्र चित्रण स्वाभाविकता की दृष्टि से दिखाया गया है।

वर्मा जी के उपन्यासों के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का समावेश रचना के कलागत सौन्दर्य को सुशोभित करता है। 'सीधी सच्ची बातें' की कुलसुम जमीलका सम्मान उदारवृत्ति के कारण नहीं मिलता बल्कि मजदूर नेता के कारण मिलता जो हड़ताल बगैरह में सहायता करे। 'सामर्थ्य और सीमा' का प्रत्येक पात्र रानी मान कुमारी के दुख से दुखी होकर नहीं बल्कि सौन्दर्य भोग के कारण उन पर मेहरबान होना चाहता है जिसमें अव्यक्त मनोवैज्ञानिकता की झलक दिखाई पड़ती है।

'टेढे-मेढे' रास्ते के वीणा और प्रभानाथ का चरित्र तथा अपने खिलौने के युवराज और मीना के सम्बन्ध में अशोक का शंकाग्रस्त होना। तथा 'प्रश्न और मरीचिका के सोफी गार्डनर उदयराज उपाध्याय के चरित्र फयांसी के साथ जुड़ना, आदि में पात्रों मे उनकी सोंच में मनोवैज्ञानिकता का समावेश हो जाता है।

भगतवी चरण वर्मा के औपन्यासिक पात्रों में अस्वाभाविकता एवं असंगति के कारण शिल्पगत दुर्बलता दिखाई पड़ती है। उपन्यासकार की असावधानी के अतिरिक्त अनेक कारण है जिससे चरित्र चित्रण में दुर्बलता आ गयी है। पात्रों को परिस्थितियों के झंझावात से झकझोर कर उन्हें नियति का डण्डा दिखाकर स्वेच्छा से जहाँ चाहा उनकी गतिविधियों और प्रृवृत्तियों को परिवर्तित कर दिया। इससे उनके चरित्र में स्वाभाविक विकास न हो सका है। ''प्रश्न और मरीचिका'' की रूपा शर्मा उच्च वर्ग की महिला तो नही है पर दिल्ली के एक महान काग्रेसी नेता की पत्नी हैं और वह भी रूपयों के लिए अपना तन बेचती है। ''टेढे मेढ़े रास्ते' के रामनाथ तिवारी अपने अहम की मान्यता के मोह में तीनों पुत्रों मे मोहमयता, स्नेह, दया, आदि भावनाओं को खत्म कर लेना स्वाभाविकता की परिधि से बाहर है। 'आखिरी दाँव' की ग्रामीण युवती चमेली की ग्रामीण परिवेश से कटकर बम्बई के शहरी परिवेश में से हीरालाल से अपनी रक्षा के लिए पुलिस की सहायता लेने का साहस करना, वहाँ रामेश्वर की पत्नी बन जाना फिर फिल्मी हिरोइन बन जाना कुछ ज्यादा ही अस्वाभाविक दिखाई देता है। ''अपने खिलौने' के युवराज वीरेश्वर प्रताप का चरित्र भी कुछ अस्वाभाविक दिखाई देता है। फ्रांसीसी प्रेमिका लिली से लेकर मीना भारतीय, अन्नपूर्णा वंशल, कैरा कोमल आदि को अपने रोमोंटिक चक्कर में फसाना लेखक के कृत्रिमता का द्योतक है।

'सामर्थ्य और सीमा' के नाहर सिंह तो उपन्यासकार की विचारधारा के करीब दिखते हैं जो हमेशा नियति के वाण से भय खाते हुए दिखाई पड़ते हैं। वहीं पर रानी मान कुमारी के काम चेतना के मोह में एक साथ कई लोगों का आकर्षित होना कुछ कम जंचता है।

'टेढे मेढे रास्ते' के रामनाथ तिवारी का चरित्र तथा 'सामर्थ्य और सीमा' क नाहर सिह का चरित्र लेखक के हाथ की कठपुतली बटन कर हर समय दिखाई पडे हैं। मानव जाति का स्वभाव होता है कि वह यथार्थ दुनिया के संघर्षो से लड़ता हे, जूझता है, तथा अपने अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने की कोशिश करता है तथ स्वयं को कहीं कहीं परिवर्तित कर कुछ न कुछ सफलता हासिल करता है। परन्तु यहाँ रामनाथ तिवारी और नाहरसिंह दोनों स्थिर स्वभाव के चरित्र है। 'प्रश्न और मरीचिका' की मालती और 'अपने खिलौने' के दिलवर किशन जख्मी, प्रीतम, कमला कोमल, अन्नपूर्णा बंसल आदि यान्त्रिक चरित्र वाले हैं। जिनके चरित्र में स्थिरता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस प्रकार से वर्मा जी के उपन्यासो में यान्त्रिक पात्र आदि से अन्त तक पडे रहते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्मा जी के उपन्यास के पात्रों के चरित्र में कोई जटिलता नहीं है। बहुधा उपन्यासों में तीन चार पीढ़ियों के चित्रण द्वारा पात्रों के सास्कृतिक प्रभावों को उभार कर चित्रित किया गया है। वर्मा जी ने चरित्र के अन्तर्मन में प्रवेश करके उभारा है। जहाँ कहीं उन्होंने पात्रों के मानसिक जगत के स्पन्दन को पकड़ने का प्रयास किया वहाँ बहुत गहराई तक नहीं जा सके है। परन्तु प्रेमचन्द की तरह पात्रों के चरित्र को रूपायित करने में बहुत ज्यादा सहानुभूति नहीं दिखाई है। वर्मा जी के पात्र प्रेमचन्द और शरतचन्द के आदर्श और यथार्थ में, भावुकता से सरावोर नगरीय हैं। चरित्र शिल्प की विविधता की दृष्टि से वर्मा जी के पात्रों का चरित्र गतिशील, सततशील, दुष्ट, कुण्ठा ग्रस्त के विश्लेषक आदि। चित्र शिल्प की सार्थकता इसी में सिद्ध एवं प्रमाणित हो सकती है कि जब पात्र चित्रण स्वयमेव पूर्ण, तर्कसम्मत, विश्वसनीय, स्वाभाविकता से पूर्ण तथा सजीव प्रतीत हो। जो कि वर्मा जी के उपन्यासों के पात्रो के चरित्रों की विशेषता है।

कथोपकथन या संवादात्मक शिल्प–

कथोपकथन का विकास तो सृष्टि के आरम्भ से प्रारम्भ है चाहे वह भले ही अटपटी वाणी मे ही हुआ है लेकिन बुद्धिशील मानव प्राणी ने अपने विकास के साथ–साथ अपनी एक व्यावहारिक एवं व्यवस्थित बोली भाषा का भी विकास कर

लिया। कथोपकथन की यह परम्परा तब से अक्षुण्ण रूप से चल रही है। मानवीय सभ्यता और सस्कृति के विकास के साथ-साथ भाषाजन्य अक्षमता का परिहार होता रहा। सामान्य जन जीवन में नर और नारी परस्पर वार्तालाप में स्थूल से लेकर मनोभावों को अभिव्यक्त करने लगे। उपन्यासों के पात्र अपने कथोपकथनों मे मानव जीवन की अनुराग-विराग और सुख-दु ख भरे आनन्द एवं करूणा के साथ कथा कहते हैं।

शिल्प की दृष्टि से आज के सफल उपन्यासों में, जो वार्तालाप प्राप्त होता है वह कथानक को सहज स्वाभाविक गति प्रदान कर चरित्र-चित्रण में योगदान देता है। इस प्रकार से भगवती चरण वर्मा जी के उपन्यास साहित्य में विविध प्रकार के कथोपकथनो का शिल्पगत प्रयोग हुआ है। अत उनके उपन्यासों में स्वाभाविक, मौलिक मनोवैज्ञानिक, सरस, सुन्दर, सजीव, वैयक्तिक चरित्र आदि कथोपकथन उपलब्ध होते हैं। तथा वह सदा प्रयासरत रहते हैं कि उसमें नवीनता, मौलिकता एवं सुन्दरता बनी रहे। जिसमें शिल्पगत सौन्दर्य विघमान होता हो।

वर्मा जी के उपन्यासों में पात्रों के द्वारा आपस में परस्पर सवाद विचार-विनिमय के माध्यम से करते हुए मिलते हे। प्रत्येक उपन्यास में कुछ न कुछ ऐसे कथोपकथन मिलते है। जिसके कारण पात्रों की विचाराधार का बोध होता क्योंकि किसी के बोलने बात कर आदि से उसके भावों विचारों को समझा जा सकता है। साथ ही साथ उपन्यासकार के दृष्टिकोण का भी पता चलता है। विचार विनिमय मूलक कथोपकथन जहाँ शिल्प की वृद्धि करते हैं वहीं इनकी अधिकता से उपन्यास नीरस या उबाऊ हो सकने का डर भी बना रहता है। शिल्प की दृष्टि से इस प्रकार के कथोपकथन श्रेष्ठ समझे जाते है जिनमें कलात्मक सौन्दर्य हो और प्रचारात्मकता का अभाव हो। वर्मा जी के 'टेढे मेढे रास्ते', 'सीधी सच्ची बातें, तथा 'प्रश्न और (मरीचिका)' के कुछ स्थलों पर ऐसे कथोपकथन पाये जाते हैं वहीं वर्मा जी के अन्यू उपन्यासों 'सामर्थ्य और सीमा' सबहि नचावत राम गुसाईं' से स्वाभाविक विचार विनिमय वाले कथोपकथन मिलते हैं।

नाट्कीयता की दृष्टि से कथोपकथन को प्रभावशाली बनाने की चेष्टा की गयी है। कथोपकथन को प्रभावशाली बनाने के लिए पात्रों की आंगिक क्रियाओं के चित्रण द्वारा अपने उपन्यासों में नाट्कीयता का पुट दिया है जिससे पात्रों के चरित्र सजीव एवं साकार हो उठे हैं।

वर्मा जी के उपन्यासों में कहीं कहीं लघु कथोपकथन का प्रयोग मिलता है हलाकि इस प्रकार के बहुत ही कम दिखाई देते हैं। इसमें पात्रों का वार्तालाप पात्रो का खुद का प्रतीत होना चाहिए। जो कि ऐसा दिखे। इस प्रकार के कथोपकथन 'आखिरी दाँव' उपन्यास में बहुतायत दिखाई पड़ते हैं।

इस उपन्यास में कथोपकथन स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसमें पात्रानुरूप कथोपकथन दिखाई पड़ता है–''प्रताप सिंह गंभीर हो गया उसने रणवीर का हाथ पकड़ कर पूछा, 'अच्छा, तो क्या तुम मेरी शक्ति पाना चाहते हो' ?

''नहीं।'' उसके मुँह से एकाएक निकल पड़ा।

उसने पूछा, क्यों ?''

रणवीर ने कहा, ''इसलिए कि मैं शैतान का गुलाम नहीं बनना चाहता।'' क्रोध से प्रताप सिंह का मुँह लाल हो गया। वह कह उठा, 'ढोंगी कहीं के। एक हत्यारे के मुख से यह सुनकर कि वह शैतान का गुलाम नहीं बनना चाहता, मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। जानते हो, तुमने कितने मनुष्यों की हत्या की है।''

'हाँ जानता हूँ पर मैं तुमसे पहल ही कह चुका हूँ कि हत्याएँ पापियों को संसार से हटाने के लिए की गयी हैं। मैने जो कुछ किया है, वह धर्म तथा न्याय के नाम पर किया है। याद रहे जो मैं ठीक समझता हूँ, वह ठीक है और उसे करने में में कभी नहीं हिचकता।''[1]

''वाह रे न्याय के समर्थक ? ''प्रताप सिंह ने व्यंग्य स्वर में उत्तर दिया।[2]

---

[1] पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज–63, 166
[2] पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज–11

इस उपन्यास में प्रकृति का यथातत्य चित्र अतिसाधारण रूप में हुआ है जो इस अश से–"हवा तेज थी और बादल घिर आये थे, उसी समय एक मनुष्य गगा के किनारे, उस स्थान पर जहाँ आज कानपुर का भैरों का घाट है, टहल रहा था। कालिमा इतनी गहरी छायी हुई थी कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। समय का अन्दाजा लगाना उस समय कठिन था, पर तो भी इतना निश्चित है कि उस समय प्राय दोपहर व्यतीत हो चुकी थी"[1] –स्पष्ट है।

इस उपन्यास मे वर्णनात्मक शैली में शिल्पगत सौन्दर्य का अभाव है, क्योकि स्थान–स्थान पर लेखक पाठकों को संबोधित करता है अथवा उसकी शैली में कथावाचक जैसी उपदेशात्मकता है।"[2]

भाषा की दृष्टि से उपन्यास में वर्मा जी ने ऐसी भाषा शब्दों का पयोग किया है कि सामान्य पाठक से मेल खा सकें–"मैंने! वजीर साहब ऐसे काबिल शख्स के हाथ में मुल्क का इन्तजाम सिपुर्द कर दिया है।"[3]

इसी के साथ–साथ वर्मा जी ने आवश्यकतानुसार अरबी–फारसी शब्दावली का भी प्रयोग किया है–फरसत, वजीर, मुसाहिब, सल्तनत, परवाना, मुबारक आदि।"[4]

इस उपन्यास में शिल्पगत कमियां उजागर हुई हैं लेकिन प्रौढ़ावस्था में एक उपन्यासकार से इससे ज्यादा क्या अपेक्षा की जा सकती है जो आगे के उपन्यासो के कथा, शैली, भाषा आदि की दृष्टि से निखार आता ही गया है।

उपन्यासो के चरित्र शिल्प की मौलिकता वांछनीय हैं शिल्प की दृष्टि से 'चित्रलेखा' में यह विशेषता दृष्टिगोचर होती है। इसमें पात्रों के स्वभावानुरूप कथोपकथन दृष्टिगोचर होता है। वीजगुप्त ने कहा–चित्रलेखा! जानती हो जीवन का सुख क्या है?"

उसने उत्तर दिया, "मस्ती"

---

[1] पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज–7
[2] भगवती चरण वर्मा, के उपन्यासो मे युगचेतना, डॉ0 बैजनाथ शुक्ल, पेज–4, 45
[3] पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज–24
[4] पतन, भगवती चरण वर्मा, पेज–21 24, 28, 30 33।

वीजगुप्त हस पड़ा–''सोच रहा हूँ चित्रलेखा, यौवन का अंत क्या होगा?'

''जीवित मृत्यु!''

''जीवित मृत्यु! नही, वह यह असम्भव है। यौवन का अन्त है एक अज्ञात अन्धकार और उस अज्ञात अंधकार के गर्त में क्या छिपा हे, वह न तो मैं जानता हूँ औन उसके जानने की कोई इच्छा ही है।'' वीजगुप्त रूक गया वह आगे के शब्दों को ढूढ़ने लगा था।

''और वह उल्लास–विलास है, संसार का सारा सुख है'', यौवन का सार है'' चित्रलेखा ने हंसते हुए वाक्य पूरा कर दिया।

वीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिंगन पाश में लेकर कहा, ''तुम मेरी मादकता हो।''

चित्रलेखा ने उत्तर दिया, ''और तुम मेरे उन्माद हो।''[1]यहाँ पर वे सभी वार्तालाप बिना किसी लाग लपेट या आडम्बर के प्रस्तुत दिखाई पडता हैं। यहाँ पर पात्रों का कथन ही पात्रों के व्यक्तित्व को साकार करता है।

इस उपन्यास के पाप–पुण्य के विवेचना वाले दार्शनिक कथोपकथन की सजीवता और सप्राणता अपने कलात्मक रूप में दिखाई देती है। तथा पात्रों के चरित्र नाटकीय रूप में सजीव से दिखाई देते है। चित्रलेखा ने मदिरा का एक घूंट पिया इसके बाद वह मुस्कुरायी। एक क्षण के लिए उसने अधरों ने वीजगुप्त के अधरो से मौनभाषा में कुछ बात कहीं, फिर धीरे से उसने उत्तर दिया, ''मस्ती।''[2]

व्यंग्यात्मक कथोपकथन की दृष्टि से भी इसमें कलात्मकता का पैनापन दिखाई देता है।। मै तुमसे प्रेम करने आयी हूं!'' कुमारगिरि हंस रहे थे उपर उनका वह हास कितना शुष्क था, कितना व्यंग्यात्मक था! चित्रलेखा चौंक पड़ी।''[3] इस वार्तालाप में मर्म को छू लेने का सा आभास मिलता है।

---

[1] चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज–10, 11
[2] चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज–11
[3] चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज–74, 75

इस उपन्यास में देशकाल की दृष्टि से मौयकालीन चन्द्रगुप्त के समय का चित्रण उसके दरबार को पटल पर रखकर किया गया है। तत्कालीन समाज में योग और भोग सम्बन्धी दृष्टिकोण का मौलिक प्रतिपादन किया गया है। ऐतिहासिक पुरूष चन्द्रगुप्त और चाणक्य के दरबार की गरिमा, सामन्तीय भोग-विलास, तथा समारोहों-विवाहों का तत्युगीन प्रतिबिम्ब का वातावरण चाक्षुष होता हैं स्थानगत चित्रण में सामन्त बीजगुप्त के साथ नर्तकी चित्रलेखा का केलि भवन मे निमग्न होना इसका प्रमाण है।

शिल्पगत सौन्दर्य प्राकृतिक छटा के साथ ऐतिहासिक रोमांस की सृजनात्मकता झलकती हैं तथा इस उपन्यास के प्रसगों में अलंकारिक वर्णनों की प्रतीति करायी गई है। जिससे अभिव्यक्ति काव्यात्मक तथा सरस बन गई है।

वर्मा जी यह उपन्यास कथानक की शुरूआत, नाटकीय कला के साथ-साथ कवित्वमय भाषा, तर्कपूण संवाद एवं मनोवैज्ञानिक विवेचना आदि की दृष्टि से शिल्प-सौष्ठव हिन्दी उपन्यास में अपनी एक छाप छोड़ता है। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक शैलियों का भी प्रयोग कथोपकथन आदि जगहों पर प्रस्तुतीकरण हुआ है।

कथोपकथन की दृष्टि से 'टेढ़े मेढे रास्ते' उपन्यास बिना किसी रोक-टोक के अकृत्रिम रूप से प्रस्तुत है। जिससे कथोपकथन पात्रों के अनुरूप ही ढला हुआ है। तथा कथोपकथन के द्वारा ही इस उपन्यास का कथानक सहज एवं स्वभाविक रूप से विकास की तरफ बढ़ता हैं बीती घटनाओं की सूचना, वर्तमान स्थिति का परिचय तथा भविष्य की योजना पात्रों के कथोपकथन द्वारा ही होती है जो इस सवाद से परिलक्षित है- ''रामनाथ सोच रहे थे-किस प्रकार बात आरम्भ की जाय और दयानाथ रामनाथ की बात की प्रतीक्षा कर रहा था।''

रामनाथ ने बात आरम्भ की, 'तो देख रहा हूँ कि तुम खद्दरपोश हो''। गये हो ''और सरगर्मी के साथ कांगेस का काम कर रहे हो। .. ..इसमें मेरे बोलने की क्या आवश्यकता सब कुछ तो आप देख ही रहे हैं? शान्तभाव से दयानाथ ने कहा।''[1] कथानक की गति की स्वाभाविकता दिखाई देती है।

[1] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज-10, 11

कहीं कहीं इस उपन्यास में कथोपकथन विचारों के आदान प्रदान की दृष्टि से भी सम्यक है जिससे पात्रो की विचारधारा एव उपन्यासकार का दृष्टिकोण दिखाई पडने लगता है। रामनाथ ने दयानाथ को अशीर्वाद नहीं दिया, क्रोध से उनकी आँखे लाल थीं। . देखिये उसे कुछ चोट तो नहीं आयी।"

'रामनाथ को बिना कुछ कहने का अवसर दिये ही उसने अपने साथियों से कहा, "आप लोग कार्रवाई जारी रखें मुझे अपने पिता जी से कुछ बातें करनी है, तब तक के लिए मैं क्षमा चाहूँगा।"[1]

"डाइगरूम में पहुँचकर प्रभानाथ ने दयानाथ से पूछा। बड़के भइया। कल ददुआ बडे नाराज थे। रात को उन्होंने खाना भी नहीं खाया। क्या बात थी?"[2] शिल्पकी दृष्टि से ऐसे कथेपकथन प्रभावी समझे जाते हैं जो कलात्मक सौन्दर्य का बोध करवाते हैं प्रचारात्मकता का नहीं।

शिल्प की दृष्टि से 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के कथोपकथन में उनके पात्रों के संवादों में आंगिक क्रियाओं के द्वारा नाट्कीयता का व्यवहार दिखने लगता है। तथा कहीं कहीं व्यंग्यात्मक कथोपकथन का दयानाथ और रामनाथ तिवारी के वार्तालाप मे दिखाई देता हैं तो यह व्यंग्य कहीं पर किसी व्यक्ति के प्रति तो कहीं किसी वर्ग के प्रति। पात्र वार्तालाप के माध्यम से अपने सिद्धान्तों के घोषणा करते हुए दिखायी पड़ते हैं। उनके वार्तालाप से उनके मानसिक स्तर का पता लगता है।

इस उपन्यास में लम्बे-वार्तालाप उपदेशात्मक भाषण कथानक की गति में कहीं-कहीं बाधक दिखाई पड़ते हैं, जिससे पाठ्क असहज महसूस करने लगते हैं जो शिल्पगत दृष्टि से कमजोर हो जाते हैं।

देशकाल तथा वातावरण की दृष्टि से "टेढे मेढे रास्ते" उपन्यास में सन् 1930 के आस-पास की ढुलमुल राजनीति और तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराओं में गांधीवाद, समाजवाद, और आतंकवाद को सामन्तवादी पारिवारिक

---

[1] टेढे मेढे रास्ते भगवती चरण वर्मा, पेज-8 9
[2] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज-

पृष्ठभूमि में चित्रित किया गया है। सामन्तवादी परम्परा पिता रामनाथ तिवारी का आधिपत्य या इसमें शोषण का वृहद चित्रण झलकता हैं अग्रेजी हुकूमत तथा सामन्तों के शोषण से जनता त्रस्त थी जिससे क्रान्तिकारियों की प्रेरणा से जनता जमींदारो से विद्रोह कर दिया करती थी। इन राजनीतिक आन्दोलनों में जनता पर सबसे अधिक जमींदार वर्ग का कहर था जिसमें रामनाथ तिवारी इसके ज्वलत उदाहरण हैं। इस उपन्यास के वातावरण में राजनीतिक यथार्थ का चित्रण पात्रों के भाषणों आन्दोलनों, ट्रेन डकैतियों के द्वारा यथार्थपरक बन पड़े हैं।

'टेढे मेढे रास्ते' में जीवन शैली की दृष्टि से रामनाथ तिवारी के अंग्रेजी शिक्षा पाये तीनों पुत्रा युगीन चेतना से प्रेरित होकर दयानाथ-गांधीवादी, उमानाथ मार्क्सवादी और प्रभानाथ-आतंकवादी, जो अपने-अपने रास्तों से आकर सोभपात्र के राजमार्ग पर चलते-चलते गुमराह हो जाते हैं।

शैली की दृष्टि से 'टेढ़े मेढे रास्ते' में पात्रों के संवादों में ही व्यंग्यात्मक शैली का पुट मिलता है तथा भाषा की दृष्टि से व्यावहारिक , स्वाभाविक तथा जगह-जगह आन्दोलन लोक जनजीवन से जुडे होने के कारण लोकभाषा का प्रयोग दिखाई पड़ता है-"परमानन्द सुकुल अपने सामने बैठे हुए नीलकण्ठ अवस्थी से कहा, "सो महाराज, कबौं विलाइतिहन का प्रायश्चित भा है कि आजे होई ?"

मन्नू दूबे, 'कवौ भा है और न आज होई हम लोग आन कनोजिया और उमा खट्कुल। ई भ्रष्टाचार हमारी यहाँ नाहीं चल सकता है, यू विश्वास राखी।"

गणपति अग्निहोत्री, ई आप वैसवाडा 'कनोजियन का गढ! हम लोग जो कुछ हर देब, वह शास्त्र सम्मत है, पंचन की राय अलवत्ता चाही।" अलगू दीक्षित ने गर्व से मस्तक ऊँचा करके कहा, "ईमा कौनोशक है। हम जो कर देई, उनका कौनो काट नाहीं सकते हैं। तौन महाराज इहैलिए हम कहा कि जो कुछ कीन जाय, तो जरा सोच समझ कर कीन जाय।"

तथा साथ में ही वर्मा जी ने अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग किया है जेसे गैरेज मैनेजर, ब्रिटिश गर्वनमेन्ट, डिप्टी कमिश्नर आदि।

अत वर्मा जी के 'टेढे मेढे रास्ते' में भगवत एव विचारगत की सजगता तथा भाषा शैली यथार्थवादी दृष्टिकोण से अच्छा बन पड़ा है।

'तीन वर्ष' में वर्मा जी चरित्रों की अभिनयात्मकता के साथ-साथ सवादात्मक शिल्प भी पात्रों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। रमेश और प्रभा अपने कथोपकथन में जो विश्वास व्यक्त करते हैं, उनका चरित्र उससे उल्टा सिद्ध होता हैं। वहीं पर आगे अजित स्त्री को रक्षिता पुरूष को रक्षक मानता है। लेकिन तर्क वितर्क के बाद प्रभा से कह देता हैं। कि यह तो ''आरगूमेन्ट' या, उसका उत्तर मैं आपकों कभी समझाऊॅगा। अजित मैं शायद किसी बात पर विश्वास नहीं करता।''[1] कह कर पाठ्क एवं अपने साथियों को चक्कर में डाल देता है।

इस तीन वर्ष, उपन्यास के पात्रों के चरित्रों का मानसिक संघर्ष व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार ऐसा अन्तर्विवाद प्रस्तुत करता है, जिसमें न तो कोई वक्ता होता है और न कोई श्रोता ही (पाठ्क गण पात्र की हृदयगत भावनाओं से प्रत्यक्षत परिचित होता जाते हैं। इसमें रमेश प्रभा के प्रेम के बिना जीने में प्रतयक्षत परिचित होता जाते हैं। इसमे रमेश प्रभा के प्रेम के बिना जीने में असमर्थ है, परन्तु इसके साथ ही यह भी भूल नहीं पाता कि वह कितना निरीह और निसहाय है। कि दूसरे के धन पर रईसी और ठाठ्बाट लगाये है। यह तभी तक कायम है जब तक अजीत की कृपा होगी। या अगली प्रेमिका सरोज के सन्दर्भ मे रमेश सोच रहा है चलो-सरोज तुम्हे बुला रही है-वह तुम्हें देखना चाहती है-चलो, चलना तुम्हारा कर्तव्य है'' फिर सोचता है कि''[2] सरोज मेरी कौन होती है?'' इससे पात्रों के मानसिक संघर्ष का पता चलता है।

चरित्र शिल्प की दृष्टि से पात्रों का भी महत्व सरोज के यहाँ से रमेश के चले जाने पर सरोज द्वारा उसको ढूँढ़ने के लिए दैनिक पत्रों में विज्ञापन भेजती है''प्रिय रमेश,

---

[1] तीन वर्षे, भगवती चरण वर्मा पेज–88

[2] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज–197

मैं मृत्यु शय्या पर पड़ी हूँ। तुम्हें एक बार देखना चाहती हूँ यही मेरी अन्तिम इच्छा हें और यह मैं नहीं जानती कि कब तक जिन्दा रहूँगी। अगर मरने के पहले तुमसे मिल सकूँगी, तो सुख से मर सकूंगी। सरोजा''[1]

चरित्र शिल्प की दुर्बलता की दृष्टि से देखा जाय तो उनके पात्रों के चरित्रो मे वाछित प्रभाव स्थापित नहीं हो पाता है। रमेश की बौखलाहट में पिस्तौल से गोली चला देना कम असंगत नहीं है।

कथोपकथन शिल्प की दृष्टि से स्वाभाविक है रमेश और अजीत का वार्तालाप, प्रभा, रमेश का वार्तालाप, विनोद रमेश का वार्तालाप रमेश सरोज का वार्तालाप आदि अकृत्रिम है। जो कि पात्रों के व्यक्तित्व प्रकाश डालते-ये सब व्यर्थ की बाते हैं। '' रमेश ने कहा''

अजित ने रमेश की ओर तीव्र दृष्टि से देखा-''व्यर्थ की बातें नहीं हैं-इनमें से प्रत्येक बात ठीक है, इतना विश्वास रखो।''[2]

विनोद ने फिर कहा अरे, आज शाम की डाक से तो वाँके बाबू यहीं आ रहे हैं 'ऐसी बात है।''-रमेश ने साधारण ढंग से कहा''[3] आदि प्रसंगों में वार्ता का स्वाभाविक एवं सुन्दर ढंग सें चित्रण हुआ है। कहीं कहीं पर पात्रों के द्वारा विचारों का अदान प्रदान हुआ है जिनके द्वारा पात्रों की विचारधारा उपन्यास में दिखाई पड़ती है- 'प्रेम,। सरोज। दुनिया में प्रेम है कहाॅ? जो कुछ है वह पैसा है। पैसा सब कुछ खरीद सकता है-मनुष्य की आत्मा तक''[4] यहाँ पर रमेश के आहत मन के द्वारा यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की मानवीयता खत्म हो चुकी है, उसके हृदय में सिर्फ दिखावे के सिवा कुछ नहीं है। अजित और प्रभा का स्त्री की समानता पर वार्तालाप स्त्री और पुरूष दोनों ही संसृति के आवश्यक अंग है। दोनों को एक साथ रहना है। एक साथ रहने के लिए आवश्यक यह है कि एक स्वामी हो और दूसरा गुलाम हो।'' प्रभा ने कहा ''मिस्टर अजित क्या आप समझते है कि स्त्रियों को समानाधिकार न दिया जाना चाहिए?''[5]

---

[1] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-192
[2] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-85
[3] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-168
[4] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-168
[5] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-86, 87

शिल्प की दृष्टि से 'तीन वर्ष' में लघु कथोपकथन का विशेष महत्व है जो कि अजितकुमार और रमेश के कथोपकथन छोटे छोटे होने के साथ-साथ पात्रों के चरित्र को भी उद्घाटित करते है- "रमेश ने चाय पीते हुए केक की तश्तरी की तरफ इशारा करके पूछा-"यह क्या है।?"

"मिठाई हिन्दुस्तानी नहीं, बल्कि अग्रेजी मिठाई। लेकिन मुझे बड़ी अच्छी लगती है' रमेश ने पूछा यह किसने बनाई?"

मेरे कुक ने।"

रमेश ने केक खाना आरम्भ किया-"अच्छी बनी है, इसे क्या कहते हैं?"

"इसे केक कहते हैं।"[1]

अत वर्मा जी ने पात्रों के द्वारा सरल सीधी भाषा में मार्मिक, व्यंजनात्मक वार्तालाप प्रभावशाली ढंग से व्यक्तित्व निखारता हे।

वर्मा जी के उपन्यास साहित्य में सर्वप्रथम तीन वर्ष, उपन्यास में प्रतीकात्मक कथोपकथन का प्रयोग मिलता है। प्रभा की वर्षगांठ के अवसर पर कुवर अजित कुमार में जो शिकार की कहानी सुनायी, तो वहाँ एकत्रित सर कृष्ण सहित सभी प्रशंसा कर बैठ्ते हैं। लीला विशाल तो उसकी ओर आकर्षित ही हो जाती है। इस प्रसंग में अविनाश अजित से कहता हैं "कुंवर साहब! आप बड़े शिकारी मालुम होते है।" अविनाश ने लीला की बात सुन ली। उसने अजीत से कहा-"कुवर साहब! आप बड़े कुशल शिकारी मालुम होते हैं।"

'फिर एका एक लीला कह उठी-"अविनाश बाबू! अभी आप को दुनियाॅ मे बहुत कुछ सीखना पड़ेगा।"

अविनाश ने कहा -"सिखलाने वाले को ही तो ढूंढ़ रहा हूँ लीला जी।" अजित मुस्कराया-" .पहला सबक मैं आपको यह पढाउ कि आप में काफी अधिक मैग्नेटिज्म है, पर आपको अपने उस मैग्नेटिज्म का पता नहीं और इसीलिए आप उसका प्रयोग नहीं करते।"

---

[1] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-22

बात पूरी करूगा स्त्री पुरूष में पुरूषत्व देखती है, साथ ही वह धन और वैभव भी देखती है आप में दोनों है आप इनका प्रयोग करें। इसके बाद आप अपनी उँगलियो के इशारे पर एक से एक सुन्दरी स्त्रियों को नचा सकेंगे।''[1] यहाँ पर साकेतिक प्रतीक योजना सोद्देश्यता से परिपूर्ण होकर व्यजनात्मक भी है।

वर्मा जी के 'तीन वर्ष में' औपन्यासिक शिल्प विकास के साथ-साथ उनके स्थानगत चित्रणो में स्वाभाविकता और सजीवता पायी जाती है। अजित के कमरे की शोभा का वर्णन-''जिस कमरे में इन दोनों ने प्रवेश किया, वह चौकोर या और काफी बड़ा था। द्वार पर एक तार का पायदान पडा था। कमरे में एक दरी बिछी थी, जो कमरे की नाप की थी। एक में स्विटजरलैण्ड के आल्पत पहाड़ों का चित्रण और दूसरे में कश्मीर के हिमालय का। इसके अलावा और भी कई फोटोग्राफ टँगे हुए थे। अजन्ता के चित्रों के ढंग पर थे।''[2]

'रेखा' उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक संवादों का प्रयोग तो मिलता ही है, रेखा और प्रभाशंकर के संवादों से-मैं बूढा हो रहा हूँ। इधर मेरी तन्दुरूस्ती भी कुछ गिर गयी है। और जहाँ तक तुम्हारा सम्बन्ध है, तुम्हारी जवानी प्रस्फुटित हो रही है तो इसमे न उसका कोई दोष है और न तुम्हारा। दोष केवल मेरा है जो मैंने तुमसे विवाह किया।[3] रेखा और योगेन्द्र नाथ मिश्र के वार्तालाप-''तुम प्रोफेसर से प्रेम नहीं करतीं। उनके प्रति तुम्हारे अन्दर एक ममता की भावना है, तुम्हारी आत्मा पर उसकी आत्मा छायी हुई है। लेकिन प्रेम यह तो नहीं है।'' ''रेखा . . ''मुझसे घृणा न करो डाक्टर! मै बड़ी कमजोर हूँ बहुत अधिक कमजोर हूँ और उससे भी अधिक अभागी हूँ''[4] 'रेखा' उपन्यास के संवादों मै मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव उसके चरित्रों पर पड़ा है।

---

[1] तीन वर्ष भगवती चरण वर्मा, पेज-64, 66
[2] तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-19, 20
[3] रेखा, भगवती चरण वर्मा पेज-
[4] रेखावती चरण वर्मा, पेज-117, 118

सवाद लघुता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। कुछ संवादों में पात्र के द्वारा भावनात्मक सवादों को रोक कर पात्र बनावटी ढग से सवाद करते हैं तथा कभी-कमी सामान्य अर्थ के भाव को भिन्न अर्थ में सवाद करते है जो 'रेखा' उपन्यास में जगह-जगह दृष्टिगत होता है।

औपन्यासिक शिल्प के विकासगत होने के पश्चात 'रेखा' उपन्यास में रेखा के अचेतनावस्था के प्रलाप स्वभाविक नहीं जान पड़ते हैं जो शिल्प की दृष्टि से तो ठीक हैं परन्तु जिनसे उपन्यास में अस्वाभाविकता दिखाई पड़ने लगती है।

शैली की दृष्टि से 'रेखा' उपन्यास में काव्यात्मक तथा सरस शैली का प्रयोग अभिव्यंजना की अद्‌भुत क्षमता दिखाई पड़ी है-शारीरिक भूख मिटाने की लालसा मे रेखा डॉक्टर योगेन्द्र नाथ से कहती है। " मुझे तुम अपने सहारे से वचित न करो, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ" और डाक्टर उसकी मनोकामना को पूर्ण करता है। इस घटना पर उपन्यासकार की व्यंजनात्मक टिप्पणी कितनी सशक्त है और 'घटित' को अन्धकार में रखते हुए भी बड़ी शालीनता से प्रकाशित कर देता है-'इस सहारे का क्या रूप है? जीवन का कठोर सत्य क्या है? इसे आज तक कोई नहीं जान सका रात। घिरती आ रही थी, लेकिन योगेन्द्र नाथ के कमरे में अन्धकार छाया हुआ था, और प्रकाश पाने के लिए दो प्राणी उस अन्धकार में डूबते जा रहे थे।"[1]

अलंकृत शैली का भी प्रयोंग भाषा की श्रृंगारिकता को बनाये रखने के लिए हुआ है-'रेखा को जैसे बिजली का धक्का लग गया हो।"[2] इस उदाहरण को देखने से यह लगता है कि भगवती चरण वर्मा जी ने आलंकारिक शैली का भी प्रयोग किया है। तथा इस उपन्यास में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के भाव, प्रलाप शैली का भी चित्रण किया गया है। तथा दृश्यात्मक चित्रण-'उस समय सूर्य क्षितिज पर उठने लगा था। सारे वातावरण में एक प्रकार का उल्लास भरा हुआ था। लोकर माल अब दोनो कथोपकथन एवं संवाद की दृष्टि से भूले विसरे चित्र, में सामान्य जन-जीवन मे नर-नारी परस्पर वार्तालाप में स्थूल से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म

---

[1] रेखा भगवंती चरण वर्मा, पेज-128
[2] रेखा भगवती चरण वर्मा, पेज-128

मनोभावो को अभिव्यक्त किया गया है। जैसे'–छिनकी एवं यमुना का संवाद–हाँ रानी जी, हम कहानी गढ़ित हन। तुम्हारी जिठानी की आधसेर की हसली और सवा सेर के पैरन के कड़ा जो अबहीं–अवहीं सुनार के इहाँते गढि के आये हैं

''हाय जुड़ती हन छिनकी चाची हमरी बात का बुरा न मानो! हमारी बात का बुरा न मानो![1] इन दोनों के सूक्ष्म मनोभावों के कानाफूँसी शिकायती संवाद को प्रदर्शित किया गया है।

प्रभुदयाल और ज्वाला प्रसाद के संवाद–''नायब साहेब, आज मैं बरजोर सिंह की खुदकास्त का दाखिल खारिज कराके शिवपुरा वापस जा रहा था ''
''क्या आप को इसका पता नहीं? क्या करूँ, उसके डर से उसकी जमीन पर कोई बोली बोलने को तैयार न था, तो जबरदस्ती मुझे बोली बोलनी पड़ी।'' इसमें कथानक सहज स्वाभाविक गति प्रदान करता है।

ज्वाला प्रसाद ने कहा ''भीखू यह तुम्हारी जन्मभर की कमाई है; इसे हम नहीं ले सकते।'

भीखू बओला, ''हमे अपने से अलग काहे समझत हौ भइया? हमारा कौन खानदान–कुनबा आय?[2] इस संवाद से भीखू की ज्वाला के परिवार के प्रति अपने की आत्मीयता उसके रोयें रोयें में समा गयी दिखती है।

कहीं–कहीं इस उपन्यास में लेखक ने पात्रों के द्वारा संवादों में नाट्कीयता और व्यंग्यात्मक कथोपकथन का सहारा लिया है–मीर साहब सोमेश्वर दत्त से कहते है, ''पंडित जी जरा होस की दवा कीजिए। ये धोती परसाद दुनियाँ फतह करेंगे? मसे के पहले जो चींटी के पर निकलते हैं, ठीक उसी तरह हिन्दू धर्म में यह आरिया समाज पैदा हुआ है।''[3]

भीर साहेब ''डेविड साहेब, लहजे से अभी थोड़ा बहुत देहलीपन बाकी है, कुछ थोड़ी सी मश्क करनी पडेगी, तब कहीं ऐग्लों इण्डियन का मुकाबला कर पाओगे।''[4] इन वार्तालापों से पात्र अपने सिद्धान्तों की घोषणा करते है तथा पात्रों

---

[1] रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज–128
[2] रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज–128
[3] भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज–167
[4] भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज–162

की चरित्रिक विशेषताए भी उभर कर सामने आ जाती है इस प्रकार के कथोपकथन का 'भूले बिसरे चित्र' में प्रयोग मिलता है।

देशकाल तथा वातावरण की दृष्टि से 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में सन् 1930 ई0 तक के सामाजिक, पारिवारिक विघटन, सांम्प्रदायिक झगड़ों, स्वदेशी आन्दोलनो का चित्र बड़ी ही बारीकी से खींचा है।

उपन्यास में चित्रित पात्रों की गतिविधियों सशक्त एवं जीवन्त मालूम पड़ती हैं पाठ्क स्वानुभूति करने लगता है असहयोग आन्दोलन में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गयी थी, इसकी एक छोटी से झलक इस उपन्यास में मिलती है।

'भूले बिसरे चित्र' का शिल्प पहले के उपन्यासों से अलग हट्कर है। इसमें लेखक ने साहित्य के अन्य औजारों का सहारा लिया है। ज्वाला प्रसाद का पुत्र गंगा प्रसाद मेघ गर्जन एवं तड़ित से धिरे जमाने में डिप्टी कलक्टरी अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ करता है। बाहर उसे राजनीतिक एवं सामाजिक विषमताओं का सामना करना पड़ता है। और अन्तस्तल में छिन्न भिन्न होती हुई नैतिक मान्यताओं तथा अनियन्त्रित भोग लिप्साओं का जिसमें आकण्ठ डूबा रहता है। लेकिन समय समय पर अपना रास्ता साफ भी कर लेता है; फिर भी मानों संघर्षो से टूट कर चिर निद्रा में लीन हो जाता है। उसका पुत्र प्रयाग विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त कर महात्मागांधी की डान्डी यात्रा के पग चिन्हों पर नमक कानून विरोधी जुलूस का नेतृत्व करता है। जहाँ तक दृष्टि जाती है, यह शोभा यात्रा अपनी रंग-बिरगी छटा द्वारा असंख्य भावनाओं को आमंत्रित करने वाले अगणित स्वरो को अदृश्य की श्रृंखलामें बाँधे निरन्तर अग्रसर प्रतीत होती है।'

शैली की दृष्टि से इस उपन्यास में वर्मा जी ने उद्धरणात्मक शैली के द्वारा वातावरण को व्यक्त किया है। अथवा पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला है तथा व्यंग्यात्मक शैली के द्वारा पात्रों के एक दूसरे पर प्रहार संवादों के द्वारा कराते हुए दिखते हैं-पं0 सोमेश्वर दत्त, "यह जो मीर साहब आ रहे हैं न, इनके बालिद लम्बी दाढ़ी रखते थे, हमेशा अवा पहनते थे, उनके हाथ में हर समय तसवीह रहा करती थी। और इन्हें देखिये कोट, जाँघिया पहने हुए, दाढ़ी

घुटी हुई, मूँछ इस कदर ऐंठी हुई कि देखने वाला उनके खौफ से भाग खड़ा हो। चुरमुट मुँह में दबा हुआ।''

डाक्टर किशोरी रमण आवनूस आप से मात खा जायेगा डेविड साहेब। लेकिन मैं हूँ सर्जन, कितनी भी तहें इस काले रंग की हों, आप की चमड़ी का असल गोरा रंग मुझे साफ-साफ दिख रहा है।''[1] उपन्यास का प्रस्तुतीकर शिल्प इसता सशक्त है कि उसमें स्वाभाविक रूप से स्वत व्यग्यात्मक क्षमता आ गयी है।

मीर जाफर अली बरेली में डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस थे और किसी हद तक मुक कहे जा सकते थे-लम्बे, गठे बदन के आदमी, रंग गुहुँए से कुछ खुला हुआ।''

मिस्टर जोनाथन डेविड काले से, नाटे से और किसी कदर दुबले-पतले आदमी थे। उनकी अवस्था प्राप्रय· चालीस वर्ष की थी।''[2] इन प्रसंगों में चित्रात्मक तथा नाट्कीयता शैली का वित्रण हुआ है।

भाषा की दृष्टि से 'भूले बिसरे चित्र' में पात्रों के संवादों में पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है जो सहज एवं स्वाभाविक भी लगता है। जिससे पाठ्क के मानस पटल पर एक स्वाभाविक चित्र सजीव हो उठ्ता है। जिसमें अंग्रेजी, अवधी, उर्दू, फारसी के शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है-

''सवाल खानी होने वाली है ठाकुर।''[3] मुहावरे का प्रयोग दिखता है। बुजदिल किस्म के आदमी।'' अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग- हलो डाक्टर, आज ब्रिज नहीं जायेगा ?''[4] डिप्टीसुपरिन्टेन्डेन्ट सेकेन्ड डिवीजन, रिप्रेजेण्टेशन, एंग्लोइंडियन,

अरबी फारसी के शब्दों का भी प्रयोग-लफ्ज, हुजूर, गरीबपरवर, बरखुरदार, खुशामद, तहवीज आदि शब्दों का प्रयोग भाषा के तौर पर प्रयोग किया गया है।

---

[1] भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-172
[2] भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-171
[3] भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-165
[4] भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-161 164

क्षत्रीय बोलियों का भी प्रयोग जो मध्यवर्ती क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली का पात्रों के अनुकूल हो गयी है। जो अवधी का एक रूप है जो घसीटे, छिनकी, भीखू, तथा मुंशी शिवलाल के घर की सभी स्त्रियाँ इसी बोली में बात करके दिखाई दिये हे-छिनकी बोली-तो ज्वाला अकेला जाय रहा है? अकेले ही जात हुई हैं हमें कुछ बतउबो तो नाहीं है। फिर आयुस माँ बात करैं की फुरसतौ कहाँ मिलत है, दिन रात दावत-तवाजा लगे हुए हैं।'' इतना डराय से काम न चली बहुरिया।''[1]खड़ी बोली का प्रयोग तो अन्य भाषाओं के साथ मिलकर यथा प्रसंगो मे समाहित हो गया हैं तथा लोक भाषा का प्रयोग ग्रामीण पात्रों में स्वभाविक रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

इस प्रकार से 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से कथानक, पात्रों कथोपकथन एवं भाषा की दृष्टि से सहज स्वाभाविकता को दर्शाता हे, हालाँकि कहीं-कहीं वातावरण की बोझिलता या पात्रों के भाषागत व्यवहार में त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ी है फिर भी यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

कथोपकथन में पात्रों के वार्तालाप के समय उचित समय पर भावों को व्यंग्य के माध्यम से भी व्यक्ति किया जाता है इस प्रकार के कथोपकथन वर्मा जी के उपन्यास 'टेढे मेढे रास्ते' में दिखाई पड़ते है जिसमें दया नाथ रामनाथ तिवारी पर व्यंग्य प्रहार करता हैं जिससे वह तिलमिला उठ्ते हैं। मार्कण्डेय मिज कम्युनिस्टों के ऊपर जो फफकी कसता है, उससे उमानाथ निरूत्तर हो जाता है। दयानाथ, विदेश से लौटे पाश्चात्य संस्कृति के अनुचर अपने भाई को सजग करते हुए कहता हे-''देख रहा हूँ विलायत से तुम विलायत की सभ्यता संस्कृति और विचारधारा भी साथ लाये हो। तीन साल के अन्दर ही तुमने अपनी सारी हिन्दुस्तानियत निकाल फेकी।''[2] इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में व्यंग्यात्मक कथोपकथन का प्रयोग हुआ है। ''सामर्थ्य और सीमा'' में रानी मान कुमारी पूँजीपति रतनचन्द मकोला पर व्यंग्य करती है और मकोला सामंतवाद पर व्यंग्य करता है। ये दोनों व्यंग्य एक दूसरे के यथार्थ स्वरूप और अस्तित्व को प्रदर्शित

---

[1] भूले विसरे चित्र भगवती चरण वर्मा, पेज-20, 23, 78, 284

[2] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज-118

कर देते हैं। इसके अतिरिक्त ''अपने खिलौने'' में भी व्यंग्यात्मक कथोपकथन दिखाई पडते हैं।

इसके अतिरिक्त चरित्र व्यजक कथोपकथन भी होते हैं इसमें कथोपकथन का समावेश पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए हुआ करता हैं। वार्तालाप के माध्यम से पात्र अपने सिद्धान्तों की घोषणा करते हैं। इसके अतिरिक्त वक्तागण अपनी चरित्रिक विशेषताओं का उल्लेख ही नहीं करते, बल्कि उनके कथन में मानसिक स्तर का परिचय प्राप्त होता हैं इस प्रकार कथोपकथनों द्वारा वर्मा जी ने ''टेढेमेढे रास्ते'' उपन्यास में शिल्पगत सौष्ठव का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के कथोपकथन 'सीधी सच्ची बाते, 'प्रश्न और मरीचिका; 'सबहि नचावत राम गुसाई' तथा 'सामर्थ्य और सीमा' में भी दिखाई पड़ते हैं।

'अपने खिलौने' में वक्ता का चरित्र जो द्वितीय प्रकार का है। स्वत. प्रकाशित हो जाता है। 'प्रश्न और मरीचिका' में उदयराज उपाध्याय सुरैया से प्रेम करता है, परन्तु विवाह के बिना वह उससे स्त्री, पुरूष वाला सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है। यद्यपि सोफी कार्डनर की काम-वासना में पड़कर वह अपने कोष रोक नहीं पाता, तथापि सोफी जिस उददे्श्य से उदयराज से घनिष्ठता स्थापित करती है, हल नहीं होता है। सुरैया और उदयराज की वार्तालाप में महानता है और उदयराज सुरैया के प्रति कल्याण-भावना है आलोचनात्मक कथोपकथन द्वारा स्वाभाविक चरित्राभिव्यंजना होती है।

कथोपकथन को शिल्प की दुर्बलता के लिहाज से वर्मा जी के उपन्यासों मे भी देखा जा सकता है। शिल्प की दृष्टि से वार्तालाप, विशेष रूप से नहीं लटकना चाहिए। वार्तालाप अस्वाभाविक न प्रतीत हों। यदि वार्तालाप पात्र के समस्तर का न हो, तथा वह उपन्यासकार के स्वर और सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करे तो यह उसी दुर्बलता ही मानी जायेगी।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में अधिकतर पात्रों के वार्तालाप स्वाभाविक ही है। परन्तु उन्हें जहाँ कहीं भी अपने सिद्धान्तों को रख्ना या उसे पात्रों के द्वारा कहलवा देते हें जो कि इस दोष से मुक्त नहीं कर पाये। इस तरह के कथोपकथन ''सामर्थ्य और सीमा'' 'आखिरी दाँव' के कतिपय स्थलों से प्राप्त

होता है। जो कि पात्रों के अन्तर्मन के नहीं लगते हैं बल्कि ऐसा लगकता है कि उनसे कहलवाये गये हैं। 'अपने खिलौने उपन्यास में जय देव भारती ज्ञानेश्वरी देवी और मीना के कथोपकथन, माता पिता, पुत्री के आदर्शो से दूर है उनमें कोई स्वाभाविकता नहीं दिखाई देती है।

कथोपकथन में लम्बे लम्बे वाद-विवाद मूलक वार्तालाप तथा उपदेशात्मक भाषण उपन्यास के कथानक की गति में बाधा पहुंचाते है जिससे पाठ्क गण कथा के रस का मजा अच्छी तरह से चख नहीं पाता हें वर्मा जी कभी ऐसे कथनों से मोहसंवरण नहीं कर सके हैं उपन्यासों के कथोपकथन में नीति शास्त्र समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, दर्शन शास्त्र इतिहास के विषयों को डाक कर उपन्यास के संवाद भाषण में शिल्पगत दुरूहता उत्पन्न हो गयी है। वर्मा जी इस प्रकार के दोष से बच नहीं पाये है। 'टेढ़े मेढे रास्ते', 'सीधी सच्ची बातें', 'सामर्थ्य और सीमा', 'प्रश्न और मरीचिका', तथा 'सबहि नचावत राम गुसाई' में लम्बे लम्बें सवादों भाषणों का दोष दिखाई पडता हैं लेकिन शिल्पगत दृष्टि से इसके बावजूद भी उत्तम हैं।

भतवती चरण वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में कथानक, चरित्र-चित्रण और कथोपकथन की भॉति परिप्रेक्ष्य शिल्प का भी प्रयोग किया हैं जिससे पात्रों के चरित्र को यथार्थ और जीवत रूप प्रदान करने के लिए इसका प्रयोग किया है। परिप्रेक्ष्य चित्रण के माध्यम से उपन्यासकार, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, स्थानगत सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि दृश्यों को रूपायित करते हुए देशकाल और वातावरण की जीवत झॉकी प्रस्तुत की है।

हम ये देख सकते हैं कि 'टेढे मेढे रास्ते' उपन्यास में सन् 1930 के आप-पास की ढुलमुल राजनीति और तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराओं में गांधीवादी, समाजवाद और आतंकवाद और सामन्तवाद को परिवारिक पृष्ठभूमि में चित्रित किया गया है। सामंतवादी परिवार में पिता का आधिपत्य था। इसमें शोषण तथा अराजकता का विशद चित्र उपलब्ध होता है। अंग्रेज अधिकारी वर्ग तथा सामन्त वर्ग शोषण का जाल जनता पर फैलाये हुए है। जिसमें जमीदारों के आतंक अत्याचार से कोढ़ में खाजवाली कहावत चरितार्थ कर रहे थे। भारतीय

स्वतत्रता की राजनीति में जमींदार सबसे ज्यादा बाधक थे जिसके ज्वलंत उदाहरण रामनाथ तिवारी थे।

'सीधी सच्ची बातें' उपन्यास में सन् 1939 ई0 के त्रिपुरी अधिवेशन से लेकर 31 जनवरी सन् 1948 ई0 के गाँधी हत्याकाण्ड तक का देशकाल वर्णनात्मक एव सवादात्मक शैली में प्रस्तुत हुआ है। इस दृष्टि से इसका शिल्प बडा ही उत्तम बन पडा है। इसमें उस समय का चित्र है जिस समय राष्ट्रीय आन्दोलन, सत्याग्रह हड़ताल तथा दमनात्मक कार्यवाई आदि का चित्रण प्रसंगानुकूल हुआ है। पात्र राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति है। इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलन में खुलकर भाग लेते हैं।

क्रागेस के नाम पर अंगनू शाह द्वारा जमील की फूफी का मकान हड़पना और महाजनों, कानूनगों, पटवारी, पुलिस, गुण्डो, आदि के अत्याचार को लेखक देश का राजनीतिक पर्दा उलटकर गांधी और सुभाष का मनोमालिन्य दिखाता है। नेहरू ने सुभाष का साथ छोड़कर गाधी का अनुयायी बनना तरूण शक्ति की उपेक्षा का द्योतक है। नेहरू, पटेल ने राष्ट्रीय चेतना को पूँजीपतियों के हाथों बेचकर देश के साथ खिलवाड़ किया। तथा नेहरू छद्म व्यक्तिव को उजागर करना युगीन वातावरण की छाया अंकित करना।

'प्रश्न और मरीचिका', में 14 अगस्त 1947 की अर्द्धरात्रि से प्रारम्भ होकर चीनी युद्ध तक का देश काल का चित्र खीचा गया हें देशकाल के यथार्थ चित्रण को लेखक ने तीन आम चुनाओं जो स्वतंत्रयोत्तर भारत में हुए तथा साथ में गोवा विजय का भी चित्रण किया है। इसी उपन्यास में गांधी की हत्या के बाद काग्रेसी नेताओ ने गांधी की पवित्र नीतिओं एवं आदर्शो की भी हत्या कर दी। विस्थापित समस्या का चित्रण कर तत्कालीन युगीन चित्र को भी बीच दिया।

स्वतंत्रयोत्तर भारत में हो रहे पूँजीवादी शोषण के नगनाच का चित्र प्रस्तुत कर वर्तमान भारत के गतिविधियों 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'सबहि नचावत राम गुसाई' द्वारा देश काल की यथातथ्य प्रतिछवि अंकित कर दी है।

भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में कही–कहीं प्रकृति का यथातथ्य चित्रण मिलता है जैसे "सामर्थ्य और सीमा के इस प्रसंग में देखा जा सकता है–"शाम अब ढलने लगी थी और गाड़ी तीव्रगति से सुमनपुर की ओर बढ रही थी। टेढेमेढी सड़क, साप की तरह रेंगती हुई उस जगल में दिख रही थी, दोनों ओर एक दूसरे से गुथे हुए लम्बे और घने पेड़, उसके बाद लम्बी घास या छोटे–मोटे काटेंदार जंगली पेड़ जहाँ आदमी घुसने का साहस नहीं कर सकता था।"[1]

मनसा नदी पार करने के बाद जगल फिर धना हे गया था। जमीन समतल हो गयी थी, लेकिन स्थान–स्थान पर पथरीली भूमि के टुकड़े मिल जाते थे। सूर्य डूब गया था और जंगल के अन्दर मानो अन्धकार उमड़ता आ रहा था।"[2]

इन प्रसंगों के द्वारा प्रकृति के सूक्ष्म एव सजीव चित्रण जीवंत हो उठे हैं।

संवेदनात्मक एवं वैषम्पपूर्ण प्रकृति चित्र 'सामर्थ्य और सीमा के मेजर नाहर सिह और देवलकर दोनों में एक को प्रकृति की अलौकिक छवि देख कर भयानुभूति होती है दूसरे को उल्लास होता है।

'सामर्थ्य और सीमा' में आलकारिक वर्णनों द्वारा प्रसंगानुकूल वातावरण की अभिव्यक्ति हुई है–"उस समय मानों जंगल प्राणवान होकर जाग पड़ा था। अजीब–अजीब भयावनी लगने वाली आवाजे उठ रही थी चारो ओर। दूर पर शेर दहाड रहे थे, टि्हरी कर्कश स्वर में बोल रही थी। कहीं जानवर भाग रहे थे, कहीं एक तरह की सरसराहट हो रही थी"

"रातभर वर्षा हो रही, साधारण वर्षा नहीं, जैसी बरसात की वर्षा होती है। जब प्यारी धरती अमृत–बिन्दु के समान पड़ती हुई बूदों को पीकर अपने अन्दर वाले सौरभ की वायु में विखेर कर अपनी तृप्ति और अपने उल्लास का प्रदर्शन करती है, जब पशु पक्षी मनुष्य भी दुलक कर गा उठते हैं और उत्सव मनाने निकल पड़ते हैं।" इस प्रसंग से यह अभास होता है कि लेखक काव्यात्मकता को भी अपनाया है। प्रकृति चित्रण में लगता है कि लेखक का कवि हृदय बोल उठता है।

---

[1] सामथर्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज–45
[2] सामथर्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज–47

वर्मा जी के उपन्यासो के देश काल तथा वातावरण के चित्रणों में स्वभाविकता और सजीवता पायी जाती है। जिसमें नदी, नगर, पर्वत आदि का आवश्यकतानुसार चित्रण किया गया है। जिसमें की 'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास का दृश्य देखा जा सकता है-"सुमनपुर से प्राय पैतीस मील की दूरी पर हिमालय पर्वत मालाओं के ठीक यशनगर की समतल भूमि प्राकृतिक नियमों के अपवाद के रूप में स्थिर थी। पूर्व से पश्चिम तक प्राय दशमील का फैला हुआ मैदान मानो हिमालय के तल तक छूता चला आया हो। दक्षिण से कहीं पत्थर का नाम निशान नहीं उस भूखण्ड में । शीशम, बरगद, आम इमली, कटहल आदि के धने और ऊँचे वृक्षो से लदी हुई भूमि, ऐसा लगता था कि स्वर्ण का एक टुकड़ा काट कर हिमालय के चरणों पर रख दिया हो। उधर में ऊँचें पर्वतों की पंक्ति पूर्व और पश्चिम में पथरीले और बंजर टीले और दक्षिण में सधन जगल। पशनगर मानव द्वारा निर्मित एक सुन्दर उद्यान की भाँति दिख रहा था।"[1]

प्रत्येक उपन्यास का अपना एक वातावरण होता है जो पात्र की गतिविधियों के द्वारा जीवंत होता है। वातावरण द्वारा उपन्यासकार कथा में रोचकता पैदा करता है। औपन्यासिक कृतियों में कथा-रस पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं से प्राप्त होता है। उपन्यास में जिस भाव एवं रस की प्रधानता होती है, उसके अनुसार वातावरण स्वयमेव निर्मित हो जाता है। देश काल चित्रण द्वारा वातावरण का बोध होता है। प्रत्यके उपन्यास का अपना एक विशिष्ट वातावरण होता है। वर्मा जी के 'आखिरी दॉव' में फिल्मी जीवन के कामुक्तापूर्ण वातावरण की सुन्दर अभिव्यजना हुई है। 'अपने खिलौने' में उच्च वर्गीय परिवारिक पृष्टभूमि में लखनऊ और बनारस के सांस्कृति वातावरण का तुलनात्मक दूश्य प्रस्तुत किया गया है।

'टेढे मेढ़े रास्ते' उपन्यास में वीरत्वपूर्ण एवं साहसी कार्यो के वातावरण की छवि प्राप्त हुई है। 'सीधी-सच्ची बातें'- में श्रृंखला मूलक, हास परिहास युक्त राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत तथा साम्प्रदायिकता की विभीषिका का वातावरण दृष्टिगत होता है। 'प्रश्न और मरीचिका' मे करूण और रोमांटिक भोग विलास-

---

[1] सामथर्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज-279

और आर्दशहीन वातावरण की छवि दृष्टिगत होती है। वातावरण को सफल ढंग से प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार ने प्रकृति का खूब सहारा लिया है। 'सामर्थ्य और सीमा' में सामाजिक एवं राजनीतिक उभार को प्राकृतिक वातावरण में प्रस्तुत किया गया है तथा रोमास की छटा भी प्रकृति के माध्यम से ही हुई है। जिससे युगबोध की अभिव्यंजना प्राप्त होती है।

'प्रश्न और मरीचिका' के-दूसरे खण्ड की कथा में "मैं" (उदयराज) अमेरिका से वापस लौटता है, जहाॅ के एक पत्रकार राबर्टस को पीट देता है, जिससे उसे हिन्दुस्तान आना पड़ता हैं यहाॅ पर कहानी 'मैं' के द्वारा ही कही जाती है।

तीसरे खण्ड की कथा में उदयराज, नेहरू जी के साथ सन् 54 की ऐतिहासिक यात्रा से वापस आकर कम्युनिष्ट चीन और भारतीय सम्बन्धों की कथा कहता है। चौथे भाग की कथा फिर 'मैं' उदयराज के बम्बई परिचितों के बीच पहुंच जाती है जिसमें सन् 60 से लेकर 62 तक के चीनी आक्रमण का चित्रण करने के बाद कथानक समाप्त होता है।

जब दार्शनिक उहापोह में उदय सोचता है-'यह सब क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है? मेरे पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं।'[1] इस कौतुहल, निराशा एवं कुण्ठा से मुक्ति पाने के लिए वह शराब का सहारा लेता है। "मैं उठ्ता हूँ आलमारी से व्हिस्की की बोतल निकालकर एक बडा पेग तैयार करता हूँ और चुपचाप बैठ्कर पीने लगता हूँ"।[2] इस प्रसंग से हताशा एवं कुण्ठा की समस्या को अभिव्यक्त किया गया हैं।

'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास की समग्र कथा 'मैं' उदयराज उपाध्याय की पारिवारिक पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होकर उसके अतीत और वर्तमान के छोरों को मिलाते हुए देश के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन के वृहदाकार क्षेत्र में फैल जाती है। इसके साथ जीवन के तमाम उतार चढाव के साथ देश की उन्नति अवनति का चित्र खीचते हुए "मै" अपनी कथा

---

[1] प्रश्न और मारीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-548
[2] प्रश्न और मारीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-554

फिर अपनी ही पारिवारिक सीमा में ले जा कर समाप्त कर देता हूँ। हिन्दी औपन्यासिक जगत में आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया इतना वृहद सफल उपन्यास दूसरा कोई नहीं है। प्रश्न और मरीचिका में नई कल्पना, युग का सजीव चित्रण, अभिनव शैली और मौलिक प्रस्तुतीकरण शिल्प, औपन्यासिक जगत मे नया सफल प्रयोग प्रस्तुत करती है।

उपन्यास में एक प्रकार की और शैली का प्रयोग किया जाता है जो जीवनी शैली प्रकार का होता है। उपन्यासकार अपनी रचना में नायक की काल्पनिक जीवनी प्रस्तुत करता है। इसलिए जीवनी शैली के उपन्यासों मे वह या नायक की कथा विविध बिन्दुओं तथा दृष्टिकोणों से प्रस्तुत नहीं होती, बल्कि उसके चरित्र का उद्घाटन भी विभिन्न दृष्टियों से होता है। भगवती चरण वर्मा के अधिकांश क्रम में प्रारम्भ, विकास, चर्मोत्कर्ष और सामप्ति द्वारा हमेशा अभिनव प्रयोग करता है। इसमें लेखक को वहीं सुविधा प्राप्त हो गयी है, जो एक जीवनी उपन्यासकार को प्राप्त होती है। जिसमें प्रसंग -वश विश्लेषण और विवेचन करता हुआ दिखाई पडता हैं उपन्यास के प्रथम खण्ड की कथा में "मैं"-उदयराज उपाध्याय 14 अगस्त, 1947 को बम्बई से दिल्ली अपने पिता जयराज उपाध्याय, ज्वाइट सेक्रेटरी भारत सरकार के पास एक फिस्टन कालेज से बी0ए0 पास करने के बाद अच्छी नौकरी प्रारम्भ करने के उद्देश्य से आता है। वह दिल्ली स्टेशन के निकट ही एक सस्ते होटल में ठहरता है और होटल मालिक विस्थापित मेलाराम है। वह शरणार्थी समस्या और स्वतंत्रता प्राप्ति पर व्यंग्य करता है।

यहाँ "मैं" जीवनी उपन्यास के किसी पात्र की भाँति होता है वर्मा जी के "प्रश्न और मरीचिका" इसी कोटि का है। इसमें "मैं" (उदयराज उपाध्याय) अपनी जीवन कथा कहता है और यह "मै" लेखक का अपना है, जेसा कि उसने स्वयं स्वीकार किया है। "मैं इतिहास नहीं लिख रहा हूँ, मैं अपनी कहानी कह रहा हूँ। लेकिन करूँ क्या? मेरी इस कहानी में इतिहास के सभी तथ्य मौजूद हैं जीवन के अनगिनत उतार-चढ़ाव, मनुष्य की आशा, कुण्ठा और निराशा, निर्माण और विनाश। सभी कुछ तो है मेरी इस कहानी में। लेकिन युग का लेखा-जोखा नहीं

कर रहा, क्या उचित है और क्या अनुचित है? इसका मूल्यांकन करने का मैं अपने को अधिकारी नहीं समझता और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैं तटस्थ भाव से चीजों को परख भी तो नहीं रहा हूँ, क्यों कि मैं स्वयं ही इस कहानी का अनिवार्य भाग हूँ, मैं केवल अपनी कहानी कह रहा हूँ, किसी की ज्ञान वृद्धि के लिए नहीं, केवल इस लिए कि मैं अपनी कहकर अपना मन हल्का कर लेना चाहता हूँ।[1] 'तथा इसी प्रथम खण्ड में ही "मैं" अपने विगत बम्बई जीवन की कथा, दूसरे दिन अपने पिता से मिलने अकबर रोड स्थित बंगले पर स्वतत्रता प्राप्ति के उपलक्ष में बधाई का कार्यक्रम। के उद्देश्य से जाता हूँ। इसी उपन्यास में सुरैया से प्रेम फिर प्रणय का टूट जाना, इस प्रकार की अभिव्यक्ति है-"सुरैया से मेरा वह प्रेम, मेरे प्रेम जीवन का पहला प्रेम था, जिसकी हत्या इस हिन्दू-मुस्लिम ने कर दी थी, मेरे प्रेम की ही क्यो, स्वयं गांधी की हत्या कर दी इस हिन्दू मुस्लिम समस्या ने।"[2]

परिप्रेक्ष्य चित्रण की दृष्टि से वर्मा जी के उपन्यासो में यथार्थ और विश्वसनीय चित्रण मिलता है। इसलिए वर्मा जी की औपन्यासिक कृतियों में 'भूले बिसरे चित्र', टेढे मेढ़े रास्ते', और 'सीधी सच्ची-बातें'- का देश काल, और प्रकृति का सजीव चित्रण अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। 'सामर्थ्य और सीमा' में प्रकृति चित्रण का अनूठा अंकन मिलता है।

साहित्यकार सौर्न्दय जीवी प्राणी हैं भगवती चरण वर्मा सौन्दर्य प्रिय प्रयोग वादी उपन्यासकार है। उनका स्पष्ट मत है, "क्या लिखा जाता है? कला इसमे नही है। कैसे लिखा जाता है? इसमें कला है। अत. कला का मूल आधार शैली है"।[3] इस प्रकार उनके उपन्यासों की प्रस्तुती करण विधि, जिसे हम शैली कहते हैं। वह नवीन मोलिक तथा विशिष्ट है। औपन्यासिक शैली में उपन्यासकार का व्यक्तित्व सदैव समाहित रहता है। शैली एक पद्धति है जिससे हम वस्तुओं को देखते है। शैली वस्तुत मौलिक अभिव्यक्ति है और विषय वस्तु का अंग भी है। शैली की विधिता-जीवन शैली, आत्मकथात्मक शैली तथा चित्रात्मक शैली

---

[1] प्रश्न और मारीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-468
[2] प्रश्न और मारीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-113
[3] साहित्य ओर मान्यताए, भगवती चरण वर्मा, पेज-548

लेखक या शैलीकार के व्यक्तित्व के अनुरूप हुआ करती है। उपन्यासकार अपने शब्द चित्रो को भावो को चित्रकार की भाति बहुरगी चित्रित करने के लिए वर्णनात्मक, चित्रात्मक, विश्लेषणात्मक, सांकेति अभिनयात्मक आदि शैलियों का प्रयोग विषय वस्तु के अनुरूप करता है।

वर्मा जी के उपन्यासों के शैली शिल्प का अध्ययन करते समय यह लगता है कि वह शैलीवादी कलाकार है। उनके कृतियों में इस प्रकार की परीक्षा की जा सकती हैं वर्मा जी अपने उपन्यासों के प्रचलित शिल्प में परिवर्तन परिशोधन और संशोधन कर अपने प्रयोगवादी व्यक्तित्व का परिचय दिया है 'टेढ़े-मेढे रास्ते' को पार कर अतीत के 'भूले-बसरे चित्र' देखने का उनका अपना दृष्टिकोंण रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप 'सीधी-सच्ची बातें' प्राप्त हुई और वह युगीन संघर्षो से टकराकर प्रश्न और मरीचिका में के भँवर में गोते लगाने लगी। वस्तुत वर्मा जी के औपन्यासिक शिल्प धारा धीरे-धीरे अबाध गति धारण की हुई है।

शिल्प की दृष्टि से वर्मा जी के आत्मकथात्मक उपन्यास 'प्रश्न और मरीचिका' को माना जाता है साथ ही साथ 'वह फिर नहीं आयी' भी है। ''प्रश्न और मरीचिका'' उपन्यास का कथानक चार भागों में विभक्त है जो अपने स्वाभाविक विकास में जीवनी शैली में किया गया है जिसमें आवश्यकतानुसार व्याख्यात्मक, अभिनयात्मक तथा चित्रात्मक शैलियों के प्रयोग द्वारा शिल्प-सौष्ठव की समृद्धि हुई है। भगवती चरण वर्मा के इस प्रकार के उपन्यासों को भी दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है प्रथम भाग में वे उपन्यास आते हैं, जिनमें तीन अथवा दो से अधिक पीढियों की कहानी कहीं है। तथा दूसरे भाग में वे उपन्यास आते हैं जो व्यक्ति के समग्र जीवन का चित्र चित्रित करते हैं। प्रथम भाग के उपन्यासों की श्रेणी में 'भूले बिसरे चित्र', 'टेढे मेढ़े रास्ते', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहि नचावत राम गोसाई', रेखा, आखिरी दाँव, आदि रचनाओं को रखा जा सकता है। इनके 'भूले बिसरे चित्र', 'टेढे मेढे रास्ते', 'सामर्थ्य और सीमा', सबहिं नचावत राम गोसाई', 'थके पाँव', अपने खिलौने आदि उपन्यास शिल्प की दृष्टि से उत्तम हैं।

'टेढे मेढे रास्ते' के रामनाथ तिवारी के तीनों पुत्रों के अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए युग चेतना से प्रेरित होकर कमश दयानाथ-गाधी वादी, उमानाथ मार्क्सवादी और प्रभानाथ आतकवादी, अपने-अपने मार्ग से आकर इसमें सम्मिलित होते हैं तथा शोभायात्रा के राजमार्ग पर चलते-चलते विथिकाओं में गुमराह हो जाते हैं। 'सीधी सच्ची बाते' का जगत प्रकाश इलाहाबाद विश्व विद्यालय का शोध छात्र है। जो अपने सम्पूर्ण साज-बाज के साथ इसे और आगे बढ़ाता है। परन्तु अब उसे गन्तव्य की स्वर्ण मल्लिकाए दिखाई देने लगती हैं, अत प्रशस्त मार्ग से विचलित नहीं होता। वह सघर्षो से जूझते हुए थकता है, चूर होता है आगे बढता हैं, फिर विश्राम करते हुए शोभा यात्रा को गन्तव्य स्थान पर पहुचा देता है। परन्तु इस सफलता पर जहाँ देशभर में हसी खुशी का माहौल छा जाता हैं वही अनन्त सघषो का घायल कसक में चीख उठता है और गांधी जी के साथ प्रयाण कर लेता है। मानो शोभायात्रा के दूल्हा का ही वह कोई निकट का आत्मीय रहा हो।

'सबहि नचावत राम गोसाई' स्वातंत्रयोत्तर भारत पर व्यग्यात्मक चित्रशैली मे लिखा गया है। इसमें बुद्धि, भाग्य, भावना के प्रतीकों को राधेश्याम, जबरसिंह और रामलोचन पाण्डेय के माध्यम से स्वतंत्र शीर्षकों में चित्रित की गयी है। प्रतीको की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए लेखक ने प्रत्येक पात्र की तीन पीढियों का सस्कारगत चित्रण किया है। तीनों कहानियों के चरित्र एक दूसरे के विपरीत हैं। मानव जीवन में जिस प्रकार बुद्धि, भाग्य और भावना के समन्वय के बिना न तो प्रगति की जा सकती है न तो कल्याण ही हो सकता है उसी प्रकार राजनैतिक जीवन में जब तक भ्रष्टाचार और अपराधी पन दूर नहीं होता तब तक देश का कल्याण नहीं हो सकता। लेखक इस विषय को उठापटक शीर्षक में तीनों कहानियों को एक मे मिलाकर व्यंजनात्मक शैली में व्यक्त किया है। शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासो से भिन्न होते हुए सफल है।

'सामर्थ्य और सीमा' पात्रों की पीढियों के संस्कारगत चित्रों द्वारा मानव की प्रकृति विजय की आकांक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। कवित्यमय भाषा, व्यंजनात्मक और अभिनयात्मक शैली ने रचना के प्रस्तुतीकरण शिल्प को प्रगल्भता ही नहीं प्रदान की है अपितु विशिष्टता निदर्शित करती है। 'थके पॉव' में मध्यम

वर्गीय परिवार की तीन पीढियों रामचन्द, केशवचन्द्र और मोहन के माध्यम से उनके आदर्शो और मान्यताओ अभिलाषाओं और धुटते हुए जीवन की अभिव्यजना करती है। फ्लैशवैक पद्धति में कथानक का प्रारम्भ केशव चन्द्र के मस्तिष्क में स्मृति तरगो के माध्यम से हुआ है।

वर्मा जी ने अपने इन उपन्यासो में कथावस्तु की दो या दो से अधिक धाराओं को सामानान्तर जोडने में प्रसंग पद्धति का प्रयोग किया है।

फ्लैश बैक पद्धति या चेतन-प्रवाह पद्धति-के द्वारा किसी व्यक्ति या वस्तु को पुन सामने लाकर अतीत के घटनाओं को सामने लाकर पुन प्रतीति करवाना। जिसमें प्रतीति अतीत से भव्यतर एवं उच्चतर होती है। इस पद्धति में उपन्यासकार पात्रों के मस्तिष्क में उठी हुई स्मृति तरंगों को आकार प्रदान कर उनके जीवन की घटनाओं का चित्रण करता है। यहाँ अतीत वर्णनात्मक रूप में न आकर स्मृति तरंगों में प्रतिफलित होता है। लेकिन उपन्यास शिल्प में इससे असम्बद्धता और असन्तुलन आने का डर बना रहता है। इस दोष का कुछ-कुछ परिमार्जन चेतन-प्रवाह पद्धति द्वारा होता है। इस पद्धति में लिखे गये उपन्यासों के कथावस्तु में कोई बन्धन नहीं होता हैं इस शैली की विशेषता यह है कि इसमें लेखक अपने भावों के अनुरूप विकास करता है। अपने भावों की अभिव्यंजना से स्वत के द्वारा कही गयी बातों का मार्मिक भाशा में सृजन करता है।

फ्लैश बैंक पद्धति और चेतन-प्रवाह पद्धति में वर्मा जी ने 'वह फिर नहीं आई', 'प्रश्न और मरीचिक', तथा 'थके पॉव' उपन्यास लिखे हैं। 'थके पाँव' उपन्यास को कथानक का प्रारम्भ केशवचन्द्र के मस्तिष्क में उठ रही स्मृति तरंगों से शुरू है। ये स्मृति तरंगे तीव्र वेग के साथ किशन के बम्बई जाने के पूर्व तक केशवचन्द्र के मानसिक पटल पर चित्रित हो कर उभरती हैं लेकिन उसके बम्बई चले जाने के बाद से लेखक कथा सूत्र अपने हाथ में ले लेता है। उसके बाद उपन्यास के कुछ अवशिष्ट पृष्ठो पर कथा-सूत्र फिर केशवचन्द्र के हाथ में देता है। इस प्रकार पात्रों के अन्त· करण का स्पन्दन और कोलाहल पूर्ण निनाद को लेखक बहुत कम दिखा पाया है। इसी त्रुटि के कारण उपन्यास की शिल्पगत कमी उजागर हुई है।

'प्रश्न ओर मरीचिका' उपन्यासकार ने उदयराज के मानसिक दृश्यों का प्रवाह पूर्ण चित्र अकित किया है। इसी कारण दृश्य मनोहारी प्रतीत होते हैं वह बम्बई से दिल्ली आकर जब होट्ल 'लाजपीस में खाना खाने के बाद बिजली के पखे के हवा मे आराम कुर्सी पर लेट्ता है तो उसके मन में विगत काल की स्मृतियॉं उभर उठ्ती हैं। इस प्रकार से सम्पूर्ण उपन्यास में कतिपय स्थानों पर उदयराज उपाध्याय के अन्त करण के स्पन्दन और क्रन्दन का चित्र लेखक ने चित्रांकित किया है। दिल्ली में स्थित अकबर रोड पर अपने पिता के बगले पर जाते समय ज्यों-त्यों उदय आगे बढता है त्यों-त्यों उसका मन झट्कों के साथ पीछे जाता हैं ये स्मृतियों सिनेमा के पर्दे के पात्र की तरह सटीक एवं सजीव हो उठ्ती हैं। जिस प्रकार से सिनेमा के पर्दे पर एक के बाद एक दृश्य स्वत उपस्थित होते हैं उसी प्रकार से इस पद्धति के द्वारा चेतना के अवाध प्रवाह से प्रसूत दृश्य भी सजीव रूप में प्रस्तुत होते हैं।

वर्मा जी ने 'अपने खिलौने' उपन्यास को उद्धरणात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इसमें वातावरण की उद्‌भावना तथा पात्रों के चरित्रिक प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश पडता है इस शैली का प्रयोग वर्मा जी ने 'अखिरी दाँव' भूले बिसरे चित्र' 'टेढ-मेढे रास्ते,' सवहि नचावत राम गुसाई में हुआ है। जिसका सबसे अच्छा प्रयोग 'अपने खिलौन' में किया गया है। उपन्यासों के प्रस्तुतीकरण शिल्प में शैलियो का महत्वपूर्ण योगदान होता है अत· वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। अत· क्रमवार इन शैलियो का विवेचन करना समीचीन होगा।

उपन्यास के विकास में वर्णनात्मक शैली का बहुत ही महतव होता है। इस शैली के आधार पर ही पात्रो के चरित्र-चित्रण कथनक, वातावरण एवं देश काल का चित्रण होता है। उपन्यासकार शब्द शिल्पी होने के कारण अभीष्ट पाठ्क के समक्ष प्रस्तुत कर देता हें वर्णनात्मक शैली के द्वारा उपन्यासकार मनचाहे शब्द रग भर कर चित्र प्रस्तुत कर देता है वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का विकास किया है जो 'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास में देखा जा सकता है-''वास्तव में मंसूर बहुत सुन्दर पुरुष थे-तीखा और सुडौल मुख, आँखे गहरी

काली और बड़ी–बड़ी कुछ खोई हुई सी, पतले–पतले होठ, जिनपर एक स्वाभाविक लालिमा झलक रही थी, नुकीली नाक। सगमरमर का सा गौरवर्ण। और एका एक मानकुमारी को लगा कि काम देव की प्रथम बार कल्पना करने वाले कवि के मन में मंसूर की ही आकृतिवाला कोई पुरूष रहा होगा।''[1] इस वर्णन से सुन्दर सौन्दर्य का साकार रूप सुशोभित हो उठा है।

वर्मा जी के उपन्यासों का प्रस्तुतीकरण शिल्प इतना समृद्ध एव विशिष्ट है कि उनके उपन्यासों में 'सामर्थ्य और सीमा', 'सीधी सच्ची बातें', 'अपने खिलौने', 'टेढे मेढे रास्ते' 'सबहिं नचावत राम गोसाई' में स्वत व्यंग्यात्मक क्षमता प्रस्फुटित हो गई है। इस शैली का प्रयोग उपन्यासों में वर्णन के द्वारा तथा सवादो के द्वारा हुआ है। व्यंग्यात्मक शैली की विशिष्टता की दृष्टि से 'सवहिनचावत रामगुसाई' उपन्यास अति उल्लेखनीय है।

चित्रात्मक शैली तथा नाटकीय शैली में उपन्यासकार अभप्सित चित्र प्रस्तुत कर देता है। जिससे पाठक के मष्तिष्क में एक रूप रेखा खिंच जाती है। इस शैली का प्रयोग वर्मा जी के उपन्यासों 'सामर्थ्य और सीमा' 'टेढे–मेढे रास्ते' 'सबहिं नचावत राम गोसाई' आदि। 'सामर्थ्य और सीमा' में इस शैली का प्रयोग ''सामने सड़क पर एक लम्बा सा और बूढ़ा सा आदमी पैंट और कमीज पहने और कन्धे पर बन्दूक लटकाये उन पक्के बंगले की ओर चला जा रहा था।''[2] इस अंश में चित्रात्मक शैली जाहिर होती है।

प्रतीकात्मक शैली के द्वारा उपन्यासकार उन अमूर्त भावों की व्यंजना करता हैं। जिन्हे अन्य शैलियो में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। प्रतीकात्मक शैली से भावाभिव्यंजन की कला समृद्ध एवं सशक्त हो जाती है। एलवर्ट किसन मंसूर, रानीमान कुमारी से तिसना नदी के प्रतीक के माध्यम से अपने मन के भाव व्यक्त कर देता है।–''मंसूर–हमारी सारी जिन्दगी ही इस तिसना की जिन्दगी बन गई है रानी साहिबा! लेकिन इस तिसना के जाल को तोड़ना ही पडेगा हमे।''[3] इसके अतिरिक्त वर्मा जी ने 'भूले बिसरे चित्र' तीन वर्ष

---

[1] सामर्थय और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज–220
[2] सामर्थ्य और समी, भगवती चरण वर्मा, पेज–57
[1] सामर्थ्य और समी, भगवती चरण वर्मा, पेज–222–23

तथा 'प्रश्न और मरीचिका' में इस शैली का प्रयोग किया है। ''छाया ने आकार ग्रहण कर लिया और सोफी गार्डनर सब कुछ भूल चुकी थी।''[1] इस प्रकार से प्रश्न और मरीचिका के इस प्रसग मे इस शैली का प्रयोग हुआ है।

भगवती चरण वर्मा एक सफल उपन्यासकार होने के साथ-साथ भावुक कवि भी हैं। इस लिए उपन्यासों में उनका भावुक कवि हृदय बोल उठा हैं उनकी भावनांए, सुकुमार कल्पनाएं और अनुरागी हृदय की प्रतिछवियॉ प्रकृति-चित्रण, अथवा प्रेम प्रसगों में भावात्मक शैली द्वारा ही अभिव्यक्त हुई है। सामर्थ्य और सीमा मे भावात्मक शैली का प्रयोग शिल्पगत दृष्टि से प्रशंसनीय है। जिसे इन अशो में देखा जा सकता है-''बड़ी कोमलता के साथ रानी मानकुमारी का हाथ अपने हाथ में लेते हुए मंसूर ने कहा, ''रानी साहिबा, मुझे तो महसूस हो रहा है कि दो भटकती हुई रूहे अपनी-अपनी विथा समेटे हुए इस वियावान में अचानक एक दूसरे से मिल गई।''[2]

''मंसूर साहब, वास्तव में मैं भटकती हुई आत्मा हूँ, असीम व्यथा लिए हुए और मैं कितना अधिक थक गई हूँ, जी चाहता है कि बैठ जाऊ, लेकिन यह नहीं हो सकता।''[3]

किसी भी उपन्यासकार को अपनी रचना का सृजन करने के लिए दो ही कारगर साधन होते है, एक तो उसकी भाषा दूसरी उसकी शैली, जिनकी सहायता से वह विविध रंगों के शब्द दृश्य विधान में पात्रों के स्वभाविक चरित्र उद्घाटित करता है इसी भाषा शब्द के द्वारा पात्रों के चरित्र-संवाद एव शैली का स्वाभाविक और सजीव चित्रण करता है। जिससे पाठक के मानस-पटल पर एक चित्र सा खिंचता जाय जो कि भाषा के धनी उपन्यासकार के बिना सम्भव नहीं है। भाषा शैली की दृष्टि से भगवती चरण वर्मा जी की भाषा उल्लेखनीय है। वर्मा जी की भाशा सरल, सुबोध होते हुए भी मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति में सक्षम होने के कारण प्रभावशाली है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अभिव्यक्ति में सक्षम होने के कारण प्रभावशाली है इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें

---

[1] प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-138

[2] सामर्थ्य ओर समीा, भगवती चरण वर्मा, पेज-221

[3] सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा पेज-221

सजीवता और सप्राणता दिखाई पड़ती है। मुहाबरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों में सरल, सहज और स्वाभाविक रूप मिलता है जिससे वर्मा जी अपनी भाषा शक्ति की श्रीवृद्धि की है। जिससे उनके उपन्यासों की भाषा शैली मुहावरों, लोकोत्तियों और सूक्तियो के महत्व स्वाभाविक प्रयोग के कारण जीवंत तथा प्रभावशाली हैं। भाषा की सटीकता, अर्थवत्ता और ध्वन्यात्मकता एक मात्र मुहावरों और कहावतों के कारण ही आ सकी हैं। ऐसे ही पात्रों के भावों को स्पष्ट करने के लिए वर्मा जी ने मुहावरो की सहायता लिया है, अत. उनके उपन्यासों मे यथा स्थान पर देखा जा सकता है।

1 राम प्रकाश पर मानो घड़ों पानी पड़ गया।[1]

2 लक्ष्मी चन्द्र के माथे पर बल पड़ गया।[2]

3 भमरी चीख उठी, और केहर सिंह को जैसे काठ मार गया हो।[3]

ऐसे मुहावरों के प्रयोग से भावों की अभिव्यक्ति के लिए विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नहीं पड़ी है। अपने उपन्यास के पात्रों के कथनों मे चमत्कार और वक्रता उत्पन्न करने के लिए भी मुहावरों का प्रयोग किया है। एसे मुहावरों के प्रयोग से पात्रों के मन की भावनाओं तथा उनके वाक् चातुर्य स्पष्ट हो जाते है; जैसे-

1 बहुत अच्छा रानी जी, आप की आज्ञा सिर आँखों।[4]

2 चमेली तो मुझे फूटी आँखों नहीं देख सकती।[5]

3 तुम अपने ही पैरों में कुल्हाडी मार रहे हो।[6]

मुहावरो की तरह जन प्रचलित लोकोक्तियो के प्रयोग के द्वारा भी वर्मा जी ने अपनी भाषा के सौन्दर्य को बढाया है। इससे पात्रों के कथनों में स्वाभाविकता एवं विश्वसनीयता पैदा हो गयी है।-

1 बेटा जान है तो जहान है, लात मारो इस नौकरी को।[7]

2 जिसकी जैसी करनी होगी, वेसी ही भेगेगा भी।[8]

---

[1] अपने खिलौने, भगवती चरण वर्मा, पेज–51
[2] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज–383
[3] सवहि नचावत राम गोसाई, भगवती चरण वर्मा, पेज–75
[4] अपने खिलौने भगवती चरण वर्मा, पेज–36
[5] अपने खिलौने, भगवती चरण वर्मा, पेज–201
[6] सीधी सच्ची बाते भगवती चरण वर्मा पेज–497
[7] थके पॉवे, भगवती चरण वर्मा, पेज–115
[8] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज–38

इनके कुछ उपन्यासों में कुछ ऐसे स्थल भी मिलते हैं जहाँ पर उन्होंने अपने पात्रो के द्वारा हिन्दी के अलावा दूसरी भाषाओं की कहावतो का भी प्रयोग किया है। लाला मेला राम कहते हैं-"फारसी में कहावत है कि बचपन में इन्सान को अपनी मा का सहारा होता है, जवानी में अपनी तन्दुरूस्ती का सहारा होता और बुढापे मे अपनी दौलत का सहारा होता है।[1] इस प्रकार से मुहावरों एवं कहावतो आदि के प्रयोगो को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि भाषा पर वर्मा जी का पूर्ण अधिकार है।

उक्तियो और सूक्तियो का प्रयोग सन्तों तथा अनुभवी व्यक्तियों के प्रयोगों द्वारा भी अपनी बातों को अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने की कोशिश किया है वैसे तो आपके उपन्यासों में सूक्तियों का प्रयोग किया गया है, लेकिन 'भूले बिसरे चित्र' में तो सूक्तियों की भरमार है जैसे-

1 भला धनुष से निकला तीर और मुंह से निकली बात कहीं वापस लौटते है।"[2]

2. पाप गले आकर पड़ता है।[3]

3 सावधान का विनाश नहीं होता।[4]

4 बालिग लड़का बराबरी वाला हो जाता है।[5]

कभी-कभी गूढ विषयों पर चिन्तन करते समय या अर्न्तद्वन्द्व के अवसर पर कथाकार ने काव्यात्मक और दार्शनिक उक्तियों का स्मरण कराया है। ऐसे स्थलों पर पात्र स्वय या दूसरे के मन को सात्वना देने के लिए इन सूक्तियों का प्रयोग करते दिखाई देते है, जैसे-

1 हुई है वही जो राम रचि राखा।[6]

2 बीती ताहि विसरि दे आगे की सुधिलेई।[7]

---

[1] प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा पेज-481
[2] भूले बिसरे चित्र भगवती चरण वर्मा, पेज-44
[3] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-40
[4] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-70
[5] प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-143
[6] प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-21
[7] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज-140

इसके अलावा एक जागरूक चिन्तक और रचनाकार होने के नाते वर्मा जी अनुभूति के आधार पर टिप्पणी करते चलते हैं उनकी ये उक्तियाँ प्राय उनके व्यक्तित्व के अनुकूल अत्यन्त तार्किक, विद्रोहात्मक और बौद्धिक होती है–जैसे–

1 भावना ही मनुष्य का जीवन है, भावना ही प्रकृति है, भावना ही समय है और नित्य है। भावनाओं के मामले में मनुष्य विवश है। और यही विवशता, तथा इस विवशता के कारण प्राणिमात्र में विषमता ससृति का नियम है।''[1]

विभिन्न समाजों, क्षेत्रों, प्रान्तों और सम्प्रदायों से सम्बन्धित पात्रों के द्वारा सवाद बुलवाते समय वर्मा जी ने उनकी भाषा विषयक विशिष्टता को हमेशा ध्यान मे रखा है। केशवबाबू के सहयोगी चटर्जी बाबू की हिन्दी देखी जा सकती है– 'केशों बाबू अब नहीं चलेगा तुम्हारा टीला, जे हुआ दूसरा दावत। अभी लारका होने का दावत नही दिया आज कल में साल भर टाल दिया।''[2]

इसी तरह से एक अल्पशिक्षित व्यक्ति की बम्बई या हिन्दी का नमूना देखा जा सकता है–''तू काम का आदमी है भइया–और मैं काम का आदमी हूँ। मेरे को नहीं सही,तेरे को ही मुझसे काम पड सकता है। गोरे गॉव में मैं रहता हू, किसी से रधुनाथ दादा का नाम ले लेना, वह मेरा मकान तूझे बता देगा। अच्छा अब जा, तुमसे कोई नहीं बोलेगा।''[3]

भूले बिसरे चित्र, के गिस्टर जोनाथन डेविड जो क्रिस्चियन होते हुए भी स्यम को यूरोपियन कहते हे, अंग्रेजों की नकल पर हिन्दी बोलने का प्रयास करते दिखाई देते हैं–ऐ मीर टुम आ गया, हम टुमकी तलाशता था .... टुम अमको बुलाया था मैने, बोलो।''[4] उपर्युक्त विवेचन से ऐसा लगता है कि वर्मा जी का भाषा भण्डार अपरिमित है। शब्दों को उचित स्थान देकर उनकी सार्थकता को सिद्ध कर दिया है।

---

[1] टेढे मेढे रास्ते भगवती चरण वर्मा पेज–138
[2] थके पॉव, भगवती चरण वर्मा, पेज–55
[3] आखिरी दॉव भगवती चरण वर्मा, पेज–18
[4] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा पेज–239

वर्मा जी के उपन्यासों की भाषा सर्वप्रचलित 'खडीबोली' है। भाषा के सम्बन्ध में वर्मा जी का कोई पूर्वाग्रह नहीं है उपन्यासो के विषय, पात्रों के मानसिक धरातल और भावों के अनुकूल भाषा को विविध रंग देन में वर्मा जी कोई सकोच नहीं करते। खड़ी बोली का आधार ग्रहण करते हुए भी आपने स्थान-स्थान पर स्थानीय बोली, अग्रेजी, और अरबी फारसी के शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है कि अभिव्यक्ति में अपार क्षमता तथा प्रवाह आ गया है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि वर्मा जी का मुख्य उद्देश्य कथा कहना होता है भाषा उसमे कोई बाधकता नहीं, बल्कि कथा को सरल एव स्वाभाविक बनाने में सहयोग प्रदान करती है। इस प्रकार से वर्मा जी की भाषा को देखा जा सकता है।

वर्मा जी ने प्राय सभी उपन्यासों मे संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग किसी न किसी रूप में मिलता है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए 'प्रश्न और मरीचिका' में देखा जा सकता है- हमारे समस्त वर्णाश्रम धर्म की परम्परा ही है उत्पीड़न और शोषण। दूसरों के श्रम पर जीवित रहना। इस वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था ब्राहम्णों ने दी थी और उसी वर्णाश्रम धर्म के कारण हमारा देश अत्यन्त पिछड़ा हुआ, विकृतियों से ग्रस्त हो गया है।''[5] इसी प्रकार के अनेकों उद्धरण 'टेढे मेढ़े रास्ते', भूले-बिसरे चित्र, 'सामर्थ्य और सीमा', 'सीधी-सच्ची बातें, तथा 'प्रश्न और मरिचिका', उपन्यासों में देखे जा सकते हैं। संस्कृत के साथ-साथ लोक भाषा का भी प्रयोग मिलता है। तथा पात्रों के अनुकूल अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग मिलता है।

1 लेकिन बदकिस्मत हूँ कि दुनियाँ की ठोकरे खा रहा हूँ।[2]

2 मजहब का कुदरती गुन है फैलना।[3]

3 सामर्थ्य और सीमा में आप फिर न कहिएगा कि मैंने खाम ख्वाह आप की मुखालफत की है।[4]

4 गो कि शरीयत के मुताबिक मुझे पीना कतई नहीं चाहिए।[5]

5 अजीज मन। बड़े जहीन हो। तुम्हें तो सियासत में जाना चाहिए।[6]

---

[5] प्रश्न ओर मरिचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-429
[2] अपने खिलौने, भगवती चरण वर्मा, पेज-132
[3] भूले बिसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज-41
[4] सामर्थ्य और सीमा, भगवती चरण वर्मा, पेज-176
[5] सीधी सच्ची बाते भगवती चरण वर्मा, पेज-82
[6] प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-111

वर्मा जी ने अपने उपन्यासो में एक वर्ग विशेष की भाषा का भी प्रयोग किया है। मुस्लिमशासक से ही इस प्रदेश की कचहरियों में अरबी फारसी मिश्रित उर्दू भाषा का प्रयोग होता आया है। मुंशी शिव लाल द्वारा लिखित इस्तगासा इसका प्रमाण है। जो वर्मा जी के उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' मे खूब प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार से विभिन्न जाति ओर धर्म के लोगों के मुख से अरबी फारसी शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग करवाकर वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में स्वभाविकता ला दी है। जो अपने आप में एक विशिष्ट उपलब्धि है। वर्मा जी ने अपने पात्रो के वार्तालातप के द्वारा मुस्लिम समाज में व्यवहार में लायी जाने वाली शिष्टाचार की भाषा को बड़ी बखूबी ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसको उदाहरण सवरूप देखा जा सकता हैं-

1 हूजूर गुस्ताखी मुआफ हो, तो कुछ अर्ज करूँ।

2 वैसे मैं कभी नही पीता, लेकिन हुजूर के हुकम से सरताबी मुमकिन नहीं।''

इसके अलावा वर्मा जी ने ''अपने खिलौने' उपन्यास में 'उर्दू शायरी के द्वारा 'दिलवर किशन जख्मी' के शायर रूप की सवाभाविकता को प्रदर्शित किया हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्मा जी पात्रों और समय एव स्थान के लिहाज से भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है।

भारत वर्ष की पराधीनता से चले आ रहे अंग्रेजी के परिभाषिक शब्दों का हिन्दी में इस प्रकार से घुल मिल जाना कि आज तक वे हिन्दी के प्रयोग मे लाये जा रहे है। उसी को आधार बनाकर वर्मा जी ने अपने उपन्यासो में अंग्रेजी के शब्दों का नि सकोच प्रयोग किया है। इस प्रकार सस्कृत, अरबी, फारसी, और उर्दू की भाँति ही आप के उपन्यासों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। उदाहरण स्वरूप अंग्रेजी शब्दों को देखा जा सकता है-

सामर्थ्य और सीमा-

नानवेजीटेरियन, इण्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन, ईष्टइण्डियन रेलवे, गार्ड सेक्रेटरी, इन्जी नियर, मिनिष्टर आदि।

प्रश्न और मरीचिका-

ज्वाइन्ट सेक्रेटरी, सेक्रेटिरिएट, रिवाल्वर, लाइसेन्स, एयरपोर्ट, रनवे, परमिट, प्राइममिनिस्टर, पालिटिकल, प्रेस-क्लर्क आदि।

इसी प्रकार अग्रेजी के अनेक शब्दों का प्रयोग वर्मा जी ने सबहि नचावत राम गुसाई, सीधी सच्ची बातें, आदि उपन्यासों में किया है।

वर्मा जी ने अपने पात्रो की शैक्षणिक और सामाजिक स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यासों की भाषा में कोई दुराव-छिपाव या अपनी ओर से विद्वता आरोपित करने का कोई प्रयास नहीं किया है।

वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में सस्कृत, अरबी-फारसी तथा उर्दू का मिश्रित रूप तथा अंग्रेजी के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के मध्यवर्ती क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली का लोक भाषा में प्रयोग पात्रों के अनुकूल किया है। लोक भाषा का प्रयोग भूले बिसरे चित्र में अवधी का एक रूप जो प्रतापगढ के पश्चिम में बोली जाती है भूले बिसरे चित्र, के घसीटे, छिनकी, भीखू, तथा मुशी शिवलाल के घर स्त्रियॉ, सीधी-सच्ची बातों का सुमेर प्रायः इसी बोली में बात करते है। इसी प्रकार 'सबहिं नाचवत राम गोसाई', में राजा पृथ्वी पाल सिंह और पण्डित कमलनरायन त्रिपाठी के वार्तालाप मे भी क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार वर्मा जी ने अपने पात्रो के द्वारा जहॉ भी उचित समझा है वहाँ वह अवधी भाषा के एक रूप 'बैसवाडी' का प्रयोग करवाया है और उसका यथा सम्भव निवार्ह करवाया है किन्तु कहीं कहीं उनमें कुछ कमियॉं भी रह गयी है। जिन्हे वे चाहते तो थोडी सार्थकता द्वारा दूर कर सकते थे। उनकी इस सार्थकता का अभाव कहीं कहीं पाठकों को खल जाता है। जैसे-हो, पर ई से क्या?[1] वहॉ यहॉ क्या के स्थान पर का होना चाहिए था। 'हम सब जी तोड के मेहनत करता हन'[2] यहाँ करता की जगह करत होना चाहिए।'

---

[1] टेढे मेढे रास्ते भगवती चरण वर्मा, पेज-344

[2] टेढे मेढे रास्ते, भगवती चरण वर्मा, पेज-284

अपने असीमित शब्दभण्डार मे से वर्मा जी ने ऐसे आनुकूल और उचित शब्दो का चयन किया है कि कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं होता हैं बहुरगी भाषा के प्रयोग से सरलता और आकर्षण प्रस्फुटित होता है। मुहाबरों, कहावतो, लोकोत्तियों के सम्यक प्रयोग के द्वारा भाषा में वक्रता, तीक्ष्णता और मार्मिता लाने का सफल प्रयास किया है। वर्मा जी के उपन्यासों की भाषा सरल सुबोध है। वह पात्रो के भावानुसार अभिव्यंजना करती है तथा दृश्य और प्रसग विधान के अनुसार चित्र निर्मित करती है। फलत इसमें इन्द्रधनुषी भाष देपीप्यान है।

भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो को शिल्पगत आधार पर जॉचने परखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि उसमे शिल्पगत विकास बखूबी हुआ है। पतन से लेकर चित्रलेखा से 'तीन वर्ष' और फिर 'टेढे मेढे रास्ते' भूले बिसरे चित्र, सीधी सच्ची बातें, तथा 'प्रश्न और मरीचिका' तक की अन्तर्यात्रा शिल्पगत, भावगत, और विचारात्मक प्रगति के मील स्तम्भ है। भाषा शैली की दृष्टि से देखा जाय तो उत्तरोत्तर यथार्थवादी, चित्रात्मक तथा नाटकीय होती गयी है। यही कारण रहा कि वर्मा जी के औपन्यासिक शिल्प में मौलिक परिवर्तन बना रहा। यहीं कारण रहा कि फ्लैक बैक पद्धति और समय विपर्य की मिश्रित शैली में रचित उपन्यास 'थके पॉव' प्रस्तुतीकरण शिल्प की दृष्टि से अनूठा एवं सफल रहा। चेतनाप्रवाह शैली मे लिखा गया उपन्यास 'प्रश्न और मरीचिका' शिल्प की दृष्टि से मौलिक है। यह एक आत्म कथात्मक उपन्यास है। जिसमें पात्र के अन्तर्मन से छनकर समाज और राष्ट्र की विराट चित्रपट पर प्रकाश झलकता हैं।

\- - - - - -

अध्याय-6

आधुनिकता बोध और भगवती बाबू के उपन्यास

हिन्दी साहित्य के उपन्यास विधा में और समकालीन हिन्दी उपन्यास में आधुनिकता किस तरह पहचाना जाय या किस कसौटी पर इसे परखा जाय? इस पर गहरा चिन्तन पश्चिम के उपन्यासों में दिखाइ पड़ता है। यह चिन्तन कभी उपन्यास में कभी अन्त के बोध को लेकर है तो कभी वास्तविक पहचान को लेकर, कभी उपन्यास की विधा को लेकर हैं तो कभी कला की अमानवीयकरण की समस्या को लेकर है, कभी सम्बोधन या वाग्मिता की समस्या को लेकर है तो कभी चरित्र-चित्रण की समस्या को लेकर, कभी काल की समस्या को लेकर इस तरह का चिन्तन-मनन विदेश के उपन्यास को आधार बनाकर किया गया है जिसका इतिहास लम्बा है और जिसकी परम्परा सम्पन्न है। हिन्दी उपन्यास का इतिहास बहुत लम्बे काल का नहीं हैं और न ही हिन्दी उपन्यास की परम्परा ही सम्पन्न है। अत इस दृष्टिकोण से पश्चिम के उपन्यासों को आधार बनाकर आधुनिकता बोध को तलासना न्याय सगत नहीं जान पड़ता है। उपन्यास की विधा किसी देश या किसी भाषा तक सीमित न होकर सब देशों और भाषाओं की हो रही है।

यदि हम भगवती चरण वर्मा के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर नजर डालते हैं तो उनकी दृष्टि एव उनके कृतित्व में आधुनिकता बोध की झलक मिलती है। हलांकि इन्द्रनाथ मदान ने अनुसार आधुनिकता बोध की शुरूआत गोदान (1934-36) से मानी जा सकती है। आज के हिन्दी उपन्यास में इसका संकेत दिया गया है।''[1]

---

1 आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पेज-146

उपन्यास साहित्य में साहित्यकार के मानस की विशिष्ट एवं रमणीय अनुभूति झलकती है। साहित्य में कल्पना का जो दृष्टिकोण बनता है एक नई दृष्टि भाव उत्पन्न करता है जो उपन्यास में आधुनिकता बोध का आयाम बनता है। इस दृष्टि से यदि हम वर्मा जी के उपन्यासों में चित्रलेखा को लें तो देखेंगे कि इसकी कथा वस्तु ऐतिहासिक नहीं वरन् पाप-पुण्य की शाश्वत समस्या को एक नई दृष्टि से उद्धृत किया गया है। भले ही यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को लेकर निर्मित हुआ है। सामन्ती भोग विलास, तपस्वियों का आधिक्य, नर्तकियों का समाज में स्थान, उत्सवों में पुरूष एव महिला वर्ग का अलगाव आदि बातें गुप्त काल के अनुरूप ही है।

'चित्रलेखा में समस्या पाप-पुण्य की समस्या आ जाने के कारण चरित्रों के विश्लेषण या उनके विकास की योजना नहीं है। कुमारि गिरि और बीजगुप्त जीवन के दो रूप हैं और चित्रलेखा इन दोनों को नापने की तुला है समस्या में सीमित होने पर भी चित्रलेखा के संवाद बड़े सजीव तथा आकर्षक हैं, 'चित्रलेखा' की भाषा प्राजल तथा दार्शनिक विचारों से कहीं कहीं बोझिल है चित्र विधान बड़े स्वाभाविक तथा प्राणवान हैं।''[1] इन समस्त प्रसंगों में लेखक अपनी अन्तर्दृष्टि के सहारे इस ऐतिहासिकता को एक नवीन जीवन दृष्टि देता है।

'चित्रलेखा' उपन्यास में वर्मा जी योगी और भोगी प्रतीकों के सहारे स्पष्ट करते हैं कि समाज में पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है। वह मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।''[2] यहाँ पर उपन्यासकार की दृष्टि और दृष्टिकोण अपना है जो कि अराजकता को प्रेरित करती है। प्रेमचन्द्र के समान वर्मा जी ने अपने साहित्य में यथार्थ को महत्व दिया है। प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास की वयस्कता की प्रभावशाली उद्घोषणा है सामाजिक यथार्थ की जिस समस्या को उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों ने आदर्श और यथार्थ के खानों में बांट कर देखा था, उसे प्रेमचन्द एक सपृक्त और संश्लिष्ट रूप में समझते हैं।''[3]

---

1 हिन्दी उपन्यास एक अन्तर यात्रा, डा0 रामदरश मिश्र, पेज 200
2 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147
3 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पेज 164

भगवती चरण वर्मा के जीवन-दर्शन का नाम लेते ही जो बात सबसे पहले ध्यान में आती है वह ही नियतिवाद है। नियतिवाद पर उनकी अटूट आस्था उनके सम्पूर्ण उपन्यासों में झलकती है। नियतिवाद के सम्बन्ध में वर्मा जी का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट एवं निभ्रांत रूप से व्यक्त हुआ है। मनुष्य परतन्त्र है, परिस्थितियों का दास है, लक्ष्यहीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती है। मनुष्य की कोई इच्छा का कोई मूल्य ही नहीं मनुष्य स्वालम्बी नहीं है, वह कर्ता भी नहीं है, साधन मात्र है।''[1] अपने इस विचार दृष्टिकोण को वर्मा जी ने बार-बार दोहराया है। 'प्रश्न और मरीचिका' के जयराज उपाध्याय कहते हैं-कर्ता कोइ और है, हम सब तो निमित्त मात्र हैं। न मनुष्य अपनी इच्छाओं से जन्म लेता है, न अपनी इच्छा से मरता है। ऊपर से कार्य और कारण एक दूसरे से बुरी तौर से सम्बद्ध दिखते हैं, लेकिन इस कार्य और कारण की लम्बी श्रृखला को देख पाना हमारे वश में नहीं है।''[2] यहीं पर वर्मा जी चुप नहीं बैठ्ते हैं, इसे वे आधार बनाकर एक सम्पूर्ण उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' का सृजन कर डाला। इस उपन्यास के शीर्षक में ही मानव सबल शक्ति का आभास दिखाई पडता है। नियति अथवा प्रकृति ही सबल शक्ति है जिसकी अनिच्छा के कारण विश्व विख्यात इंजीनियर, उद्योगपति, मन्त्री, एवं डिजाइनर की सारी योजनाए निष्फल हो जाती हैं और सुमन पुर का विकास नहीं हो पाता। प्रश्न उठ्ता है कि क्या नियति को बलशाली मानकर असहाय एवं निष्क्रिय बन कर बैठ जाना चाहिए। वर्मा जी नियति अथवा परिस्थितियों के भंवर में अकर्मण्य होकर घूमते जाने के सर्वथा विरोधी हैं। उन्होने बीजगुप्त के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त कर दिये-''मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है, जहां वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाय, वरन् अपने कतर्व्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उस पर विजय पावे।''[3] प्रस्तुत प्रसंग के माध्यम से वार्मा जी निपति और

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज- 147
2 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज-517
3 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 54

परिस्थितियो को महत्व तो देते हैं साथ ही कर्म करने की भी बात करते है जो कि आज भी शाश्वत है।

'टेढे-मेढे रास्ते' के रामनाथ परिस्थितियों से हारना स्वीकार नहीं करते-'पराजय-पराजय की भावना अपने अन्दर है, मनुष्य जब तक अपने अन्दर से पराजित न हो, पराजित नहीं। बाहर वाली परिस्थितियों से लड़कर हारना या जीतना मनुष्य के वश की बात नहीं, असीम शक्तियाँ उसके खिलाफ केन्द्रित हो सकती है लेकिन अपने अन्दर से हारना या जीतना मनुष्य स्वयं कर सकता है।''[1] वर्मा जी के यह विचार स्पष्ट रूप से गीता कर्मवाद से प्रभावित दिखते हैं। गीता का वह कर्मवाद आधुनिकता के दृष्टि कोण बोध करवाते हैं।

वर्मा जी का यह विचार भ्रमपूर्ण नहीं है। मनुष्य की आत्मा में परमात्मा का निवास है-वह सत्य शिवं सुन्दरम् की भावना से युक्त है। मनुष्य कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता जो दूसरों के लिए अहितकर हो किन्तु इन कल्याणकारी प्रवृत्तियों के प्रकृयात्मक रूप से प्रभावित होकर वह दुष्कर्म कर बैठ्ता है। व्यक्ति को अपने स्वाभाविक वृत्तियों को दबाने का यत्न नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो यह समझना चाहिए कि वह ईश्वर प्रदत्त परिस्थितियों का सामना नहीं करना चाहता जब वह परिस्थितियो से दूर भागता है तभी वह अद्य पतन के गर्त में गिरता चला जाता है। परिस्थितियों से दूर भागना, उनसे मुख मोड़ना वर्मा जी की दृष्टि से कायरता है, आत्मा का हनन है। चित्रलेखा में काशी का सन्यासी कहता है जिस समय तुम विवाह न करके सन्यासी होने की बात सोचते हो, तुम कायरता करते हो एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है, उससे तुम विमुख होते हो।'' इसी उपन्यास में कुमारगिरि और बीज गुप्त की भूमिका से वर्मा जी ने इस विचारधारा को प्रमाणित किया है जो आधुनिकता की दृष्टि से उत्तम दिखता है।

वर्मा जी का जीवन के स्वस्थ उपभोग में विश्वास है। वह व्यक्ति स्वातन्त्रय को सदैव महत्वपूर्ण मानते रहे, किन्तु उनकी व्यक्तिवादी चेतना असामाजिक कदापि नहीं है। यदि मनुष्य की प्राकृतिक और स्वाभाविक प्रवृत्तियां वासनाओं की तृप्ति चाहती, तो उनको नियन्त्रित करना अहितकर है। क्योंकि इनके अस्वाभाविक नियन्त्रण से असामाजिक तत्वों के उत्पन्न होने का भय रहता है। स्वस्थ उपभोगवाद को स्वीकार करते हुए भी वर्मा जी भौतिक उच्छृंखलताओं का सर्वथा विरोध करते हैं। व्यक्ति की सहज, प्राकृतिक और स्वाभाविक क्रियाओं को वह पर्याप्त महत्व देते हैं। उनके इस दृष्टि में बोध दिखाई पड़ता है। मनुष्य में गुण के समानान्तर अवगुण अथवा कमजोरिया भी स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती हैं, उन्हें बल पूर्वक दबाना व्यर्थ है इसी तथ्य की ओर रेखा इंगित करती है-"शरीर की कमजोरियों पर विजय पायी जा सकती है, अपनी आत्मा को दबाकर, उसे कुण्ठित करके। हमारे धर्म शास्त्रों में यही व्यवस्था की गयी है-ब्रत, उपवास, तपस्या। अपनी आत्मा को कुण्ठित करके शरीर की कमजोरियों पर विजय पाना-कितना भौंडा विधान है।"[2] वर्मा जी मानते हैं कि इन कमजोरियों को, इन आधारभूत प्रवृत्तियों को दबाने की अपेक्षा उन्हें इस प्रकार सन्तुष्ट किया जाय कि वह दूसरों को कष्ट न पहुचाये। 'चित्रलेखा में महाप्रभु रत्नाम्बर श्वेताक से कहते हैं-अच्छी वस्तु वही है, जो हमारे वास्ते अच्छी होने के साथ दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो।"[3] अर्थात वर्मा जी व्यक्ति की असामाजिक स्वतन्त्रता का खण्डन करके अपनी व्यक्ति-स्वातन्त्रय की धारणा को सामाजिक व्यापकता प्रदान कर देते हैं।

पाप-पुण्य की समस्या जीवन की शाश्वत एव अत्यन्त जटिल समस्या है। जिस पर वर्मा जी ने अपना नितांत मौलिक दृष्टिकोण व्यक्त किया। पाप-पुण्य सम्बन्धी वर्मा जी के विचार एकांतिक भले ही हों किन्तु युवावस्था में अपनी जिस निर्भीकता एवं दृढता से अपने विचारों को प्रकट किया, वह श्लाघ्य है। 'चित्रलेखा'

---

1 टेढेमेढत्रे रास्ते, भगवती चरण वर्मा पेज 493
2 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज- 210
3 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज- 147

में महा प्रभु रत्नाम्बर का अपने शिष्यों के प्रति किया गया कथन वर्मा जी की मेधावी चिन्तन का परिचायक है। पाप को नियति एवं परिस्थितियों से जोड़कर नवीनता उत्पन्न कर दी है-संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण के विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मन वृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है यही मनुष्य का जीवन है जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है . विवश है। वह कर्ता नहीं है, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा।''[1] यह कह कर वर्मा जी ने जीवन के सत्य को उद्घाटित कर दिया। यह कहते हुए कि-संसार में इसलिए पाप की परिभाषा नहीं हो सकी और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।''[2]

वर्मा जी के 'तीन वर्ष' उपन्यास में प्रभा भी इन्हीं विचारों का समर्थन करती प्रतीत होती है-भलाई और बुराई केवल तुलनात्मक है और वह व्यक्तिगत प्रश्न है पाप और पुण्य भी मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है और हमारा कर्तव्य वह है, जिसे हमारा अन्त करण स्वीकार करे।''[3] यहां पर वर्मा जी की मान्यता है कि हमारी आत्मा, हमारा अन्त करण कभी गलत काम करने की प्रेरणा नहीं देता है।

इन विश्लेषणों से स्पष्ट है कि वर्मा जी भाग्यवादी हैं और जीवन को वह ईश्वर के निर्णय पर छोड़ देते हैं। फल की इच्छा किए बिना कार्य करते जाने में ही वह विश्वास करते हैं क्योंकि-''कर्म जीवन है और निष्क्रयता मृत्यु

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147
2 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 148
3 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 147

है-गतिहीनता मृत्यु की प्रतीक है।''[1] लेकिन वर्मा जी का विचार है कि मनुष्य को वही कर्म करना चाहिए जो सामाजिक हो, 'समाज के नियमों का पालन करना' उनकी दृष्टि मे अत्यन्त आवश्यक है। इन्हीं बिन्दुओं पर वर्मा जी के दृष्टिकोण में द्वन्द्वता का भाव दिखाई पड़ने लगता है।

पाप-पुण्य की ही तरह जीवन से सम्बन्धित विवादग्रस्त समस्या प्रेम की है जो जीवन से अत्यधिक जुड़ी हुई समस्या है। प्रेम और वासना, प्रेम और विवाह आदि समस्याओ पर वर्मा जी का चितन अत्यधिक गहन है और उस पर उनके स्वतन्त्र विचार भी हैं, ऐसा उनके प्रत्येक कृतियों से दृष्टव्य होता है क्योंकि इस समस्या पर प्राय· वर्मा जी के औपन्यासिक पात्र वाद-विवाद करते दीख पड़ते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि वर्मा जी इस विषय के विभिन्न पक्षों पर बड़ी गहराई से अपनी अन्तर दृष्टि डाली है। 'चित्रलेखा' कहती है कि प्रेम परिवर्तनशील है। प्रकृति का नियम परिवर्तन है प्रेम उसी प्रकृति का भाग है। प्रकृति का नियम प्रेम पर लागू हो सकता है।''[2] यहां पर प्रेम को वर्मा जी ने प्रकृति से जोड़कर एक नई अन्तर्दृष्टि दी है। किन्तु बीजगुप्त कहता है-''प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से है प्रकृति से नहीं। जिस वस्तु का सम्बन्ध प्रकृति से है, वह वासना है, क्योकि वासना का सम्बन्ध वाह्य से है। वासना का लक्ष्य यह शरीर है, जिस पर प्रकृति ने कृपा करके उसको सुन्दर बनाया है। प्रेम आत्मा से होता है, शरीर से नहीं परिवर्तन प्रकृति का नियम है, आत्मा का नहीं। आत्मा का सम्बन्ध अमर है।''[3]

इसके पश्चात चित्रलेखा का उत्तर और भी अधिक तर्कपूर्ण है-आत्मा का सम्बन्ध अमर है। बड़ी विचित्र बात कह रहे हो बीज गुप्त। जो जन्म लेता है वह मरता है, यदि कोई अमर है तो अजन्मा भी है। जहां सृष्टि है, वहां प्रलय भी रहेगा, आत्मा अजन्मा है, इस लिए अमर है, पर प्रेम अजन्मा नहीं है कि व्यक्ति

---

1 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज-
2 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 58
3 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 59

से प्रेम होता है तो उस स्थान पर प्रेम जन्म लेता है। सम्बन्ध होना ही उस सम्बन्ध का जन्म लेना है। वह सम्बन्ध अनन्त नहीं, कभी न कभी उस सम्बन्ध का अन्त होगा ही। प्रेम और वासना में भेद केवल इतना है कि वासना पागलपन है जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागल पन के साथ दूर हो जाती है, और प्रेम गम्भीर है।''[1] चित्रलेखा और बीज गुप्त के जो दृष्टिकोण प्रेम-सम्बन्धी अतियथार्थ पक्ष को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें वर्मा जी की अन्तर्दृष्टि झलकती है।

इन दोनों पहलुओ पर विस्तार से सोचने का यही कारण है कि सम्भवत वर्मा जी इन दोनो 'अतिवादी विचारों' की मीमांसा करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ''प्रेम आत्मिक और शारीरिक आकर्षण का दूसरा नाम है जहाँ केवल आत्मिक आकर्षण होता है, वहा हम उसे मित्रता कहते हैं। इसी मित्रता और वासना के सम्मिश्रण का नाम प्रेम है।''[2] वर्मा जी के उपन्यास -रेखा' में इसी दृष्टिकोण को योगेन्द्रनाथ भी अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं-''प्रेम आत्मा और शरीर इन दोनों के समान भाव से एक दूसरे में लय की प्रक्रिया का नाम है।''[3] और विवाह के सम्बन्ध में वर्मा जी का जो दृष्टिकोण है वह पूर्णतया स्पष्ट है। वर्मा जी के उपन्यास 'तीन वर्ष' के अजीत के शब्दों में उनके विचार द्रष्टव्य हैं-''स्त्री को आश्रय देना उसकी रक्षा करना, यह पुरुष का कर्तव्य है, इसलिए प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य समझा गया है कि वह एक स्त्री को आश्रय दे, साथ ही उस स्त्री को अपना कर उसे पूर्ण बनावे। सृष्टि में पुरुष अपूर्ण है। क्योंकि उसके ममत्व पर केन्द्रीभूत होने के कारण उसमें दया-त्याग सहानुभूति आदि की कोमल भावनाओं का आभास सा है और साथ ही स्त्री भी अपूर्ण है। क्योंकि उसमें अधिकार, वीरता, साहस आदि का अभाव है, इसलिए स्त्री और पुरुष के मिल जाने से ही जीवन पूर्ण होता है। फिर काम वासना का भी प्रश्न स्त्री और पुरुष के साथ होने से हल हो जाता है इसलिए विवाह का जन्म हुआ।''[4] वर्मा जी की दृष्टि से

---

1 चित्रलेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज 59
2 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-48
3 रेखा, भगवती चरण वर्मा, पेज- 217
4 तीन वर्ष, भगवती चरण वर्मा, पेज-50

विवाह का आधार प्रेम नहीं, विवाह एक सामाजिक संस्था है, जिसके द्वारा पुरूष स्त्री के भरण पोषण तथा उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है। लेकिन पश्चिमी दृष्टिकोण के हिसाब से प्रेम को ही विवाह का आधार माना गया है जो वहा के समाज के भावभूमि में दिखाई पड़ता है।

वर्मा जी के उपन्यासों की मूल टेक है-मनुष्य परिस्थितियों का दास है, किन्तु इस सीमा को स्वीकार करने के बावजूद उन्होंने वैयक्तिकता को जगह-जगह सामाजिकता में संक्रमित करने की चेष्टा की है। इसी वैयक्तिकता में सामाजिकता के संक्रमणता में आधुनिकता का बोध होता है। चित्रलेखा में परिदृश्य और व्यक्ति का अन्तर्विरोध है फिर भी इसका परिवेश और मूल्य दृष्टि अलग है इसी बोध में आधुनिकता बोध है। इसमें सन्देह नहीं कि पाप-पुण्य की कोटियों पर दिया गया महाप्रभु रत्नाम्बर का निर्णय बहुत ही सरलीकृत है किन्तु पाप-पुण्य को यौन सम्बन्धों के साथ जोड़ना एक नये दृष्टिकोण का सूचक है। इसी में आधुनिकता बोध है।

बीजगुप्त और चित्रलेखा नियति के दास नहीं है वे स्वतन्त्र निर्णय भी लेते हैं। चित्रलेखा का योगी कुमारगिरि के कुटिया में जाना उसका स्वतन्त्र निर्णय है। इसी तरह यशोधरा को छोड़कर चित्रलेखा के साथ चले जाने का जो निर्णय बीजगुप्त लेता है वह उसकी अपनी पहचान को बनाता है, बीज गुप्त निर्णय की स्वतन्त्रता को प्रतिष्ठित करता है। व्यक्ति स्वातन्त्रय और जिम्मेदारी के अद्‌भुत सम्मिश्रण का यह पहला उद्‌घोष।''[1] इस नियति के साथ व्यक्ति की स्वतन्त्रता में ही आधुनिकता बोध है।

टेढ़े-मेढे रास्ते एक राजनीतिक उपन्यास है 'चित्रलेखा' में जो मूल्य दृष्टि उभरती है वह 'टेढे मेढे रास्ते' में गायब हो गयी है लेकिन टेढेमेढे रास्ते के रामनाथ तिवारी की अहंवादी मूल्य है जो उनको सामंती परिवेश से बांधे हुए हैं, उन्हीं के लड़के की जीवन दृष्टि अलग विचारधाराओं से बंधी है जो अटूट है, यह

---

1 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा0 बच्चन सिह, पेज-337

दृढता उन सबको पिता रामनाथ तिवारी के अंहवादी मूल्यों से ही प्राप्त हुआ है, इसमें गाधीवाद, क्रान्तिवाद और साम्यवाद सभी टेढ़ेमेढ़े हैं यही लेखक की अन्तर्दृष्टि आधुनिकता का बोध करवाती है। गांधीवाद के साथ तो लेखक की एक हद तक तो सहानुभूति दिखाई पड़ती है पर क्रान्तिकारियों का माखौल उड़ाना, तथा साम्यवाद की विदुषकीय भर्त्सना करना लेखक के अपने पूर्व निर्दिष्ट विचारो का प्रक्षेपण है।

'भूले-विसरे चित्र' 1885 से 30 तक की अनेक राजनीतिक उथल-पुथल और आर्थिक-सामाजिक, नैतिक परिवर्तनों का आलेख है। गहन वैचारिक उद्वेलन और तीव्र प्रभाव में भी यह उपन्यास महत्वपूर्ण बन गया है। चार पीढियों की कथाओं में हर नई पीढी अपनी मानसिकता में पुरानी पीढ़ी से अलग हो जाती है। जहां सामंतवादी पीढ़ी टूटने के बाद नौकरी पेशा का नया वर्ग उभरता है जो अंग्रेजी हुकूमत के प्रति वफादार तो है पर तीसरी पीढी के मन में वैयक्तिकता और सामाजिकता का गहन अन्तर्द्वन्द्व आधुनिकता का बोध है-जैसे वह मरते समय अपने पुत्र नवल से कहता है-'एक दिन मैंने अपनी नौकरी, गुलामी और विवशता से विद्रोह किया था। मेरे अन्दर वाला वह विद्रोह वास्तविक था। ज्ञान चाचा जानते हैं इस बात को, मैंने यह तय कर लिया था कि मैं इस्तीफा दूंगा। लेकिन अनायास ही मेरे अन्दर वाली कायरता को एक छोटा सा सहारा मिल गया और मेरी कायरता मुझ पर चढ बैठी। . मैं उसी समय टूट गया था जब मैंने अपना इस्तीफा फाड़ डाला था पिछले आठ दस साल में केवल घिसटता रहा हूं। अब उसका भी अन्त आने वाला है, और आज मैं खुश हूँ।'' इस अन्तिम सोच से ही स्वतन्त्रता के प्रति जागरूकता का जो बोध पैदा होता है वही आधुनिकता बोध है। पूंजीवाद के उदय, उसकी जकड़ और बुर्जुआ, राष्ट्रीय आन्दोलन में साभिप्राय शिरकत को भी वर्मा जी ने सही दृष्टिकोण से उभारा है। हिन्दू मुस्लिम समस्या को बुद्धि के चश्में से देखकर जो सच्चाई उभारी गयी है आधुनिकता बोध का द्योतक है।

'भूले विसरे चित्र' की कथा पूरे राष्ट्रीय धरातल पर पीढ़ियों और वर्गों के सघर्षो के माध्यम से उभरती है। परिवार वर्ग और राष्ट्र की गतिशील चेतना पचास वर्षो के काल की यात्रा करती हुई चुकते और उभरते हुए मूल्यों, सम्बन्धों तथा उनके द्वन्द्वों को बहुत सच्चाई स्थापित करती है।"[1] पारिवारिक सन्दर्भ में संयुक्त परिवार का टूटते जाना आधुनिक काल की प्रमुख ऐतिहासिक परिणतियों में से एक है। सयुक्त परिवार अपने टूटने से बचाव का कार्य करता है परन्तु ऐतिहासिक परिणति को झेल नहीं पाता है। क्योंकि धीरे-धीरे परिवार का अलगाव मध्यम वर्ग की प्रकृति बन जाता है।

वर्मा जी ने इन पारिवारिक पीढ़ियों को राष्ट्रीय पीढ़ियों के रूप में भी देखा है-"ऐतिहासिक सन्दर्भ में राष्ट्रीय चेतना का जो विकास हुआ उसके प्रतीक हैं-मुंशी शिवलाल, ज्वाला प्रसाद, गगाप्रसाद और नवल। मुंशी शिवलाल सामन्ती परम्परा और नौकर शाही परम्परा के मिलन बिन्दु पर खड़े है, संयुक्त परिवार की चेतना तथा तज्जन्य आचरण उन्हें सामन्तवाद से जोड़ता है। घूसखोरी, चालाकी, स्वार्थ जन्य, मूल्यहीनता उन्हें नौकरशाही से सम्पृक्त करती है। एक दम टिपिकल है मुंशीजी। ज्वाला प्रसाद उगती हुई नौकरशाही तथा चुकते हुए सामंतवाद के अनुभव बिन्दु पर खड़ा है।"[2] 'भूले विसरे चित्र' में मुंशी शिवलाल एक ऐसे पर्यवेक्षक हैं जो अपने जीवन काल में सामन्ती जीवन को टूटते, मध्यवर्ग को पनपते और अन्त में मध्यवर्गीय धारणाओं के ह्रास को मूक दर्शक की भांति देखते रहे हैं। 'सामर्थ्य और सीमा' की रानी मान कुमारी अपने ही राज्य में अतिथि की भांति हो गयी है। उनके निजी अधिकार सम्पत्ति महल इत्यादि समस्त सरकार के अधीन हो जाते हैं।

---

1. हिन्दी उन्यास एक अन्तर्यात्रा, पेज-150 रामदरश मिश्रा, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0
2 भूले-विसरे चित्र भगौती चरण वर्मा- पेज

वैधव्य पीड़ा से आहत 'सामर्थ्य और सीमा' की रानी मान कुमारी का सभी पुरूषों के साथ मृदुल व्यवहार उसकी नारी स्वभाव की सुकोमलता से सम्भव हुआ है। वृद्धिमेजर नाहर सिंह एवं देवलंकर इंजीनियर के सम्पर्क में आकर उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होना स्त्री पुरूष में समभाव से प्रेरित हुआ है। नशे मे बदहवास मेजर का रानी के स्निग्ध स्पर्ष से कह उठना–"रानी बहु, तुम स्त्री नहीं देवी हो, कितनी दया, कितनी ममता, कितनी करूणा बटोर लायी हो तुम अपने में।"[1] यहाँ स्त्री पुरूष सम्बन्धों में नवीन आयाम मुखरित करता है।

आधुनिकता की दृष्टि से भारत की विगलित राजनीति का प्रतीक 'सबहि नचावत राम गोसाई' का जबर सिह नैतिकता अनैतिकता की चिन्ता किए बिना चुनाव जीतने की कामना रखता है राजनीतिक धरातल पर आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थ को अधिक उपयुक्त स्वीकार करते हुए उसका कथन है–"आदर्शवाद का युग देश के स्वतन्त्र होते ही समाप्त हो गया है अब आदर्शवाद एक नाराभर रह गया है। असली चीज अपनी सत्ता की रक्षा और सत्ता की रक्षा केवल पैसे के बल हो सकती है।"[2] सदा शिव गौतम के सहारे राजनीति में प्रवेश करता है। कालान्तर में उसी के साथ विश्वासघात करते हुए प्रदेश का मन्त्री बनना, ताल्लुकेदार गम्भीर सिह को चुनाव में पराजित करते हुए उसकी पुत्री धनवंत कुंवर से विवाह कर ठाकुर बनना एव अन्तत रामलोचन पाण्डेय से बारह सौ मतों से पराजित होकर भाग्य के सहारे गिरना, राजनीति में व्याप्त अनैतिकता को दर्शाता हुआ उसकी पराजय सिद्ध करता है। इस उपन्यास का शीर्षक ही अपने आप में प्रासंगिक एवं चिरकालिक है। शाश्वत है जो आधुनिका की दृश्टि से परिपूर्ण दिखाई पड़ता है। इस उपन्यास में आज की राजनीति एवं पूँजीवादी व्यवस्था से साम्यता रखते हुए दिखाई पड़ता है।

---

[1] सामर्थ्य और सीमा, भवगती चरण वर्मा, पेज – 74-75

[2] सबहिं नचावत रामगुसाई, भगवती चरण वर्मा, पेज 97

'भूले-विसरे चित्र' के ज्वाला प्रसाद अर्थ को ही सत्ता मानते हैं-"सत्ता इस युग मे भुजबल में नहीं, सत्ता अब रूपये में है। जीवन की समस्त बुराइयों के मूल मे अर्थ को ही कारण मानते हैं।"[1] 'सामर्थ्य और सीमा' का प्रसिद्ध उद्योगपति रतनचन्द मकोला तो रूपये को ही शक्ति, देवता और सब कुछ मानता है।"[2] यहां तक कि अर्थ के बल पर ही वह प्रशासन में भी हस्तक्षेप को नैतिक मानता है। "सवहि नचावत राम गोसाईं" का मेवालाल महाजनी वृत्ति का प्रतीक है-"उन्होने अपने यहां तीन मुनीम रख लिए थे एक जाली वहीखाते और दस्तावेज बनाता था, दूसरा ब्याज का हिसाब-किताब रखता था और तीसरा मुनीम दिन भर कचहरी में रह कर मुकदमेंबाजी करता।" गरीबों के लूट्ने को यह उपक्रम था। इसी प्रकार पूंजीपति का प्रतीक सेठ राधेश्याम का मजदूर नेताओं को रिश्वत देकर शान्त करना पर स्वीकार करना-"हम सब अपने चेहरों पर तरह तरह के मुखौटे लगाए हुए है।"[3] दोहरे नैतिक प्रतिमानों को उजागर करता है। लेकिन निम्न वर्ग में आब शोषण के प्रति विद्रोह भड़क उठा है-"सभी लोगों ने उस ओर देखा जिधर शोर हो रहा था, और उन्होंने देखा आठ-दस नेता दिखने वाले युवकों के पीछे-पीछे पचास-साठ किसानों का एक दल लाठियों काँटों और बल्लमों से लैस बढा जा रहा है।"[4] अर्थ संघर्ष से उद्भूत वर्ग संघर्ष की इस क्रान्ति में पुलिस का प्रतिनिधि हिम्मत सिंह भी किसानों का पक्ष लेता है। "राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में आर्थिक सन्तुलन के प्रजातान्त्रिक प्रयास अर्थ संघर्ष के गर्भ से ही उत्पन्न होते रहे है।"[5] इस अर्थ संघर्ष में ही आधुनिकता बोध है।

जिस प्रकार से वर्मा जी 'सामर्थ्य और सीमा' में सुमनपुर की सारी जायदाद सरकार द्वारा हड़प लिए जाने पर अर्थ की समस्या उत्पन्न होती है। तो रानी मानकुमारी, अर्थ एवं वासना की कमी को महसूस करती है और तरह के

---

[1] भूले विसरे चित्र, पेज- 44
[2] सामर्थ्य और सीमा, पेज 13
[3] सबहि नचावत रामगुसाई, पेज 193
[4] सबहि नचावत रामगुसाई, पेज 197
[5] हिन्दी उपन्यास तीन दशक, डा0 राजेन्द्र प्रताप कौशल, पेज 131

लोगों (जो सुमनपुर के विकास के लिए) प्रभावित होती है, आश्रय पाना चाहती है। उसी प्रकार 'वह फिर नहीं आई' में एक शरणार्थी दम्पत्ति की समस्या है। "शरणार्थी समस्या हमारे देश की नहीं, आज के उजड़े और नये शिरे से बसने के युग मे समस्त मानव समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या है-रक्त और आंसुओं से भीगी हुई, आहो मे धुधली पड़ी हुई, पशुता और दानवता में नग्न रूप को प्रदर्शित करती हुई।"[1] इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता के अग्नि में जीवन राम और उसकी पत्नी रानी श्यामला भारत पाक बटवारे के समय समस्त धन वैभव से हाथ धो बैठ्ते हैं। शाहबान की कुत्सित मानसिकता इस अवसर का खेल खेलती है जो जीवनराम को अग्नि से निकालता है लेकिन रानी श्यामला को बीस हजार रूपयों में बन्धक रख लेता है। जीवन राम का बीस हजार रूपये इकट्ठा करके रानी श्यामला के चंगुल से छुड़ाना। उधर श्यामला अपना शरीर बेंचकर रूपया इक्ट्ठा करने लगती है, किन्तु उसकी आत्मा उसका साथ नहीं देती है। इसी बीच श्यामला का परिचय कानपुर के व्यावसायी ज्ञानचन्द से होता है। जीवन राम का ज्ञानचन्द के यहां गबन के लिए गबन करना। ज्ञानचन्द पुलिस में रिपोर्ट करता है तो जीवन राम कहता है-"ज्ञानचन्द जी, आप पुलिस में रिपोर्ट न कीजिए, यही अच्छा होगा मेरी पत्नी के साथ आप व्यभिचार करते रहे, इस बात का मुकदमा मैं पुलिस में दायर कर सकता हूं   आप ने इसके साथ ऐश किया है, इसका सबूत मेरे पास है आपने मेरी पत्नी ली, मैंने आपका रूपया लिया हिसाब किताब बराकर हो गया।"[2] इस सोच में आधुनिकता बोध का प्रस्फुटन दिखाई पडता है।

रानीश्यामला का चरित्र तमाम उतार चढ़ाव के झंझावातों से घिरा हुआ है एक असहाय नारी की उद्विग्नता तथा पति के प्रेम की पराकाष्ठा उसमें किस सीमा तक है वह रानी श्यामला के चरित्र से पता चलता है वह ज्ञानचन्द से

1 फिर वह नहीं आयी, भगवती चरण वर्मा, पेज 24
2 फिर वह नहीं आयी, भगवती चरण वर्मा, पेज 42

कहती कि मैं जीवन राम के कर्ज से मुक्त होना चाहती हूं जीवन राम के प्रति वियोग उसके मन में समाज के प्रति एक आक्रोश और प्रतिक्रिया भर जाता है। और लोगों की जिन्दगी नष्ट कर के समाज से बदला लेती घूमती है। वह ज्ञानचन्द से कहती है-"कटुता! ज्ञानचन्द जी, आज कई वर्षो से दुनिया ने मुझे कटुता के घूँट ही तो पिलाए हैं, फिर भला मुझमें कोमलता कैसे हो? लोग मेरा शरीर पाना चाहते हैं। मेरी आत्मा की तरफ भी कभी किसी ने देखा है? कितना बडा अभाव है मेरे जीवन में, कितना सूनापन है मेरे प्राणों में काश लोग बाग यह देख सकते तो वे मुझसे दूर भागते मेरे प्राण भोग विलास के भूखे नहीं हैं, उन्हें भूख है ममता की, हमदर्दी की। लेकिन सब अपने में गर्क हैं अपना सुख चाहते हैं, अपने को सन्तुष्ट करते हैं। ऐसी हालत में अगर मुझमें कटुता आ गयी है तो ताज्जुब क्या है? . मैं अपनी कटुता को बड़े मजे में छिपा लेती हूँ जिस समय प्राण रोते हैं मेरे होठों पर हंसी रहती है लेकिन इस सब में मुझे अब तकलीफ नहीं होती। जीवन राम को खोने की तकलीफ सह चुकी हूं न!"[1] इस कथन में रानी श्यामला के दृष्टिकोण से समाज के तरफ कुत्सित एव घृणित मानसिकता को उजागर करता है साथ ही श्यामला जीवन राम की ममता को जीवन पर्यन्त कभी भुलानहीं सकी।

इन चरित्रों से उद्घाटित होता है कि वर्मा जी ने नैतिकता के पुराने मानदण्डों को छोडकर नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। जिसमें आधुनिकता बोध की दृष्टि झलकती है। यहां पर वर्मा जी का दृष्टिकोण मन की पवित्रता के सन्मुख शरीर की पवित्रता-अपवित्रता पर महत्व नहीं देते, इसके अतिरिक्त जीवन में अर्थ की महत्ता एवं विस्थापितों की समस्या को भी एक दम्पत्ति की करूण कथा के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इस कहानी के गढाव में आधुनिकता बोध की दृष्टि झलकती है।

---

1 फिर वह नहीं आयी, भगवती चरण वर्मा, पृष्ठ सख्या-109

'आखिरी दॉव' में भी लेखक ने ऐसे ही अर्थ लोलपों का चित्रण किया है जिसमे दो भोले-भाले ग्रामीणों की जीवनधारा को ही बदल दिया है। वर्मा जी का नियतिवादी और परिस्थितियों का चक्र वाला दर्शन रामेश्वर और चमेली को नियत ऐसी परिस्थितियों में डाल देती है और परिस्थितियों के निर्माण में निमित्त बनता है अर्थ। रामेश्वर कहता है-"चुप रह, मुझे अपनी बात पूरी कह लेने दे हम सब पैसे के गुलाम हैं, धन ईश्वर है, हमारा अस्तित्व है। इस पैसे की दुनिया में न पाप है, न पुण्य है, न प्रेम है, न भावना है-जो कुछ है वह धन है। झूठ, अविश्वास, छल-कपट की दुनिया के हम लोग प्रधान नागरिक हैं, हम दोनों में किसी को किसी से शिकायत न होनी चाहिए। जिसके पास पैसा है, सब कुछ खरीद सकता है, रूप, यौवन, शरीर, आत्मा। सब बेंच रहे हैं अपने को धन के पिशाच के हाथों चमेली, हम दोनों भी अपने को धन के उस पिशाच के हाथों बेच चुके हैं।"[1] यहां पर लेखक ने यह दिखाया है कि जीवन की समस्या अर्थ ही है। मानवता के दृष्टिकोण से रामेश्वर कहता है कि-"अब मुझमें और तुममें कोई सम्बन्ध नहीं रह गया, रह भी नहीं सकता अगर मैं तुझ पर कोई अधिकार समझता हूँ तो अपने को धोखा देता हूं और इस धोखे की दुनिया को मैं आज नष्ट कर रहा हूँ। मुझे केवल इतना कहना है, तू समर्थ है, तू स्वतंत्र है। नियति के हिलोरों में बहते-बहते हम दोनों अनायास ही एक दिन साथ आ गये थे-आज वह साथ छूट रहा है। तू फल-फूल, तू जिन्दगी में सफल बन, तू भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर। मैं भी यही करूँगा-यही कर रहा हूँ।"[2] इसमें स्त्री के जीवन में अर्थ की स्वतंत्रता और रामेश्वर का पत्नी से असीम प्रेम का आभास मिलता है।

इस घटना के परिणाम स्वरूप शीतल प्रसाद रामेश्वर की जान का दुश्मन बन जाता है। रामेश्वर को पकड़वाने के लिए जुएँ के अड्डे की सूचना पुलिस को दे देता है। रामेश्वर को बचाने के प्रयास में चमेली शतीला प्रसाद की हत्या कर देती है।

---

1 आखिरी दाँव, भगवती चरण वर्मा, पृ0स0 228
2 आखिरी दाँव, भगवती चरण वर्मा, पृ0स0 229

इस प्रकार से एक प्रेमी के प्रति एक प्रेमिका का उत्कट प्रेम उद्‌घाटित होता है।

'अपने खिलौने' उपन्यास में उच्च वर्गीय समाज के वैचित्रय पूर्ण जीवन का व्यंगात्मक चित्र अमीरों की सोसाइटी 'कला-भारती' के माध्यम से उद्‌घाटित किया है। इस उपन्यास के एक चरित्र वीरेश्वर प्रताप प्रेम कौशल में माहिर हैं जिसके प्रेम कौशल में मीना, अन्नपूर्णा और केरा कोमल अपनी निजी कामवृत्तियो के कारण वीरेश्वर प्रताप के ढोंग में फंसती है। इस उपन्यास में जयदेव भारती पिता पद की मर्यादा का उल्लंघन करके कहते हैं "और मीना तुमने अपने ड्रेस का आर्डर दे दिया कि नहीं। बड़ी शानदार पार्टी होगी। अच्छी से अच्छी ड्रेस होनी चाहिए, बस तुम्ही तुम दिखो। तुम प्रमुख अतिथि हो न।"[1] बेटी को आकर्षक बना कर सबको प्रभावित करने के लिए प्रेरित करना उच्च वर्ग की भौड़ी मनोवृत्ति को अनावृत्त कर देता है। इस उपन्यास की एक-एक घटना सम्पन्न अभिजात वर्ग की मनोवृत्तियों का उद्‌घाटन कर देती है।

आधुनिक उच्च वर्गीय युवक-युवतियों के सस्ते एवं स्वच्छन्द रोमांस, प्रदर्शनप्रियता, पूजीपतियो की स्वार्थवृत्ति, उच्च पदस्थ राजकर्मचारियों की तफरीह, नेताओं द्वारा व्यस्तता का ढोंग एवं उनकी अज्ञानता आदि का उपन्यासकार ने उन्मुक्त हास्य व्यंग्य के द्वारा उभारा है।

फिल्मी जीवन की विकृतियाँ फिल्म प्रोड्यूशर रामास्वामी चेट्यिार और सैदा का कामुक चरित्र और गैर जिम्मेदार आचरण फिल्मी हस्तियों पर करारा व्यंग्य करता है। यहाँ पर लेखक रामास्वामी के द्वारा अर्थ की पैशाचिक शक्ति का उद्‌घाटन भी कर देता है-"सेक्रेटरी तो क्या कर लेगा? यहां सेक्रेटरी बिकते हैं। उनकी लडकियाँ बिकती हैं, बड़े-बड़े मिनिस्टर तक बिकते हैं। दुनियां में कौन ऐसा है जो न बिक सके कीमत चाहिए उसकी।" यहां पर जीवन में अर्थ प्रधानता को नये दृष्टिकोण से अभिव्यंजित किया गया है। इस समूचे प्रकरण के उद्‌घाटन में

---

[1] अपने खिलौने, भगवती चरण वर्मा, पेज 14

उच्च वर्ग की भौड़ी प्रदर्शन प्रियता लेखक ने नये दृष्टिकोण से देखा है जिसमें आधुनिकता का बोध होता है। यहाँ पर उपन्यास लेखक मानसिक दशाओं का चित्रण कम और शारीरिक यौन सम्बन्धों का चित्रण अधिक किया है। यह दावा किया है कि उपन्यास में मीना, अन्नपूर्णा, केरा कोमल आदि जो करती हैं वही उच्च वर्गीय समाज मे हो रहा है। लेखक ने अपने पात्रो को नैतिकता के बधन से मुक्त रखकर भौतिक कारणो से परिचालित होते हुए प्रदर्शित किया है। उपन्यास में स्वतन्त्रता के बाद उच्च वर्ग के हर वर्ग के समस्याएं उभारा है, किन्तु सेक्स और अर्थ के सामने सब गौड़ है। भाषा में स्वाभाविकता है। वैसे उपन्यास जीवन के एक प्रमुख पक्ष का उद्घाटन करता है।

आधुनिकता बोध किसी भी मनुष्य को एक नयी दृष्टि एवं दृष्टिकोण प्रदान करता है। क्योंकि दृष्टिकोण शास्वत धर्मी होने के बावजूद विकासमान होता है, वह रूकता नहीं, ठहरता नहीं, वह अनवरत गति से चलता रहता है। इसलिए किसी विशिष्ट युग के सांस्कृतिक बोध को अपना कर हम सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय नहीं हो सकते। क्योकि वर्तमान में मनुष्य एक बार फिर नई सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करता है, जो शाश्वतधर्मी होने पर भी वर्तमान की चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। "वर्मा जी" ने जिस युग को अपने उपन्यासों में चित्रित किया, वह युग सांस्कृतिक उत्थान के महान प्रयत्नों से ओत-प्रोत था। ब्रह्म समाज के अन्तर्गत राजाराम मोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, आर्य समाज के अन्तर्गत स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, और विवेकानन्द के सद्प्रयासों से देश में नवजागृति, स्वाभिमान और भारतीय संस्कृति के नव सस्कारो का सूत्रपात्र किया है।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में ऐसे कुछ स्थलो का जिक्र मिलता है। "भूले विसरे चित्र" में स्वामी जटिलानन्द आर्य समाज के अधिवेशन के माध्यम से उपन्यासकार ने आर्य समाज की गतिविधियों का आभास कराने का प्रयत्न किया। पण्डित सोमेश्वर दत्त आर्य समाज के अनुयायी और समर्थक हैं, उनके

आचार विचार में आर्य समाज का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनका कथन है, "जो कुछ हो रहा है-वह अच्छा ही हो रहा है। किसी तरह इन म्लेच्छ यवनों का शासन तो अपने ऊपर से हटा, देश की अराजकता दूर हुई, जुल्मों से त्राण मिला, हर जगह अमन-अमान फैला। भला इसे बुरा कौन कह सकता है? लेकिन इन सब के साथ बात जरूर है-विदेशी हरहालत में विदेशी ही रहेगा।"[1] इस दृष्टिकोण से यह पता चलता है कि व्यक्ति की राष्ट्र की स्वतन्त्र सत्ता होनी चाहिए। यदि स्वतन्त्रता नहीं तो वह सुखदायी नहीं हो सकता है। क्योंकि स्वदेशी में अपनी स्वतन्त्रता की बात झलकती है तथा विदेशी राज्य में स्वतन्त्रता बाधित होती है।

ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज ने देश का खोखलापन दूर करने का प्रयास किया था "सीधी-सच्ची बातें" से देखा जा सकता है, "राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और न जाने कितने लोग। इन लोगों ने हिन्दू धर्म में न जाने कितने सुधार किये, हिन्दू धर्म का वह खोखलापन, जो इसे खाये जा रहा था, उन्होने दूर किया। ब्रह्म समाज ने ईसाईमत से मोरचा लिया, आर्य समाज ने इस्लाम से मोरचा लिया।[1] लेकिन इन सब के अलावा यह युग सक्रमण का युग था। अनेक विचारधाराएं अपना प्रभाव डाल कर प्रभुत्व स्थापित करने लगी थीं। एक तरफ आर्य समाज की ओर से बलपूर्वक मुसलमान या ईसाई बनाये गये लोगो के शुद्धीकरण का काम चल रहा था, तो दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुओ को ईसाई बनाये। ईसाई यूरोपियन समाज में मिल जाने के लिए लालायित दिखते थे जबकि यूरोपियन "नेटिव क्रिश्चियन" से उतनी ही घृणा करते थे, जितना की हिन्दुओं से। अपने प्रसिद्ध उपन्यास "भूले बिसरे चित्र" के तीसरे खण्ड के प्रथम परिच्छेद के प्रारम्भ में लेखक ने इस धार्मिक उथल-पुथल का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। गंगा प्रसाद के माध्यम से आर्य समाज में इक्ट्ठे हुए लोगों को जाहिल और गंवार के रूप में कहलवा देते हैं। जिसमें लोक धारणा की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है।

---

1 भूले विसरे चित्र, भगवती चरण वर्मा, पेज 238

उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में हिन्दू धर्म की सड़ी गली परम्पराओं तथा व्यवस्थाओ का डटकर विरोध किया, उसमें भी वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति उनका आक्रोश झलकता है। धर्म के नाम पर जो छल प्रपंच चल रहा था उसका भी खुलकर विरोध किया है। हिन्दुओं के जाति व्यवस्था को 'भूले बिसरे चित्र' में छिनकी और मुशी शिवलाल के माध्यम से है कि हिन्दुओं में पर जाति की स्त्री के हाथ का खाना निषिद्ध है, दूसरी जाति की स्त्री को रखैल के रूप में रखना निषिद्ध नहीं है। ऐसे ही छोटे-छोटे अन्धविश्वास प्राय हमें बड़ी-बड़ी असुविधाओं और परेशानियो मे डाल देते हैं जिससे हमारे समाज और राष्ट्र का विकास बाधित हो जाता है।

'प्रश्न और मरीचिका' में उपन्यासकार ने धर्म की विसंगतियों के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है-आज हमारे यहां धर्म के नाम पर भजन-कीर्तन का आयोजन होता है जहां बड़े-बड़े शिक्षित परिवारों की स्त्रियां पाखण्डियों के बीच अपना समय बर्बाद करती हैं।[2] इतना ही नहीं कुछ स्त्रियाँ ढोंगी साधुओं के संसर्ग में अपना सतीत्व भी गवां देती हैं। एक ओर धर्म की आड़ में ऐसा ढोंग और दुराचार चलता है, तो दूसरी ओर धर्म के बन्धन से जकड़ा व्यक्ति अपने प्रति पूर्ण समर्पित और ईमानदार को प्रश्रय देने में असमर्थता का अनुभव करता है। कुछ अर्थ के लोलुप व्यक्ति धर्म के माध्यम से धन अर्जित कर लेने की योजना बना लेते हैं। मेवा लाल जबर्दस्ती म्यूनिसपैलिटी की जमीन हथिया कर उस पर आलीशान मन्दिर बनवाकर सैकड़ों रूपये की मासिक आय करने लगता है और उसका पुत्र राधेश्याम उसी मन्दिर के नीचे तहखाना बनवा कर सोना चांदी इक्ट्ठा करने लगता है। अत. यह कहा जा सकता है कि अमीर और समर्थ व्यक्ति समाज में धर्म की आड़ में अर्थकामी प्रवृत्ति को अन्जाम देने का रास्ता निकाल लेते हैं।

---

1 सीधी-सच्ची बातें, भगवती चरण वर्मा, पेज 154

2 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 55

'सीधी-सच्ची बातें' उपन्यास में भी हिन्दू और इस्लाम धर्म पर विभिन्न दृष्टिकोणो से वर्मा जी ने जगत प्रकाश और जमील अहमद के वार्तालाप के माध्यम से विचार किया है। वे समस्याए आज भी हिन्दू मुस्लिम के बीच बनी हुई हैं और वह समस्या है साम्प्रदायिकता की जिसे लेखक ने अपने दृष्टिकोणों से उभारा है।

'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास में लेखक ने देश की समस्या के सम्पूर्ण बिन्दुओं पर अपनी दृष्टि अपने दृष्टिकोण से डाली है। देश के नेताओं, उद्योगपतियों, चीनीयुद्ध के समय भारतीय फोजी अफसरों की भीरूता आदि पर व्यग्य किया है तथा उसे अपने दृष्टिकोण से उभारा है।

'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास में अनेक कथाओं के रहते हुए भी केवल कथा कहने के लिए नहीं लिखा गया है वरन् उसकी रचना सोद्देश्य हुई है उपन्यास का मुख्य उद्देश्य स्वतन्त्रयोत्तर भारत का चित्रण करना है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक कथा का निर्माण किया गया है और प्रासगिक रूप में अनेक कथाएं भी आ गयी हैं।

इस उपन्यास में वर्मा जी वृद्धावस्था का चित्रण किया है अब तक अपने अधिकतर पात्रों की युवावस्था का विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रण किया है। इस उपन्यास मे एक होटल के मालिक मेलाराम और जयराज उपाध्याय के द्वारा वृद्धावस्था से गुजर रहे दो व्यक्तियो का सुन्दर चित्रण किया गया है। एक ओर मेलाराम है, जिनमे अपने स्वार्थी पुत्र के कारण वृद्धावस्था की उदासीनता और निराशा भर गई है, अपने पुत्र द्वारा अवहेलना की ग्लानि उनहें भुगतनी पड़ती है और वह इसी क्रोध में अपने पुत्र को अपनी व्यक्तिगत पूंजी से वंचित रखना चाहते हैं। अन्तत वात्सल्य भाव को गरिमा से मंडित कर लिया है। हजा के समाज में वृद्धावस्था की वह समस्या उसी तरह से बनी हुई। जिस पर लेखक ने अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्त किया है।

'प्रश्न और मरीचिका' उपन्यास में जहाँ भारतीय जनजीवन में व्याप्त विविध विकृतियों से उत्पन्न निराशा जनक स्थिति को वर्मा ने चित्रित किया है वहीं उपन्यास के अन्त में आशा की एक झलक दिख जाती हैं जहां उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र देश के उत्थान की संभावना व्यक्त करता है–"तुम जिस गंदगी में रह रही हो, उसके मुकाबले यहा की गन्दगी कुछ भी नहीं है। यहा कुछ भी ऐसा नहीं है जो वहां तुम्हारे यहां न हो। और यह राजनीतिक चरित्रहीनता, यह भ्रष्टाचार, यह तो हम लोगों को तुम विदेशियों से ही विरासत के रूप मे मिले हैं। हम लोग इसके ऊपर उठेंगे, हम उठने भी लगे हैं। लेकिन–लेकिन तुम्हारी यह सभ्यता और संस्कृति। यह तो नितान्त अमानवीय है, जहां न दया है, न प्रेम है, न भावना है।"[1] इस सोच से स्पष्ट हो जाता है कि देश की उपर्युक्त पतितावस्था के लिए वर्मा जी विदेशी शासन को ही उत्तरदायी मानते हैं। यह मन्तव्य लेखक के आधुनिकता बोध के तरफ इंगित करता है।

वर्मा जी अपने सम्पूर्ण उपन्यासों में किसी न किसी समस्या को लेकर चले हैं और उसमे अपने दृष्टिकोण को पूरा सहभागी बनाए हैं। उनके उपन्यासों में 'धुप्पल' को श्रीलाल शुक्ल ने आत्म कथा कहा है।[1]

वर्मा जी के सम्पूर्ण उपन्यास में किसी न किसी शाश्वत समस्या को ही उठाया है जैसे चित्रलेखा उपन्यास में पाप–पुण्य की समस्या आज भी समाज में बनी है लेकिन उसके मूल्य बदल गये हैं, फिर भी निरन्त बने हुए हैं जिस पर लेखक का मन्तव्य है कि पाप पुण्य कुछ नहीं है यह विचारों मान्यताओं पर निर्भर है। अपने 'तीन वर्ष' में शिवविद्यालय के मध्यवर्ग उच्चवर्ग, से जुड़े विद्यार्थियों का चित्रण आज भी उसी तरह से प्रासंगिक दिखाई पड़ते है। इस दृष्टिकोण में आधुनिक वोध की दृष्टि झलकती है। वर्मा से उपन्यासों में नैतिकता की प्रेम, सेक्स, अह स्त्रियों की समस्या, भ्रष्ट राजनीति, पूँजीपतियों का बोलवाला, आदि विषय आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने की उस समय थी। इन समस्त विन्दुओं में आधुनिकता वोध की दृष्टि से नकारा नहीं जा सकता है। जो लेखक विचारों को सार्थक बनाते हैं।

---

1 प्रश्न और मरीचिका, भगवती चरण वर्मा, पेज 552

परिशिष्ट

विषय परिधि के भीतर भगवतीचरण वर्मा के विवेच्य उपन्यास

क्र०स०		
	भगवतीचरण वर्मा	
1	अपने खिलौने	भारती भण्डार, द्वितीय सस्करण, स0 2021
2	आखिरी दॉव	भारती भण्डार इला0, चतुर्थ स0, स0 2022
3	चाणक्य	राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0
4	चित्रलेखा	राजकमल प्रकाश प्रा0 लि0
5	टेढे-मेढे रास्ते	भारती भण्डार इला0, छठा स0, सन् 1972
6	तीन वर्ष	लोक भारती प्रकाशन, इला0 द्वि0सं0 2001
7	थके पॉव	पजाबी पुस्तक भण्डार दिल्ली, नवीन स0, सन् 1969
8	धुप्पल	राजकमल प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, प्रथम स0 1981
9	प्रश्न और मरीचिका	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र0सं0, सन् 1973
10	पतन	गंगा पुस्तक माला लखनऊ, सप्तम् स0, 1970
11	भूले-बिसरे चित्र	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पाचवा स0, सन् 1969
12	रेखा	राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, छठा स0 2002
13	वह फिर नहीं आयी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, तृतीय स0, सन् 1969
14	सामर्थ्य और सीमा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि0सं0, सन् 1965
15	सीधी-सच्ची बातें	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वि0स0, सन् 1970
16	सबहि नचावत राम गोसाई	राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, तीसरा सं0, 1999

सहायक सन्दर्भ-ग्रन्थ

क्रमस०		
1	अभिनव हिन्दी निबन्ध	डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, भारत बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र0स0 1977
2	आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण	रमेश कुन्तल मेघ
3	आधुनिकता और हिन्दी साहित्य	इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र0स0 1973
4	आधुनिक उपन्यास विविध आयाम	डा0 विवेकी राय, अनिल प्रकाशन, अलोपीबाग, इला0, प्र0 सं0 1990
5	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा0 बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संशोधित सं0 1994
6	आधुनिक हिन्दी उपन्यास	भीष्म सहानी, राजकमल प्रकाशन, पटना स0 1980
7	आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य	इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि0सं0 1978
8	आज का हिन्दी उपन्यास	इन्द्रनाथ मदान
9	उपन्यास का पुनर्जन्म	डा0 परमानन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0स0, 1972
10	उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा	बृज नरायण सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रा0 लि0, प्र0सं0 1972
11	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, राजकमल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली, प्र0 सं0 1973
12	भगवतीचरण वर्मा	श्रीलाल शुक्ल, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
13	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासो में युग चेतना	डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, प्र0स0 1977
14	भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास और युग चेतना	डा0 जवाहरलाल सिंह, कला प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 2000

15	भगवतीचरण वर्मा चित्रलेखा से सबहि नचावत रामगोसाई तक	डा0 कुसुम वार्ष्णेय साहित्य भवन प्रा0लि0, इलाहाबाद, प्रथम स0 1968
16	प्रेमचन्द और उनका युग	राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ सस्करण, 1981
17	समाज शास्त्र विश्व कोश	हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, द्वि0स0 1998
18	साहित्यकार भगवतीचरण वर्मा	डा0 इन्दू शुक्ला, चिन्ता प्रकाशन, गणेश नगर, दिल्ली, स0 1992
19	साहित्य की मान्यताए	भगवतीचरण वर्मा
20	समकालीन हिन्दी उपन्यास	डा0 विवेकीराय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम स0 197
21	हिन्दी साहित्य का इतिहास	प्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सम्वत् 2002
22	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
23	हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष	डा0 रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0सं0 1984
24	हिन्दी साहित्य का इतिहास	सं0डा0 नागेन्द्र-नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, द्वि0सं0 1987
25	हिन्दी साहित्य का इतिहास	सं0डा0 नागेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, द्वि0स0 1987
26	हिन्दी साहित्य (उसका उद्भव और विकास)	डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी

27	हिन्ही उपन्यासो मे व्यक्तिवादी चेतना	डा0एन0के0 जोसफ, प्रथम स0 1989
28	हिन्दी साहित्य तृतीय खण्ड	भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग प्र0सं0 1969
29	हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एव मानवता वादी चेतना	डा0 सच्चिदानन्द राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम स0 1979
30	हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा	राम दरश मिश्र, राजकमल, प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि0स0 पुनर्मुद्रित 1995
31	हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	डा0 राम किशोर शर्मा, विद्या प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0सं0 1990
32	हिन्दी उपन्यासो का शिल्पगत विकास	डा0 ऊषा सक्सेना, शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0सं0 1972
33	हिन्दी साहित्य और सम्बेदना का विकास	राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाश, इलाहाबाद पुनर्मुद्रण 1993
34	हिन्दी आलोचना शिखरो का साक्षात्कार	रामचन्द्र तिवारी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0स0 1996
35	हिन्दी साहित्य कोश, भाग एक पारिभाषिक शब्दाली	सं0 धीरेन्द्रवर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृ0सं0 बसत पंचमी 1985
36	हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो नामवाची शब्दावली	स0 धीरेन्द्र वर्मा ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, द्वि0सं0 1986
37	हिन्दी उपन्यास उद्‌भव एवं विकास	डा0 सुरेश सिन्हा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0सं0 1972
38	हिन्दी उपन्यास का विकास	मधुरेश, सुमित प्रकाश, अलोपीबाग, इलाहाबाद, प्र0सं0 ~~1998~~

पत्र-पत्रिकाएं

1	अक्षरा-(प्रधान सपादक)	गोविन्द मिश्र, अंक अक्टूबर-दिसम्बर 2000 ई0
2	पल-प्रतिपल (सपा0)	देश निर्मोही, मार्च-जून 1999 ई0
3	साप्ताहिक दिनमान	टाइम्स आफ इण्डिया 18-24 अक्टूबर, 1981 नई दिल्ली
4	आलोचना-स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी साहित्य 'भूले-बिसरे चित्र'	आनन्द प्रकाश दीक्षित
5	धर्मयुग-भगवतीचरण वर्मा	टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस, बम्बई
6	आजकल	सुभाष सेतिया, अंक दिसम्बर 2000